“संस्कृत के गान्धीचरितात्मक काव्य – एक अध्ययन”

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की संस्कृत में पी एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

शोधकर्ता

अवनि कान्त मिश्र

एम.ए.(हिन्दी,संस्कृत), साहित्याचार्य, बी.एड.

पर्यवेक्षक

डॉ. पूरन सिंह निरंजन

एम.ए.,पी एच.डी.

संस्कृत-विभागाध्यक्ष,

डी. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (जालौन)

2004–05

डॉ. पूरन सिंह निरंजन

एम.ए., पी.–एच.डी.

संस्कृत विभागाध्यक्ष,

डी.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

उरई– (जलौन)

प्राध्यापक निवास :

राठ रोड़, उरई,

पत्रांक:

दिनांक:

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है, कि श्री अवनि कान्त मिश्र ने मेरे पयर्यवेक्षण में शोध कार्य करते हुए बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की संस्कृत में पी–एच.डी उपाधि हेतु पंजीकृत शोध विषय "संस्कृत के गान्धी चरितात्मक काव्य – एक अध्ययन" शीर्षक शोध प्रबन्ध तैयार किया है।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के शोध अधिनियम के अन्तर्गत वांछित निर्धारित अवधि में शोधार्थी ने महाविद्यालय के संस्कृत विभागीय शोध केन्द्र एवं मेरे सानिध्य में उपस्थित रहकर यह शोध सम्पन्न किया है। श्री अवनि कान्त मिश्र का यह शोध कार्य मौलिक है।

मैं इनकी भावी सफलता की कामना करता हुआ, इस शोध प्रबन्ध को परीक्षणार्थ विश्वविद्यालय को सहर्ष अग्रसारित करता हूँ।

पूरन सिंह निरंजन
20.12.04

(पूरन सिंह निरंजन)

पर्यवेक्षक

आत्मिकी

भाषा मानवीय संवेदनाओं की सारस्वत अभिव्यक्ति का शाश्वत स्त्रोत है। भाषा के कारण ही मनुष्य सही अर्थ में परिभाषित होता है। भारतीय अस्मिता को आदिकाल से अद्यतन कई भाषाओं ने अपना पय–पान कराया है। भारत विविध धर्मों के साथ–साथ विविध भाषाओं का भी देश है। भारतीय दर्शन तर्क, मीमांसा, वेद, उपनिषद् तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों की जो विरासत भारत को अपने पूर्वजों से मिली है। उसकी समृद्धिता से आधुनिक विश्व विस्मय में है। संस्कृत साहित्य आदिकाल से लेकर आज तक अपने समय को दर्पण की भांति प्रतिबिम्बित ही नहीं करता रहा अपितु युगयुगीन समाज के गिरते हुए जीवन मूल्यों को सबल सम्बल देकर आस्था एवं आस्तिकता का अक्षय आधार प्रदान करता रहा है। आधुनिक भारतीय इतिहास में स्वतन्त्रता संग्राम के साथ–साथ बहुविध जड़ताओं, रूढ़ियों की मुक्ति के लिये छटपटाता तत्कालीन समाज अनेकानेक भाषाओं के साहित्य की संजीवनी से सिंचित होता रहा।

संस्कृत साहित्य ने राष्ट्रीय नायकों के उदात्त चरित्र के साथ–साथ स्वतन्त्रता सेनानियों को उत्साहित करते हुए उनकी जीवन–झांकी को आने वाली पीढ़ियों के लिये जिस प्रकार प्रस्तुत किया वह निश्चय ही अवलोकनीय है। बचपन से राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के उदात्त चरित्र से मैं अनुप्राणित रहा हूँ। दूसरी ओर गान्धी जी संस्कृत के विषय में जो अवधारणा रखते थे वह भी उल्लेखनीथ है। एक बार उन्होंने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे कि – "संस्कृत भाषा गंगा नदी की तरह है जिससे हमारे देश की अन्य भाषाएँ जीवन और शक्ति प्राप्त करती है।" इसी आशय का विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने 23 मार्च, 1940 के 'हरिजन' में लिखा था कि प्रत्येक राष्ट्रवादी को संस्कृत भाषा पढ़नी चाहिए क्योंकि इससे प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन सरल हो जाता है। यह वह भाषा है जिसमें हमारे पूर्वजों ने सोचा और लिखा है। पश्चिमी सभ्यता एवं अंग्रेजी भाषा के प्रशंसक पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने भी माना था कि "संस्कृत देश के पूर्वजों की सबसे बड़ी, सबसे मजबूत, सबसे ताकतवर और सबसे कीमती धरोहर है।" महात्मा गान्धी ने इसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है – "मुझे तो संस्कृत न पढ़ सकने का पछतावा होता है, क्योंकि आगे चलकर मेरे ध्यान में यह बात आई कि किसी भी हिन्दू बालक को संस्कृत के अच्छे अभ्यास से वंचित नहीं रहना चाहिए।"

गान्धीजी के उदात्त मानववाद तथा संस्कृत भाषा के अनुराग से प्रभावित मैं इस बात से प्राय आहत होता था जब संस्कृत भाषा के विरोधी आधुनिक काल में संस्कृत को लेटिन भाषा के समान मृत घोषित करते थे। अतः मैंने यह संकल्प लिया था कि मैं आधुनिक संस्कृत साहित्य के किसी पक्ष पर शोध कार्य अवश्य करूँगा।

अपने पारिवारिक वातावरण में अपने बड़े भाइयों डॉ.कपिल देव द्विवेदी, डॉ. अरुण देव एवं डॉ. प्रणव देव को पीएच.डी. शोध कार्य करते हुए देखकर मैं और भी उत्साहित

रहता था। इन अपने सभी भाइयों के प्रति मैं सदैव आभारी हूँ जिन्होंने मेरे बाल मन में पीएच.डी. का सम्प्रत्यय बोया था। शोध कार्यों के प्रेरकों में अपने पूज्य माता श्रीमती मुन्नी मिश्रा एवं पिता श्री कृष्ण बाबू मिश्र के साथ–साथ अपनी मामी श्रीमती कुसुमा देवी और मामा साहित्यवारिधि डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी (पूर्व प्राचार्य, म.प्र., स्नातकोत्तर महाविद्यालय कौंच) के प्रति सादर विनयाजंलि, जिन्होंने सदैव मन प्राणों को सम्पुष्ट किये रखा तथा मुझे शोध कार्य के लिये निरन्तर प्रोत्साहित किया।

तदुपरान्त मैं अपने श्रद्धेय, मनीषी, सूक्ष्मेक्षिकया सम्पन्न गुरूवर एवं शोध निर्देशक डॉ. पूरन सिंह निरंजन के प्रति सश्रद्ध अनवरत हूँ जिन्होंने अनेक व्यस्ताओं के उपरान्त भी अपना विद्वत्तापूर्ण कुशल निर्देशन प्रदान किया। उनके अनवरत मार्ग दर्शन तथा समर्थ निर्देशन से ही मेरा यह प्रयास पूर्ण हो सका। मैं उन सभी ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनसे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में लाभान्वित हुआ हूँ। शोध सामग्री के संकलन की प्रकिया में मैं विभिन्न पुस्तकालयों तथा गान्धी अध्ययनपीठों में गया हूँ। जहाँ के पुस्तकालय अधिकारियों, कर्मचारियों ने मेरी बहुबिध सहायता की। इस दृष्टि से वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली, कानूपर विश्वविद्यालय कानपुर, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी, दयानन्द वैदिक कॉलेज उरई, एम.पी.कॉलेज कौंच, जनता महाविद्यालय अजीतमल, सार्वजनिक पुस्तकालय औरय्या, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। इस शोध कार्य में मेरे अग्रज आदरणीय डॉ. प्रणव देव ने भी अपना अमूल्य समय देकर जो सहयोग दिया है उसके लिये मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। श्री डॉ. नरेन्द्र शर्मा ने गान्धी विषयक मूल पाठ्य ग्रन्थ उपलब्ध कराकर हमारा शोध कार्य में जो सहयोग किया है, एतद्दर्थ कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्य शोधार्थियों की रचनाओं से लाभान्वित हुआ हूँ उनके प्रति भी मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध कार्य के अन्तिम चक्र में नन्हीं शुभि (प्रत्यक्षा) का दायित्व सम्भालने के लिये अपनी बहन कुमारी ज्योति मिश्रा तथा गृह कार्यों से मुक्त रखने के लिये धर्म पत्नी श्रीमती निशी मिश्रा के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। अध्यापन कार्य एवं अन्य विविध व्यवस्थाओं के कारण यद्यपि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में अनेक कमियाँ और दोष रह गए होंगे परन्तु विद्वान् समालोचक अपने नीर–क्षीर विवेक से उन्हें पहचान कर निर्देश करें एवं अपनी महानुभावता से इस अज्ञ जन को क्षमा करें। अन्त में यही कामना करता हूँ कि –

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
प्रीतिभावं पुरस्कृत्य समाधास्यन्ति सज्जनाः।।"

अवनिकान्त मिश्र
24-12-04

(अवनि कान्त मिश्र)
शोध छात्र

विषय - सूची

भूमिका
(विषय प्रवेश)

भूमिका (विषय प्रवेश)

संस्कृत भाषा केवल विश्व की प्राचीनतम श्रेष्ठ भाषा ही नहीं, भारतीयता तथा हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की संरक्षक एवं संवाहिका है। इसका महत्वांकन करते हुए कहा गया है –

"यथेदं भारतं देशः तथा विंध्यहिमाचलौ।
यथा गंगा च गोदा च तथा नित्यं हि संस्कृतम्।।"

'संस्कृततोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' की पद्योक्ति में भी संस्कृत भाषा की व्यापकता, विश्वजनीनता तथा सर्वकालिकता का ही मंत्रोच्चार हुआ है। संस्कृत साहित्य एवं भाषा को केवल भारतीय विद्वानों, आचार्यों ने ही नहीं अपितु अनेक पौर्वात्य एवं पाश्चात्य भाषाविदों, साहित्यशास्त्रियों ने भी विश्व की सर्वाधिक सशक्त एवं समर्थ भाषा के रूप में स्वीकार किया है। सुप्रसिद्ध भाषाविद् विलियम जोन्स ने संस्कृत भाषा को यूनानी भाषा से भी अधिक परिपूर्ण, लैटिन भाषा से भी अधिक समृद्ध तथा इन दोनों से उत्कृष्ट और सुसंस्कृत भाषा कहते हुए इसकी संरचना पर आश्चर्य व्यक्त किया है। जगविख्यात भाषा–विशारद ब्लूमफील्ड संस्कृत भाषा के व्यावहारिक स्वरूप देने वाली पुस्तक पाणिनि की अष्टाध्यायी को जब मानव मस्तिष्क की सर्वोत्तम देन कहते हैं तो उनका भी स्पष्ट संकेत इस भाषा की जीवनी–शक्ति और सक्षमता की ओर ही है। समुल्लेख्य है कि संस्कृत भाषा में मूल धातु 1700 हैं जिनके साथ 70 प्रत्यय तथा 80 उपसर्ग जोड़ने से जो शब्द संख्या बनती है वह है 27 लाख 20 हजार। संयुक्त शब्द और वह भी मात्र दो शब्दों से बनने वाले शब्दों को जोड़ दें तो इस भाषा में 769 करोड़ शब्द बनते हैं। शब्द–निर्माण का ऐसा अद्भुत सामर्थ्य विश्व की किसी भी भाषा में नही है। इसीलिए तो हमारे संविधान में राजभाषा हिन्दी के शब्द–भण्डार को अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों से सनाढ्य करने के उपबंध के साथ यह प्रावधान किया गया है कि जब कहीं उपुयक्त शब्द उपलब्ध न हो तो संस्कृत भाषा से शब्द लिए जाएं या संस्कृत भाषा की सहायता से शब्द गढे जाएं।

इस प्रकार यह प्रमाणित है कि संस्कृत साहित्य एवं भाषा संसार की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है, जो अपनी वैज्ञानिकता एवं व्याकरण आदि के लिये प्रसिद्ध है। वर्तमान समय में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के विरूद्ध ही लेटिन भाषा के समान संस्कृत साहित्य एवं भाषा को मृत प्रायः मानने लगे हैं। वस्तुतः पुरातन काल से ही संस्कृत साहित्य संरचना गद्य, पद्य, चम्पू तथा नाट्य आदि की सृजना के रूप में संचारणशील रही है। आधुनिक काल में भी इसमें पठन–पाठन के अतिरिक्त सृजन कार्य अनवरत रूप से चल रहा है। लेकिन आधुनिक संस्कृत साहित्य का मूल्यांकन कर समाज के सामने उसके समुचित प्रकाशन का कार्य अभी अधूरा ही है। बहुबिध रूपों में सृजनशील आधुनिक संस्कृत साहित्य अभी अप्रकाशित तथा अप्रसारित भी हैं और उस पर

आधारित शोध समीक्षा का कार्य तो बहुत ही कम हुआ है। ऐसे शोध कार्य में रचनाओं की खोज का कार्य मुख्य और महत्वपूर्ण होता है, उन पर अध्ययन व समीक्षा तो किसी भी अनुसन्धित्सु के द्वारा हो सकती है। मुझे संतोष है कि मैं बीस से भी अधिक गान्धिचरितात्मक संस्कृत काव्यों को प्राप्त कर सका। कुछ रचनाएं तो पृथक् ग्रन्थ के रूप में प्राप्त हुई है तथा कुछ विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित मिली हैं। अस्तु

साहित्य वस्तुतः वाङ्मय के विशेष रूप में शब्द तथा अर्थ के मंजूल सामंजस्य और सद्भाव का सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति है –

'सहितयोः भावः साहित्यम्' यहां आशय यह है कि शब्द का अर्थ और भाव ही साहित्य है।

'शब्दार्थौ सहितम् काव्यम्' (भामह काव्यालंकार) महाकवि भर्तृहरि का साहित्य से तात्पर्य उन सुकुमार काव्यों से है जिसमें शब्द एवं अर्थ का समनुरूप सन्निवेश है, जहां शास्त्र में अर्थ प्रतीति के लिये ही शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु काव्य में शब्द तथा अर्थ दोनों ही समान श्रेणी के होते हैं। एक दूसरे से न घटकर होता है न बढ़कर ही–

"पंचमी साहित्य–विद्येति यायावरीयः।
सा हि च तिसृणां विद्यानामपि निष्यन्दः।।"

– राजशेखर (काव्यमीमांसा)

मानव जीवन के यर्थात् एवं आदर्श का समन्वित एवं संतुलित रूप व्यक्त करने वाले इस अद्वितीय बोध साधन को उपयोगी साधन की संज्ञा ठीक ही दी जाती है। आदर्श वातावरण के साथ जीवन के यथार्थ का चित्रण ही सत्साहित्य का उद्देश्य है। जैसा कि डॉ.एस.एन. दास गुप्ता ने अपना मत व्यक्त किया है।

"The purpose of the Literature was the creation of an idealised atmosphere of idealished and objective reality."

Dr. S.N.Das Gupta (History of Sanskrit Leterature)

संस्कृत साहित्य आदिकाल से अपनी उत्कृष्ट कृतियों के माध्यम से भारतीय जन जीवन को ही नहीं अपितु समस्त मानवता को आकण्ठ रसप्लावित कर महती शक्ति प्रदान करता रहा है। इतना ही नहीं प्रत्येक काल में गिरते हुए सामाजिक जीवन मूल्यों को उत्कृष्टता का अक्षय आधार प्रदान करते हुए संबल प्रदान किया है।

एलफिन्स्सटन महोदय ने 1840 ई. में संस्कृत साहित्य के जितने भी ग्रन्थों की गणना की थी उनकी संख्या ग्रीक तथा लैटिन के ग्रन्थों की सम्मिलित संख्या से कहीं अधिक थी। संस्कृत साहित्य का यह विशाल वैभव प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति के बौद्धिक उत्कर्ष का ज्वलंत प्रमाण तो है ही. साथ ही साथ भारतीय प्रतिभा का परम रमणीय सुपरिणाम है। जिस भाषा के साहित्य के ग्रन्थों की संख्या काल क्रम से विनष्ट होने पर भी वर्तमान में पचार हजार से अधिक हो, जिसके सृजन सुअध्याय तथा गहन चिन्तन में विविध देशी–विदेशी विद्वान् निरन्तर लीन रहे हों, उस साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के लिये भी क्या सामान्य पाठकों के हृदय में जिज्ञासा होना स्वाभाविक नहीं

है ? सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के इतिहास को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) वैदिक संस्कृत साहित्य (3000 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व तक)

(2) लौकिक संस्कृत साहित्य (500 ई. पूर्व से अब तक)

वैदिक साहित्य प्राचीन अशेष विश्ववांङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें महती ज्ञान राशि सन्निहित है। इसके अन्तर्गत वैदिक संहितायें (ऋक्, यजु:, साम और अथर्व) ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रहण किये जाते हैं। वैदिक साहित्य में ही हमें संस्कृत भाषा का मूल स्वरूप दृष्टिगत होता है। साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का भी परिचय प्राप्त होता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य वैदिक संस्कृत का ही सर्वाग सुविकसित रूप है, इसके अन्तर्गत महाकाव्य, गीतिकाव्य, नाट्य साहित्य, गद्य साहित, आख्यान साहित्य, चम्पूकाव्य आदि अनेक साहित्यिक विधाओं का अध्ययन किया जाता है। लौकिक साहित्य में महर्षि वाल्मिकि का आदिकाव्य रामायण, कविकुलगुरू का काव्यविलास, महाकवि माघ का पाण्डित्य प्रकर्ष, हर्ष का सुललित पदविन्यास, विश्वविभूति महाकवि भवभूति की करूण रसानुभूति, कविताकामिनी के पंचबाण महाकवि बाण इत्यादि प्रमुख हैं। ये एतद् अतिरिक्त अध्यात्म, नीति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, मंत्र, यंत्र, तंत्र, दर्शन, गीति, गद्य कथा, नाटक, काव्य, अलंकार, आयुर्वेद, गणित, विज्ञान, ज्योतिष आदि विषयों पर अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्धानों के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रत्न है।

संस्कृत के साहित्य शास्त्रियों ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है –

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"

प्रयोग की दृष्टि से काव्यों का विभाजन दो वर्गों में किया गया है।

1. श्रव्य
2. दृश्य

श्रव्य काव्य को शैली की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है। गद्य, पद्य व चम्पू (गद्य व पद्य का मिश्रण) पद्य काव्य के भी दो विभाग किये गए हैं –

1. प्रबन्ध काव्य
2. निर्बन्ध काव्य (मुक्तक)

प्रबन्ध काव्य भी रचना की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं –

1. महाकाव्य
2. एकार्थकाव्य
3. खण्डकाव्य

विषय वस्तु की दृष्टि से खण्ड काव्य के तीन भेद किये गए हैं –

1. स्तोत्र सम्बन्धी
2. नीति सम्बन्धी
3. श्रृंगार सम्बन्धी

इन सब खण्डकाव्यों के प्रबन्ध व मुक्तक दोनों रूप संस्कृत साहित्य में हमें प्राप्त

होते हैं। परन्तु स्तोत्र सम्बन्धी और नीति सम्बन्धी प्रायः मुक्तक रूप में ही प्राप्त होते हैं। इन समस्त प्रकार के भेदों को हम इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं –
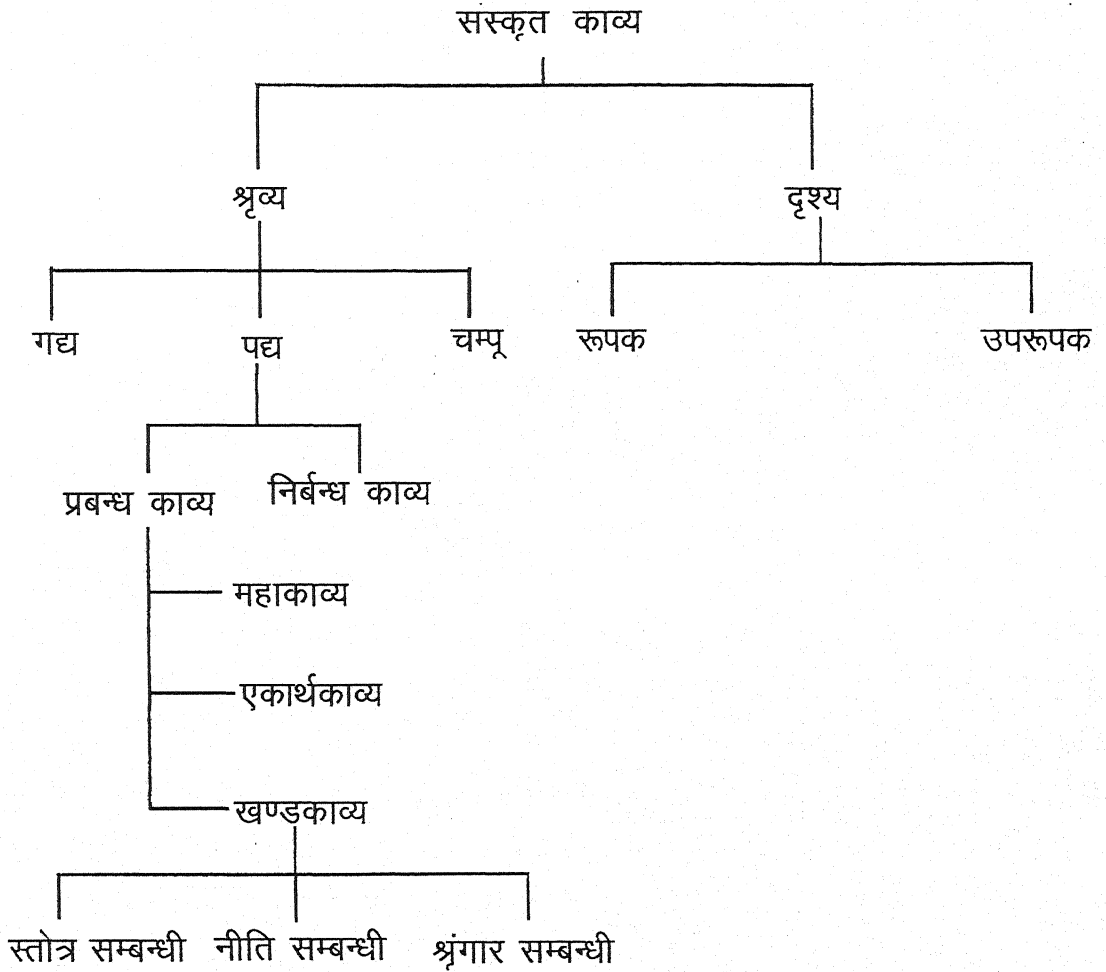
विराट् विश्व एवं जीवन का वैविध्यपूर्ण सर्वांगीण चित्रण करने वाला महाकाव्य दीर्घकाय काव्य से सम्बन्धित है। महाकाव्य पद्धति एवं गतिविधियों से समाहित स्वयं में संजोये महाकाव्यीय लक्षणों से कुछ हटता हुआ सा, स्वतन्त्र पगडण्डी में विचरित काव्य एकार्थ काव्य नाम से सम्बोधित किया जाता है। जीवन के वैविध्य से बचता हुआ, एक पक्ष विशेष प्रमुखता प्रदान करने के कारण एकदेशानुसारि – एक देशीयता युक्त काव्य खण्डकाव्य नाम से जाना जाता है। संस्कृत वाङ्मय का यही अत्यन्त सरस एवं सुन्दर अंग "गीतिकाव्य" अथवा "खण्डकाव्य" अंग्रेजी में "Lyric Poetry" कहा जाता है। "Lyric" शब्द पाश्चात्य विचारकों के अनुसार "Lyric" से ही निर्मित है। गीतिकाव्य सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों की धारणाएं भी प्रशसंनीय एवं विचारणीय है। उदाहरणार्थ –

वॉलपॉल के अनुसार

"The heart can not be told in words so it is has to be demostrated in waords that is to write poetry of fine order."

वर्डस्वर्थ के अनुसार –

"Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings."

जिस प्रकार भाषा संरचनोपरान्त व्याकरण का निर्धारण सम्भव होता है उसी प्रकार साहित्य की विविध विधाओं की रचना के बाद तदनुरूप लक्षणों का निर्धारण होता है। आने वाली पीढियां भाषा विषयक व्याकरण से अभिज्ञ होकर भाषा ज्ञानार्जित करती हैं। फिर उसी के अनुरूप साहित्यिक रचनाओं का प्रणयन सम्भव हो पाता है। इसी प्रकार साहित्य एवं साहित्य शास्त्र का मार्ग सतत रूप से अभ्यास करते हुए प्रशस्त होता है। कालान्तर में बाद के रचनाकार प्रथम लक्षण ग्रन्थों का अध्ययन मनन कर विविध विधाओं से साहित्य श्री की अभिवृद्ध करते रहते हैं। परन्तु कुछ समर्थ एवं अद्भुत रचनाकार अपने अपूर्व एवं अद्भुत निष्णात से नवीन मार्ग निर्मित कर साफल्य रचना का प्रणयन कर परिवर्तित, परिवर्धित एवं परिष्कृत मार्ग निर्मित करते हैं। जिससे लक्षण में एक नया मोड़ उत्पन्न हुए बिना नहीं रह पाता है।

महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों के लक्षणों एवं उनके अन्तर पर विचार गान्धी पर आधारित संस्कृत काव्यों का वैशिष्ट्य–विश्लेषण करते हुए किया गया है।

महाकाव्यों का उदभव एवं विकास –

महाकाव्यीय उद्भव का पार्थक्य एवं प्रतिबिम्ब ऋग्वेद का आख्यान, सूक्तों, स्तुति मन्त्रों तथ नाराशंसी ऋचाओं में सरलतापूर्वक अन्वेषित की जा सकती है। ब्राह्मण ग्रन्थ में भी सुपर्णाख्यान एवं शुनः शेष के आख्यान साहित्य सम्पन्न भषायें हैं, जिनका यही स्वरूप कमशः वृद्धि प्राप्त करते हुए महाकाव्यत्व की परिधि में आने लगा। संस्कृत की यही काव्य परम्परा ऋंग्वेद से अपने कृशकाय में उद्भूत होकर अद्यावधि निरन्तर विकासमान पथ पर पग बढ़ाते हुए अपने प्राप्य पथ पर अग्रसर है। इस सबके उपरान्त भी यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं है कि काव्य की यह धारा सच्चे अर्थों में महाकाव्य कही जा सके। यथा –

"स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तानमृतमहोदधिः।
ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः।।"

अथवा "आद्यः कविरसि" से सम्बोधित आदि कवि वाल्मीकी एवं "आम्नायादन्यत्र नूतनच्छन्दसागवतारः" से सम्बोध्य आदि काव्य रामायण से ही वास्तविक रूप में अजस्त्र रूप में प्रभावित हुयी है। आदि कवि से पूर्व पद्य बद्ध रचनायें थीं परन्तु उनका सबका प्रमुख प्रयोजन देवाराधन, धर्माचरण, धर्म भावना, उपासना आदि तक ही सीमित था। वाल्मीकि का यह काव्य प्रयास क्रान्तिकारी, प्रगतिशील एवं जनभावना की अभिव्यक्ति के अनुरूप है।

यथार्थतः रामायण, महाभारत एवं श्रीमद् भागवत् तीन उपजीव्य काव्य, इतिहास तथा पुराण ग्रन्थ है, जिन्होंने न केवल संस्कृत साहित्यीय रचनाकारों को स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान की है वरन् नूतन काव्यों के कथ्य को सुझाने में अग्रणी कार्य भी किया है। तत्सम्बन्धित अधिक विवेचन की अपेक्षा आचार्य बलदेव उपाध्याय का निम्न मन्तव्य विषय को स्पष्ट बनाने हेतु समीचीन है – "आदि कवि की वाणी पुण्य सलिला भागीरथी है,

जिसमें अवगाहन कर पाठक तथा कवि अपने आपको पवित्र ही नहीं मानत प्रत्युत्तर प्रत्युत रसमयी काव्य शैली के हृदयावर्जक स्वरूप के समझने में भी कृत कार्य होते है। काव्य तथा नाटकों को विषय निर्देश देने में रामायण एक अक्षुण्ण स्तोत्र है। महाभारत तो वस्तुतः व्यास वाणी का विमल प्रसाद है। यह सचमुच विचार रत्नों का का एक अगाध महार्णव है, जिसमें गोते लगाने वाला कवि आज भी अपने काव्य को चमत्कृत तथा अलंकृत बनाने के लिए नवीन जगमगाते हीरों को खोज निकालता है। वेद व्यास जी की यह उक्ति अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है, जिसमें उन्होंने डंके की चोट इस ग्रन्थ की विशालता का निर्देश करते हुए कहा कि जो कुछ इस महाभारत में है, वह दूसरे स्थलों पर हैं, परन्तु जो इसके अन्दर नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"

रामायण तथा महाभारत ये दोनों काव्य–रत्न तो हमारे कविजनों के लिए उपजीव्य माने ही जाते हैं, परन्तु एक तीसरा भी ऐसा ही उपादेय विस्तृत प्रभावशाली ग्रन्थ है जिसकी ओर काव्य के आलोचकों ने दृष्टिपात नहीं किया है। वह ग्रन्थ है पुराणों का मुकुटमणि श्रीमद्भागवत महापुराण, भारतीय धर्म के विकास में भागवत् का व्यापक प्रभुत्व किसी भी विज्ञ आलोचक से छिपा नहीं है, परन्तु भारतीय काव्य के कोमल विलास एवं प्रचुर प्रसार में भी भागवत् का तान्त महनीय प्रभाव आलोचकों की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता। निर्विवाद रूपेण सत्य है कि भारतीय साहित्य में निहित मधुरिमा, सरसता एवं हृदयावर्जकता, वैष्णव धर्म की देन है। "रसोवैसः" के प्रत्यक्ष निदर्शन भूत रसिक शिरोमणि श्याम सुन्दर की ललित लीला एवं लावण्यमय विग्रह की भव्य झांकी प्रस्तुत करने वाला वह भागवत् पुराण भारतीय साहित्य के गीतिकाव्यों तथा प्रगीत मुक्तकों का अक्षय स्तोत्र है। जिसकी माधुर्य भावना को ग्रहण करके कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्यों में लालित्य, सरसता तथा हृदयनुरंजकता का पुट देकर उन्हें शोभन तथा हृदयावर्जक बनाया। संस्कृत के कृष्ण कवियों की मधुर सूक्तियों में भागवत् की मधुरिमा झलकती है। जयदेव की कोमल–कान्त पदावली का विन्यास भागवत् की सरसता से ओत–प्रोत है। मध्य युगीन वैष्णव पदकारों के पदों में लालित्य का तथा रस निर्भरता का विधान श्रीमद् भागवत के गाढ़ अनुशीलन का परिणत फल है। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी हिन्दी तथा गुजराती कवियों में भागवत का उतना ही रस निःष्यन्द है जितना गौडीय वैष्णवों की बंगला कविता में है। वाल्मीकी रामायण रामचन्द्र जी के कार्यो की ही प्रमुख प्रतिपादक होने से कर्म प्रधान है, महाभारत आचार, नीति तथा लोक व्यवहार का विशाल भण्डार होने से एवं श्रीमदभगवत् गीता जैसे आध्यत्मिक प्रधान ग्रन्थ के समावेश के हेतु स्फुट तथा ज्ञान प्रधान है। भागवत् सांसरिक न्याय–अन्याय, राग, द्वेष, मैत्री, कलह के समस्त जागरूक संघर्ष को मिटाने तथा सरस सामन्जस्य को स्थापित करने वाली भगवान की मधुर लीलाओं का आगार होने के कारण नितान्त भक्ति प्रधान है।

"इस प्रकार रामायण, महाभारत तथा भागवत – कर्म कालिन्दी, ज्ञान सरस्वती

एवं भक्ति गंगा की मुख्य त्रिवेणी है, जिसका अवगाहन काव्य के साधकों को कर्म, ज्ञान तथा भक्ति की भावना को दृढ़ तथा शुद्ध बनाने के लिए नितान्त अपेक्षित है।"

सम्बन्धित साहित्य का पुनर्वेक्षण –

वर्तमान समाज को आधुनिक परिस्थितियों से अवगत कराने एवं नवीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं से निपटने के लिये भाषा के विकास एवं उसके प्रति आदर भाव जागृत करने हेतु आधुनिक साहित्यकारों की कृतियों का अनुशीलन करना अनिवार्य हो जाता है। संतोष का विषय है कि संस्कृत साहित्यकारों ने आधुनिक साहित्य की समृद्धि एवं आधुनिक समाज के प्रगतिशील पथ प्रदर्शन हेतु राष्ट्रीय नेताओं से सम्बन्धित कृतियों का अध्ययन करने का कार्य किया है। लेकिन संस्कृत काव्यकारों ने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी को अपने काव्यों में किस प्रकार रूपायित किया है यह कार्य अभी शेष है। मुझे गान्धीजी के सन्दर्भ में कुछ जानकारी प्रारम्भिक कक्षाओं में संस्कृत विषय के अध्ययन के साथ–साथ गान्धी रचित आत्मकथा पढ़ने से प्राप्त हुई थी। अतः जब मैंने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के साहित्य पर कार्य करने का विचार किया तो मुझे जिन शोध कार्यों की जानकारी मिली उनमें कुमारी मीनू पन्त ने "श्रीमद् भगवदाचार्यकृत भारतपारिजातम् का समालोचनात्मक अध्ययन" नामक विषय पर तथा कुमारी कुमुद टण्डन द्वारा प्रो. हरिनारायण दीक्षित के निर्देशन में इसी प्रकार के विषय पर कार्य करने की जानकारी मिली। इसी प्रकार प्रो. हरिनारायण दीक्षित ने अपने डी.लिट. शोध प्रबन्ध में गान्धी सम्बन्धी काव्य कृतियों का अपनी दृष्टि से परिशीलन किया है। डॉ. रामजी उपाध्याय ने भी आधुनिक संस्कृत नाटक में श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित द्वारा विरचित गान्धीविजयनाटकम्, यतीन्द्रबिमल चौधरी कृत भारतजनकम् एवं श्रीमती रमा चौधुरी के भारततातम् नामक रूपक का जाति संक्षिप्त केवल परिचय दिया है। अतः मैं नवीन प्रजातांत्रिक मान्यताओं को ध्यान में रखकर संस्कृत साहित्य के गान्धी चरितात्मक काव्यों का अध्ययन प्रस्तुत शोध कार्य के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

संस्कृत काव्य साहित्य अपनी विविध विधाओं की अधुनातन युग प्रवृत्तियों एवं युग पुरूषों की चारु दर्णनामय उत्कृष्ट काव्य कृतियों से अत्यन्त श्रीसम्पन्न संलक्षित होता है। संस्कृत काव्य साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में जिन यशस्वी महापुरूषों की चारूवर्णना हुई है उसमें युगपुरूष महात्मा गांधी के उज्ज्वल त्यागमय जीवन को चित्रित करने वाले रससिद्ध संस्कृत कवियों ने महत्वपूर्ण संस्कृत गान्धी काव्य का सृजन कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है।

संस्कृत में गान्धी चरित पर आधृत काव्यों में विजयराधवाचार्य कृत गान्धी माहात्म्य, प्रो. इन्द्र विद्यावाचस्पति एवं श्री निवास ताड़पत्रीकर कृत "गान्धी गीता" पण्डिता क्षमाराव कृत "सत्याग्रह गीता" पण्डित सुधाकर शुक्ल कृत "गान्धी सौगन्धिकम्" पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल कृत "गान्धी चरितम्" म.म.प.मथुरा प्रसाद दीक्षित कृत "गान्धी विजयम्" प्रभृति काव्य कृतियां उल्लेखनीय है। कुल मिलाकर गान्धी पर जितनी काव्य

कृतियों की मैं जानकारी प्राप्त कर सका उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

काव्यकार	काव्य का नाम	काव्य का रूप
पं.साधुशरण मिश्र	गान्धिचरितम्	महाकाव्य
शिव गोविन्द त्रिपाठी	गान्धिगौरवम्	महाकाव्य
श्री निवास ताडपत्रीकर	गान्धिगीता	महाकाव्य
इन्द्रविद्या वाचस्पति	गान्धिगीता	महाकाव्य
द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री	स्वराजविजयम्	महाकाव्य
सुधाकर शुक्ल	गान्धिसौगन्धिकम् (अप्रकाशित)	महाकाव्य
श्री भगवदाचार्य	श्री महात्मा गान्धिचरितम् (भारतपारिजात)	महाकाव्य
पण्डिता क्षमाराव	सत्याग्रह गीता	
	उत्तर सत्याग्रह गीता	महाकाव्य
	स्वराज विजय	
विजयराघवाचार्य	गान्धिमाहात्म्य	काव्य
ब्रह्मानन्द शुक्ल	गान्धिचरितम्	खण्डकाव्य
मधुकर शास्त्री	गान्धिगाथा	खण्डकाव्य
यज्ञेश्वर शास्त्री	भारतराष्ट्ररत्नम्	खण्डकाव्य
रमेश चन्द्र शुक्ल	गान्धिगौरवम्	खण्डकाव्य
श्रीधर भास्कर वर्णेकर	श्रमगीता	खण्डकाव्य
पं. रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी	गान्धिगरिमकाव्यम्	खण्डकाव्य
किशोर नाथ झा	बापू	गद्यकाव्य
द्वारका प्रसाद त्रिपाठी	गान्धीन्स्त्रयो गुरूवः शिष्याश्चः	गद्यकाव्य
मथुरा प्रसाद दीक्षित	गान्धिविजयम्	नाटकम्
बोम्बकंठी रामलिंग शास्त्री	सत्याग्रहोदयम्	नाटकम्

उपर्युक्त काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त जिन संस्कृत काव्यकारों ने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी पर काव्य लेखन किया है उनमें श्री अमीरचन्द शास्त्री, इन्द्रविद्यावाचस्पति, डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी, अमृत लाल गौरी शंकर, रवीन्द्रनाथ गुरू, डॉ. चन्द्रभूषण झा, सहिष्णु कुमार झा, डॉ. हर्षदेव माधव आदि के नाम उल्लेखनीय है।

भारत राष्ट्र के स्वातंन्त्र्ययुगीन जनजीवन का संघर्ष, त्याग, बलिदानपूर्ण की व्यापक काव्यात्मक पृष्ठ भूमि पर महात्मा गान्धी के उदात्त जीवन चरित विषयक संस्कृत काव्या कृतियों एवं उनके कृतिकारों को काव्य साहित्य में विशिष्ट महत्व प्राप्त है।

महात्मा गान्धी का मानव दर्शन –

दर्शन अपने वृहत्तर अर्थ में वह अदृश्य नींव है जिस पर प्रत्येक सामाजिक संगठन का दारोमदार टिका होता है। वह समस्त सामाजिक गतिविधियों की धुरी तथा समस्त

सामाजिक विज्ञानों अथवा ज्ञान का भी आधार होता है।[1] वस्तुतः समस्त मानवीय क्रियाकलाप जीवन दर्शन द्वारा परिचालित एवं नियंत्रित होते हैं। इसके बिना कोई भी समाज व्यवस्था उद्देश्यहीन एवं मानव कर्म अंदवत्त होते हैं। मानव के आदर्श का निर्धारण एवं समाज के हेतु किसी पद्धति का निर्माण इसी जीवन दर्शन पर आधारित होता है। महात्मा गान्धी वह मानव थे जिन्होंने तत्कालीन तीस करोड जनता को विद्रोह करने के लिये आन्दोलित किया, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी तथापि जिन्होंने मानव राजनीति में पिछले दो हजार वर्षों के सर्वाधिक शक्तिमान धार्मिक संवेग का समावेश किया।[2] सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक रेने फ़ुलो मिलर के शब्दों में वे अनन्य सामाजिक क्रान्तिकारी[3] थे, या यदि हम समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्तों के सम्बन्ध में समाज–विज्ञान के जर्मन प्राध्यपक कार्ल मैनहीम से सहमत हों तो वे सच्चे क्रान्तिकारी थे। मैनहीम का विश्वास है, "केवल मात्र व्यक्ति की पुनः रचना द्वारा ही समाज का पुनर्निर्माण संभव है।[4]"

गान्धीजी का उद्देश्य समाज के किसी विशेष अंग का पुनर्गठन न होकर मानव के समस्त अस्तित्व का पुनर्निर्माण था। वे एक सुधारक[5] नहीं थे। अन्य सामाजिक क्रान्तिकारी चिन्तकों की भांति जीवन की समस्याओं के प्रति उनका भी एक विशिष्ट उपागम था, जो असंदिग्ध रूप से मुख्यतः हिन्दुत्व पर आधारित था, जिसके विषय में अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में वे उसी प्रकार असमर्थ थे जिस प्रकार अपनी पत्नी के विषय में, और, जैसा उन्होंने स्वयं कहा है, उत्साह के वशीभूत होकर हिन्दुत्व[7] के किसी आवश्यक तत्व का परित्याग उन्होंने कभी नहीं किया, तथापि वे ऐसे किसी सिद्धान्त या उपदेश को भी नहीं स्वीकार कर सके जो "नैतिक बोध या विवेक के प्रतिकूल" था।[6] उन्होनें उसी पर विश्वास किया जो उनके विवेक को सन्तुष्ट कर सका और जो उनकी अन्तरात्मा के निर्देश के अनुकूल था। यद्यपि उन्होंने विनम्रतावश असंख्य बार किसी सिद्धान्त के प्रवर्तक या किसी पंथ के प्रतिष्ठाता होने का प्रत्याख्यान किया है, तथापि उनके सिद्धान्तों में संश्लिष्टता है, और जैसा कि 'गांधियान वे' तथा अन्य अनेकों ग्रन्थों के प्रणेता, गांधीवादी विद्वान् आचार्य जे.बी. कृपलानी ने गांधी सिद्धांत की विवृति एवं व्याख्या करते हुए कहा है: "उनकी योजनाओं एवं परिकल्पनाओं में व्याप्त संश्लिष्टता गान्धी कार्यक्रम को एकक समग्र बनाती है। यह अपने विशिष्ट सिद्धांत के साथ ही अपने में पूर्णांग दर्शन का रूप धारण करता है।[7]" निस्सन्देह इसे "बृहत्तर अर्थ में"[8] ही दर्शन कहा जा सकता है और इसी पर विश्व के निमित्त उनका संदेश आधारित है।[11]

महात्मा गान्धी दर्शन के तात्त्विक अंश –

"गान्धी जी अपने हिन्दू धर्म से प्रारम्भ करते हैं एवं हिन्दू दृष्टिकोण से शाश्वत समस्याओं के तात्विक समाधान उनके दर्शन के आधार हैं। उन्होंने अनुभव या तर्क के स्वतंत्र परिप्रेक्ष्य से समस्याओं के समाधान या उत्तर प्रदान करने की चेष्टा नहीं की है।"[9]

वस्तुतः उनका उद्देश्य वास्तविकता का तर्कसंगत विश्लेषण करना नहीं बल्कि उसकी उपलब्धि करना था। यद्यपि "भगवद्गीता में प्रतिपादित असत् से विरत रहने की नीति शास्त्रीय परिपूर्णता, मीमांसा द्वारा समर्थित सामाजिक नियंत्रण तथा शंकर द्वारा प्रचारित अभेद की भावना का सार–संकलन गान्धी–दर्शन में किया गया है"[10] तथापि वास्तविकता के सम्बन्ध में उनकी पक्की धारणा वैष्णव धर्म ग्रन्थों के अनुरूप ही बनी थी। इस सम्बन्ध में जो हम पहले कह आये हैं उसे स्मरण रखना चाहिए कि, "उन्होंने हिन्दू धर्म–ग्रन्थों को समग्र रूप से नहीं स्वीकार किया था। जो अयुक्तियुक्त एवं अनैतिक था, उससे वे सदा विमुख रहे। वेद, उपनिषद्, गीता एवं पुराण वहीं तक उन्हें स्वीकार्य थे जहां तक वे उनके विवेक को ग्राह्य थे।"[11] साथ ही वे हिन्दू धर्म को ही एकमात्र धर्म नही मानते थे और यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं उनका कथन है –

मैं एकमात्र वेदों की दिव्यता पर विश्वास नहीं करता हूँ। मेरा विश्वास है कि बाइबिल, कुरान एवं जेन्दावेस्ता भी उतने ही ईश्वर–प्रेरित ग्रन्थ हैं जितने कि वेद[12] उनके लिये "सभी धर्म एक ही लक्ष्य तक पहुंचाने वाले भिन्न–भिन्न मार्ग[13] है।[14]" उनका यह भी कहना है –

सभी धर्म समान नैतिक नियमों पर आधारित है। मेरा नैतिक धर्म उन नियमों से बना है जिनसे सारे संसार के मानव आबद्ध है।[15]

सत्य का स्वरूप –

सत्य ही गान्धी जी के द्वारा यथार्थ के लक्षण के रूप में स्वीकृत एवं उपलब्ध किया गया था। सत्य के द्वारा ही ईश्वर का अनुभव हो सकता है। जब कभी कोई सच्ची बात कही जाती है अथवा जब कोई सच्चा कार्य किया जाता है या जब कभी कोई सच्ची भावना अनुभूत होती है तब हम परमपिता परमात्मा की सत्ता का अनुभव करते हैं वह है क्योंकि सत्य है। गान्धी जी के लिये सत्य एवं ईश्वर समरूप है। ईश्वर के अन्य पहलू यथा सौन्दर्य एवं शिवत्व उन्हें आधारभूत लक्षण के रूप में स्वीकार नहीं होते थे किन्तु उनके मतानुसार सौन्दर्य एवं शिवत्व सत्य से उपलक्षित होते हैं। 13 नवम्बर 1924 के यंग इण्डिया में उन्होंने कहा था कि समस्त सच्ची कलाओं को आत्मा को अपने आन्तरिक स्वरूप की उपलब्धि कराने में सहायक होना हि चाहिये। समस्त सत्य केवल सच्चे विचार ही नहीं, बल्कि सच्ची मुखाकृतियां, सच्चे चित्र या गीत भी सुन्दर होते हैं। साधारण लोग सत्य में सौन्दर्य नहीं देख पाते। जब लोग सत्य में सौन्दर्य देखना आरम्भ करेंगे तभी सच्ची कला का उदय होगा। गान्धी जी के लिये सत्य ईश्वर है जो व्यवस्थित एवं अर्थान्वित समग्र है। उनका कहना है यह सत्य केवल शब्दों की सत्यता ही नहीं है, बल्कि विचारों की सत्यता भी है और हमारी अवधारणा का सापेक्षिक सत्य ही नहीं है, बल्कि निरपेक्ष सत्य है, शाश्वत सिद्धान्त है, जो ईश्वर ही है।[16]

गान्धीजी भी सत्य के अन्तःप्रज्ञात्मक ज्ञान से विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धार्मिक एवं नैतिक मार्ग सत्य को सम्बल प्रदान करते हैं। एक प्रशन यह

भी उठता है कि गान्धी जी किस प्रकार अन्तःप्रज्ञात्मक ज्ञान एवं तर्क प्रधान विचार का समाहित कर सकें। कुछ लोग गान्धी दर्शन में अन्तःप्रज्ञा पर अनावश्यक महत्व आरोपित करते हैं। वह उन्हें रहस्यवादियों की कोट में रखते हैं। क्योंकि उनके सत्य दर्शन और ईसामसीह, सेन्ट आगस्टाईन तथा बर्नाड जैसे रहस्यवादियों के दर्शनों में साम्य है।[17] किन्तु यदि हम गान्धीजी के सम्पूर्ण जीवन पर विचार करें तो हम सहज ही यह जान लेंगे कि उन्होंने कभी भी रहस्यवादियों जैसा जीवन नहीं बिताया। एक रहस्यवादी का जीवन रहस्यवाद के कुछ सिद्धान्तों के वैशिष्ट्य से युक्त होता है। जबकि महात्मा गान्धी की साधारण वैष्णव जीवन पद्धति सर्व विदित है। अतः गान्धी जी रहस्यवादी नहीं थे। गान्धी जी का सत्य स्थित्यात्मक है या गत्यात्मक ? ऐसा लगता है कि डेकार्ट के दर्शन का मत है कि सत्य स्थिर एवं अपरिवर्तनीय है। अर्थात् स्थित्यात्मक है। यह गान्धी जी का भी विश्वास था कि सत्य स्थिर एवं अपरिवर्तनीय है। यह कभी नष्ट नहीं किया जा सकता।[18] किन्तु मनुष्य, भले ही वह गान्धी जी सदृश महान् आत्मा ही क्यों न हो, पूर्ण सत्य की धुंधली और चलायमान झांकियां ही प्राप्त कर सकता है।[19]

हम इस क्षण भंगुर शरीर के माध्यम से शाश्वत् सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकते। सीमाबद्ध मानव असीम सत्य एवं प्रेम को उनकी समग्रता में कभी नहीं जान सकेगा। अतः सत्य के हमारे बुद्धि की कोटियां हैं। तब इस पूर्ण अवांङ् मनस गौचर एवं स्थित्यात्मक सत्य की उपलब्धि कैसे हांसिल की जाये ? गान्धी जी के अनुसार पूर्ण सत्य की ओर चलते हुए हमें सापेक्ष सत्य का अर्थात् जिसे हम सत्य समझते हैं उसका पालन करना चाहिये। उनका कथन है – किन्तु जब तक मैं पूर्ण सत्य का उपलब्धि नहीं कर लेता तब तक मुझे अपनी धारणा के अनुरूप सापेक्ष सत्य का अवस्यमेव पालन करना चाहिये। अर्न्तवर्ती काल के लिये उस सापेक्ष सत्य को ही मेरा कवच एवं रक्षक होना चाहिये। – (एक्सपेरिमेन्टस् प्रथम खण्ड, पृ. 6)

इसका आश्य यह है कि गान्धी दर्शन में सत्य स्थित्यात्मक एवं पूर्ण है। किन्तु इसका बोध गत्यात्मक एवं उपलब्धि आंशिक है। सत्य की उपलब्धि के लिये गान्धी जी ने अन्तःप्रज्ञा द्वारा सत्याग्रह (गान्धी जी के कथनानुसार आत्मबल) की प्रबिधि का अन्वेषण किया।

महात्मा गान्धी की ईश्वरीय अवधारणा –

सत्य के प्रमाणीकरण से ही हम गान्धी जी की ईश्वर सम्बन्धी अत्यन्त विशिष्ट अवधारणा का संकेत पाते हैं तथापि इसी क्षेत्र में यह अभिनव समाज चिन्तक सर्वाधिक दीप्तिमान है। वे नास्तिकता का उन्मूलन कर ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में समस्त संदेहों को दूर करने का प्रयास करते हैं, अवश्य ही अपनी अवधारणा के ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में ही उनका यह प्रयास है। उनकी युक्ति है – एक अपरिभाषेय, रहस्यमय शक्ति है जो सर्वव्यापी है। यद्यपि मैं उसे देख नहीं पाता किन्तु उसका अनुभव करता हूँ। वह अदृश्य शक्ति अपने को आभाषित तो करती है किन्तु समस्त प्रमाणों की

अवज्ञा करती है क्योंकि अपनी इन्द्रियों द्वारा मैं जिनका बोध प्राप्त करता हूँ उन सबसे वह अत्यन्त असदृश है । वह इन्द्रियों का अतिक्रमण करती है किन्तु एक सीमा तक यह संभव है कि हम ईश्वर के अस्तित्व को तर्क द्वारा अनुमित कर सकें। (एन्ड्रूज, सी.एफ. महात्मा गान्धीज आइडियाज, पृ. 43) तो हम इस ईश्वर को जान क्यों नहीं पाते ? उनका उत्तर है :

साधारण मामलो में भी हम जानते है कि जनसाधारण को ज्ञात नहीं रहता कि कौन शासन करता है या वह क्यों एवं कैसे शासन करता है, तथापि वे यह जानते हैं कि कोई शक्ति है जो अवश्य शासन करती है। गत वर्ष मैसूर के अपने दौरे मे मैं बहुत से गरीब ग्रामीणों से मिला एवं उनसे पूछताछ करने पर पता चला कि वे नहीं जानते कि मैसूर पर कौन शासन करता है, उन्होंने सीधे यह कहा कि कोई देवता शासन करता है। यदि अपने शासक के सम्बन्ध में इन लोगों का ज्ञान इतना सीमित था तो मुझे आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि मैं राजाओं के राजा ईश्वर की सत्ता का अनुभव न कर सकूँ, क्योंकि अपने शासक की तुलना में वे जितने लघु है उससे ईश्वर की तुलना में, मैं असंख्य गुना लघु हूँ।

तथापि, जैसे वे गरीब ग्रामीण मैसूर के बारे में अनुभव करते थे वैसे ही मैं विश्व के बारे में अनुभव करता हूँ कि उसमें व्यवस्था है, एक अपरिवर्तनीय धर्म है जो सत्ताशील या जीवित प्रत्येक वस्तु एवं प्रत्येक प्राणी का नियमन करता है... तो वही धर्म जो समस्त जीवन का नियमन करता है ईश्वर है। धर्म एवं धर्म–प्रदाता एक ही है। (एन्ड्रूज, सी.एफ. महात्मा गान्धीज आइडियाज, पृ. 43)

इस तरह हम देखते हैं कि सत्य या ईश्वर व्यवस्थित सम्पूर्ण धर्म है। "जिस तरह की भौतिक राजा एवं उनके नियम–कानून भिन्न है उस तरह ईश्वर एवं ईश्वर का धर्म भिन्न वस्तु या तथ्य नहीं है। क्योंकि ईश्वर सत्यमेव आदर्श धर्म है अतः यह सोचना असंभव है कि ईश्वर धर्म का उल्लंघन करता है।" (बोस, एन.के. 'सिलेक्शन्स फॉम गान्धी' पृ. 6) धर्म की ईश्वरत्व है और गान्धी जी का कथन है :

क्योंकि उसे या उसको बहुत कम जान पाया हूँ केवल इसलिए मैं धर्म या धर्म प्रदाता को अस्वीकार नहीं कर सकता। (एन्ड्रूज, सी.एफ. महात्मा गान्धीज आइडियाज, पृ. 43) कभी–कभी वे ईश्वर के प्रति अपने विश्वास भावावेगयुक्त भाषा में प्रकट करते हैं:

मेरे लिए ईश्वर सत्य या धर्म है, ईश्वर सदाचार एवं नैतिकता है, ईश्वर निर्भयता है। ईश्वर ज्योति एवं जीवन का स्त्रोत है तथापि, वह इन सबसे ऊपर और परे है। ईश्वर अंतर्विवेक है। नास्तिकों की नास्तिकता भी वही है। (एन्ड्रूज, सी.एफ. महात्मा गान्धीज आइडियाज, पृ. 43)

वे भोजन के बिना रह सकते थे किन्तु ईश्वर के बिना नहीं। दूसरी गोल मेज़ परिषद् के अवसर पर यूरोप के भ्रमण के सिलसिले में स्विटजरलैण्ड में गान्धी जी इंटरनेशनल वालंटरी सर्विस फोर पीस (शान्त्यर्थ अन्तर्राष्ट्रीय स्वैच्छिक सेवा) के प्रतिष्ठाता

पियरे सेरेसोल के अतिथि थे। पियरे ने पूछा:

इस युग के नेता के लिए आप किन गुणों को आवश्यक समझते है ?

गान्धी जी की घोषणा थी – चौबीसों घंटे प्रति मिनट ईश्वर की अनुभूति।

मैं आपसे कहता हूँ कि यदि सारा संसार ईश्वर को अस्वीकार करे तो भी मैं उसका अकेला साक्षी रहूँगा। यह मेरे लिए सतत चमत्कार है। (लेस्टर, म्यूरियल, 'गान्धी वर्ल्ड सिटिजन 1945, पृ. 27)

क्या ईश्वर साकार है ? गान्धी जी की घोषणा है कि ईश्वर निराकार है। उनका कहना है, "मैं ईश्वर को साकार नहीं मानता।" ('सिलेक्शन फ्रॉम गान्धी, पृ.6) किन्तु अन्यत्र संभवतः धार्मिक हर्षोल्लास की मनःस्थिति में उन्होंने लिखा है:

ईश्वर को पथ–प्रदर्शक मानकर उसके हाथ मुझे चलना है। वह एक ईर्ष्यालु स्वामी है। वह अपने अधिकार में किसी को भागीदार नहीं बनने देगा। अतः उसके सम्मुख सम्पूर्णरूपेण दीन एवं निःस्व होकर पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना लेकर उपस्थित होना चाहिए। तभी वह तुम्हें सारे संसार के समक्ष खड़े होने में सक्षम बनाता है और अनिष्ट से तुम्हारी रक्षा करता है। ('यंग इण्डिया', 3 सितम्बर, 1931)

इस तरह ईश्वर सम्बन्धी गान्धी जी की इन विरोधी अवधारणाओं को समाहित करना कठिन हो जाता है। यदि ईश्वर धर्म है, सर्वव्यापी सिद्धान्त है तो यह कल्पना करना कठिन है कि उसमें वैयक्तिक गुणों का आरोप कैसे किया जा सकता है। "सम्भव है कि उन्होंने ईश्वर की धारणा साकार एवं निराकार दो रूपों में की हो। साकार रूप ईश्वरता की आभासिक छवि का द्योतक हो सकता है किन्तु वास्तविक ईश्वरता निराकार में ही है।" (राय, गांधियन एथिक्स, पृ. 23)

गान्धीजी के राम –

गान्धीजी अपनी वैष्णव भक्ति में प्रायः राम नाम संकीर्तन करते थे। इसलिए बहुसंख्यक लोग यह मान लेते हैं कि वह साकार ईश्वर में विश्वास करते थे। रामचरित मानस के प्रति उनके प्रेम से भी कुछ लोग सोच सकते हैं कि उनके राम अयोध्या में नरेश दशरथ के पुत्र से अभिन्न थे। किन्तु ऐसा सोचना गलत है। गान्धीजी ने स्वयं 28 अप्रैल 1946 के हरिजन के अंक में कहा था – "मेरे राम हमारी प्रार्थनाओं के राम, अयोध्या नरेश, दशरथ के पुत्र ऐतिहासिक राम नहीं है वे शाश्वत, अजन्मा, अद्वितीय हैं। के वल उन्हीं की मैं पूजा करता हूँ।" रामचरितमानस के प्रति उनके प्रेम में यह संकेतित किया जा सकता है कि वह उससे इसलिये प्रेम नहीं करते थे कि उसमें एक महान् नरेश का जीवन उत्कृष्ट काव्य के रूप में अंकित किया गया है, अपितु इसलिये कि वह भक्ति मार्ग भी सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। यद्यपि यहां हमारे लिये विषयान्तर कर तुलसी के राम का विवेचन करना अतिरेक होगा तथापि इतना तो निर्दिष्ट किया ही जा सकता है कि सगुणोपासक होने के कारण साकार राम का चित्र अंकित करने पर भी तुलसीदास ने निराकार राम की अवज्ञा नहीं की है। वस्तुतः उन्होंने कई स्थलों पर निराकार शाश्वत

एवं असीम ब्रह्म के लिये राम का प्रयोग किया है।[20]

अतः गान्धीजी ने राम निर्वचन एक शाश्वत एवं अजन्मा (निराकार ब्रह्म) के रूप में करने में कोई कठिनाई होनी चाहिये। हम कैसे और कहां राम अथवा ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं ? इसके उत्तर के लिये गान्धीजी की सत्य अवधारणा के माध्यम से हम अहिंसा रूपी अस्त्र के साथ ईश्वर तक पहुंच सकते है। चूंकि उसके यर्थाथ स्वरूप की अवधारणा करना कठिन है। अतः वे अपना ध्यान उसे उपलब्ध करने के साधन पर केन्द्रित करते हैं। गान्धीजी की खोज है कि यह साधन अहिंसा है। उनकी उक्ति है अहिंसा के बिना सत्य खोजना एवं पाना सम्भव नहीं है। अहिंसा और सत्य एक दूसरे से इस प्रकार गुथे हुए हैं कि उन्हें एक–दूसरे से छुड़ा कर अलग करना व्यवहारता असम्भव है। वह एक सिक्के के या यह कहा जाये कि एक चिकनी अचिहिनत धातु की चकती के दो पहलुओं के समान है। कौन कह सकता है कि कौनसा सीधा और कौनसा उल्टा पहलू है। (फ्रॉम यर्वदा मन्दिर, पृ. 8, 9) किन्तु अहिंसा में हमारा विश्वास दृढ़ करने के लिये ईश्वर नाम की किसी अतिभौतिक शक्ति पर विश्वास करना आवश्यक नहीं है। किन्तु ईश्वर आकाश में निवास करने वाली कोई शक्ति नहीं है। ईश्वर हम सब में निवास करने वाली अदृश्य शक्ति है। और नाखून मांस के जिनता निकट है वह हमारे उससे भी अधिक निकट है – ईश्वर हममें से प्रत्येक में है अतः हमें निरपवाद रूप से प्रत्येक मानव से तादात्म्य स्थापित करना चाहिये। पुरानी भाषा मे इसे आन्तरिक संयोग या आकर्षक कहते हैं। बोलचाल की भाषा में इसे प्रेम कहा जाता है। (बोस, एन.के., 'सिलेक्शन्स फॉम गान्धी' पृ. 8)

ईश्वर का निवास समस्त मानव एवं मानवेतर प्राणियों में है। इस प्रकार ईश्वर के सम्बन्ध में गान्धी जी की दृष्टि उपनिषदों पर आधारित सर्वात्मवादी है।[21]

यथार्थतः नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में "पर" की विविधता के मध्य "स्व" की अन्विति की उपलब्धि ही नीतिशास्त्र की नींव है। समस्त प्राणियों के मध्य "एक" ही विराजमान है, यही महान् सत्य है। इसका अनुमोदन हिन्दू शास्त्रों द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है :

हे भारत, जिस प्रकार एक सूर्य इस समस्त जगत् को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार क्षेत्री (क्षेत्रों का स्वामी) समस्त क्षेत्रों को प्रकाशित करता है।[22]

पुनः हे गुडाकेश, समस्त प्राणियों के अन्तःकरणों में स्थित आत्मा मैं ही हूँ। मैं ही प्राणियों का आदि, मध्य एवं अन्त हूँ।[23]

पुनः अपने को ही नाना पदार्थों में बतलाते हुए प्रभु कहते हैं : हे अर्जुन, जो इन समस्त प्राणियों का बीज है वह मैं हूँ, चराचर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे बिना हो।[24]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में हम पाते हैं : समस्त प्राणियों में एक ही ईश्वर निहित है, वह सर्वव्यापी है, समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा है।[25]

अतः विश्वप्रेम के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति सत्य या ईश्वर की उपलब्धि कर सकता है। पुनः 'भगवद्गीता' के वचनों को देखें, जो व्यक्ति नष्ट होते हुए सब चराचर

भूतों में परमेश्वर को नाश रहित और समभाव से स्थित देखता है, वही यथार्थ दखता है। वह व्यक्ति सबमें समभाव से स्थिर परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है। जिस क्षण वह व्यक्ति भूतों के पृथक्–पृथक् भाव को एक परमात्मा में ही स्थित तथा उस परमात्मा में ही स्थित तथा उस परमात्मा में ही सम्पूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह ब्रह्मा की उपलब्धि कर लेता है।[26]

बृहदारण्यकोपनिषद् में अपनी पत्नी मैत्रेयी को समझते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा है कि समस्त मानवीय सम्बन्धों का आधार आत्मप्रेम का भाव ही है: अरे. यह निश्चय है कि पति के प्रेम के लिए पति प्रिय नहीं होता. आत्मा के अपनेही प्रेम के लिए पति प्रिय होता है।[27]

अरे, सबके प्रेम के लिए सब प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रेम के लिए सब प्रिय होते हैं।[28] और श्वेताश्वतरोपनिषद् की घोषणा है कि आत्माओं में एकत्व की अनुभूति ही बन्धनों से मुक्ति का उपाय है – मोक्ष की प्राप्ति है : कल्याण स्वरूप एक परमदेव को धृत के ऊपर रहने वाले सारभाग की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ जानकर तथा समस्त जगत् को सब ओर से घेर कर स्थित हुआ जानकर व्यक्ति समस्त बन्धनों से छूट जाता है ।[29]

तो ईश्वर हितकारी है या अहितकारी ? गान्धीजी का कहना है –मुझे लगता है कि ईश्वर विशुद्ध रूप से हितकारी है क्योंकि मैं देख पाता हूँ कि असत्य के मध्य सत्य अविचलित है, अन्धकार के मध्य प्रकाश अविचलित है। अतः मेरा निष्कर्ष है कि ईश्वर जीवन है, सत्य है, प्रकाश है। वह प्रेम है – परम श्रेयस् है।[30]

यह युक्ति दी जा सकती है कि जो गान्धीजी ने व्यक्त किया है वह तर्कपूर्ण और विवेकयुक्त है, किन्तु एकांगी है। इसमें दूसरे अंग की उपेक्षा की गयी है, क्योंकि यदि जीवन सत्य है तो मृत्यु भी समान रूप से सत्य है, यदि यह सत्य है कि अन्धकार के मध्य प्रकाश अविचलित है, तो यह भी सत्य है कि अन्धकार प्रकाश को आवृत कर लेता है, और असत्य भी उतना ही अस्तित्ववान् एवं वास्तविक है जितना सत्य। (हो सकता है सत्य को असत्य से विलगाने के सहल कारण के लिए ही ऐसा हो।) निःसन्देह इस युक्ति मे बल है। किन्तु गान्धीजी का अभिप्राय यह है कि यद्यपि प्रकृति में यथेष्ट विकर्षण है, तथापि वह आकर्षण के बूते पर ही विद्यमान है। पारस्परिक प्रेम ही प्रकृति को बनाये रखता है। जगत् नाश पर आधारित नहीं हो सकता और उनका अभिनतः है:

यह तथ्य कि जगत् में इतने सारे मनुष्य अब भी जीवित है यह प्रदर्शित करता है कि यह (जगत) शस्त्रबल पर नहीं, सत्य एवं प्रेम के बल पर आधृत है। अतः इस बल की सफलता का सबसे बड़ा और परम अखण्डनीय साक्ष्य इस तथ्य से प्राप्त होता है कि जगत् युद्धों के बावजूद अब भी विद्यमान है।[31]

वास्तविकता सत्य है और जहां सत्य है, वहीं ज्ञान है। यही कारण है कि चित् (विशुद्ध ज्ञान) शब्द ईश्वर से सम्बद्ध है। पुनः सच्चा ज्ञान आनन्द से संयुक्त है।

गान्धीजी के अनुसार वास्तविकता सत् चित् आनन्द ही है। ईश्वर सत्य, सौन्दर्य एद शिवत्व समस्त मूल्यों का परिरक्षक है। किन्तु गान्धीजी के लिए मूल्य के रूप में सत्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इसका विचार है कि अन्य मूल्य उसी पर आश्रित है।

अब यदि ईश्वर "शिव" (सम्पूर्णतः श्रेयस्) है तो फिर अशिव की स्थित क्योंकर है ? गान्धीजी का उत्तर है, "मुझे ज्ञात है कि उसमें अशिव है ही नहीं और फिर भी यदि अशिव है तो वही उसका द्रष्टा है और फिर भी उससे अस्पृष्ट है।"[32] निश्चय ही यह कथन विरोधाभासमूलक है। ईश्वर अशिव का द्रष्टा है और फिर भी उससे अस्पृष्ट है। यदि ईश्वर शिव है तो उसमें अशिव हो ही कैसे सकता है ? किन्तु गान्धीजी अशिव के दार्शनिक और धर्मशास्त्रीय पहलुओं के बारे में उतना नहीं सोचते थे जितना अशिव के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जैसे विशिष्ट प्रकारों के बारे में। अतः वे इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट नहीं लगते। अशिव की सत्ता ही क्यों है ? इस प्रश्न के उत्तर में गान्धीजी का कहना है कि अशिव की सृष्टि ईश्वर ने हमारी परीक्षा के लिए की है। उनका कथन है, "ईश्वर जिन पर अनुग्रह करना चाहता है कभी–कभी उनकी कठोरतम परीक्षा भी लेता है।[33]" फिर नैतिक नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए अशिव दण्ड स्वरूप भी है।[34] आधुनिक तर्कशील व्यक्ति को यह निरूपण वस्तुतः असंगत लगता है और हम कह सकते हैं कि जहां तक इस समस्या का सम्बन्ध है गान्धीजी साधारण हिन्दुओं के विश्वास के ऊपर नहीं उठते।

संकुचित अर्थ में महात्मा गान्धी को दार्शनिक स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वर और अशिव के सम्बन्ध में गान्धीजी का दर्शन क्रमबद्ध नहीं है और यद्यपि उनकी तत्वमीमांसा का सग्रथन[35] करने के प्रयास हुए हैं किन्तु हमें यह सार्थक नहीं ज्ञात होते । गान्धीजी सिद्धान्तों से अधिक व्यवहार पर बल देने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने 'अहिंसात्मक सत्याग्रह' के सिद्धान्त को विकसित करना चाहा था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'नीतिशास्त्र' की आवश्यकता थी, दर्शन की नहीं। प्रो. राय का मत ठीक ही है :

उनकी आकांक्षा नैतिक प्रकर्ष की थी। सत्याग्रह का लक्ष्य मनुष्य को सर्वोच्च नैतिक स्तर तक उठाना है। नैतिक स्तर के ऊपर धार्मिक एवं दार्शानिक स्तर हैं। गान्धीजी का लक्ष्य विनम्र है और उनका आदर्श नैतिक स्तर पर ही प्रतिष्ठित है।[36]

धार्मिक रहस्यवादियों का ईश्वर या तत्वज्ञानी दार्शनिकों का ब्रह्म उनकी साधना के क्षेत्र के परे है। और तथ्य की बात तो यह है कि उनके 'समाज दर्शन' का अध्ययन करते समय हम उन्हीं कोटियों से सम्बद्ध है जो अहिंसात्मक सत्याग्रह के उनके सिद्धान्त को समझने के लिए आवश्यक है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ईश्वर में उनका विश्वास यह उन क्रान्तिकारियों के लिए वास्तविक समस्या है जो जडवाद में विश्वास करते हैं, किन्तु, सामाजिक परिवर्तन की उनकी पद्धति के प्रति आकृष्ट है।[37] किन्तु, जैसा हमने देखा है गान्धीजी की ईश्वर सम्बन्धी धारणा अत्यन्त तर्कसंगत है और कोई विरला ही होगा जो ऐसे ईश्वर पर विश्वास करने से इन्कार करे। उन्होंने एक बार कहा था : अपने

में अनन्त गुना विश्वास ही ईश्वर है।[38] पुनः तुम किसी भी सिद्धान्त पर विश्वास करो, उसे जीवन्त करो और कहो कि वही तुम्हारा ईश्वर है.... मैं उये यथेष्ठ समझूँगा। किसी भी सफल सामाजिक क्रान्ति के लिए नहीं, किसी भी सार्थक मानव कार्य के लिए ऐसी श्रद्धा अनिवार्य है। राबर्ट फ्लिन्ट का कहना है:[39]

ईश्वर–विश्वासी को सुकृत की वह प्रत्येक प्रेरणा प्राप्त है जो अविश्वासी को सुलभ है, साथ ही उसके पास उसका विश्वास भी है जो सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरणा है। प्रायः विश्वासी व्यक्ति के लिए भी अपनी वासना को जीतना, बाधाएँ उत्पन्न करने वाले बोझों को बर्दाश्त करना एवं अन्याय के विरूद्ध न्याय के लिए युद्ध करना पर्याप्त कठिन होता होगा ? उसकी दुर्वासनाएँ इस भावना से निषिद्ध नहीं होती कि असीम न्यायी उन्हें देखता और उनकी भर्त्सना करता है, न ईश्वराभिमुख होने के उसके प्रयास इस चेतना से समर्थित होते है, कि सर्वशक्तिमान एवं परम क्षमाशील उन्हें अनुमोदित एवं अनुगृहीत करता है।[40]

उदाहरणार्थ, हम वर्तमान समाज–व्यवस्था को बदलना चाहते हैं। अतः हमारे पास उसका कोई आदर्श रूप अवश्यमेव होना चाहिए जिसके अनुरूप परिवर्तन करने के लिए हम प्रयत्नवान् होते हैं। उसमें हमें दृढ़ आस्था होनी चाहिए। हमें उसे जीवन्त बनाना चाहिए और उसे अपना ईश्वर कहना चाहिए। और, जैसा कि गान्धी जी ने एम. सेरेसोल पियरे को कहा था,[41] न केवल महान् नेता को बल्कि उन सबको जो उनके अनुगामी है ऐसे ईश्वर की उपलब्धि चौबीसों घंटे प्रति मिनट करनी चाहिए। ईश्वर की सत्ता नहीं भी हो सकती है, किन्तु उपर्युक्त कारण से कम से कम उसकी आवश्यकता तो निश्चय ही है।

गान्धीजी की दृष्टि में सृष्टि –

हमने देखा कि गान्धीजी के अनुसार सत्य की उपलब्धि केवल अहिंसा की साधना द्वारा ही हो सकती है, किन्तु अहिंसा की साधना की अर्थवत्ता समाज में या हिन्दुओं के कथनानुसार संसार में ही है। गान्धीजी संसार का त्याग करना नहीं चाहते अतः उन्होंने अपने को अद्वैतवादी से अनेकान्वादी या स्याद्वादी बनाया और संसार को सत्य मानने में आपत्ति नहीं की।

वस्तुतः विश्व सम्बन्धी इसी दृष्टि के कारण वह तथाकथित इहलौकिक कार्यों में प्रवृत्त हुए थे। वे अपने धर्म की विशेषता का निर्देश नैतिक के रूप में करते थे। उनका मत था कि ऐसे धर्म के प्रति सच्चा होने के लिए व्यक्ति को सबजीवों की अविराम एवं अविरत सेवा में निमग्न होना पड़ेगा। जीवन के इस असीम समृद्र में अपने को सर्वथा निमग्न कर उससे तादात्म्य में किये बिना सत्य की उपलब्धि असम्भव है। अतएव मेरे लिये सामाजिक सेवा में निस्तार हैं ही नहीं, इस पृथ्वी में उसके परे या उसके अतिरिक्त मेरे लिये कोई सुख है ही नहीं। इस सन्दर्भ में समाज सेवा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अन्तर्मुक्त करती है। इस योजना में न कुछ नीचा है न कुछ ऊँचा। क्योंकि सब एक ही

है। यद्यपि लगता है कि हम अनेक हैं।[42]

सृष्टि का उद्भव कैसे होता है इस सम्बन्ध में गान्धीजी ने चुप्पी साध रखी है। सम्भवतः उनके लक्ष्य के लिये इसका निरूपण एवं निर्धारण बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। तथापि यह याद करने योग्य है कि हिन्दु धर्म शास्त्रों के अनुसार सृष्टि को उद्भव अविनाशी से होता है।

मुण्डकोपनिषद् के अनुसार परमेश्वर समस्त जीवों की रचना स्वयं अपने से करते हैं – जैसे मकड़ी अपना जाल बुनती और समेटती है, जैसे पृथ्वी से विभिन्न औषधियाँ उत्पन्न होती है, जैसे सजीव पुरूष से केश और रोम निकलते हैं वैसे ही अक्षर ब्रह्मा से इस विश्व का उद्भव होता है।[43]

श्री गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं: दिन के आगमन पर अव्यक्त से ही समस्त व्यक्त की उत्पत्ति होती है और रात्रि के आगमन पर उसी अव्यक्त कहे जाने वाले में समस्त व्यक्त विलीन हो जाते हैं। भूतों के समुदाय दिनागम के समय प्रार्दुभूत होकर रात्रि के आगमन पर लीन हो जाते हैं। अतएव उस अव्यक्त से भी अव्यक्त सनातन की सत्ता अवश्य ही है जो अब भूतों में नष्ट हो जाने पर भी विनष्ट नहीं होता।[44]

मनुष्य वृत्त में मनु सृष्टि सम्बन्धी अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं – "उसने अभिध्यान कर अपने ही शरीर से विविध प्रजाति सृजना की। इच्छा कर सर्वप्रथम जल की सृष्टि की और उसमें बीज का आघाहन किया। उससे सूर्य के समान प्रभावशाली स्वर्णिम अण्डा बना और उससे सर्वलोकपितामह ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए।"[45]

गान्धीजी के अनुसार मानव जीवन लक्ष्य –

गान्धीजी अपने कल्पित मानववाद में समाज के पुर्ननिर्माण की आधारभूत शर्त स्वयं मानव की रचना ही है। अतः यह अनिवार्य हो जाता है कि हम गान्धीजी द्वारा संकल्पित मानव प्रकृति की विवेचना करें। गान्धीजी के मानव और उसके जीवन लक्ष्य की धारणा का परीक्षण करने से पूर्व हमें मानव की संकल्पना पर विचार करना चाहिये। गान्धीजी का मानव केवल हाड़ मांस का पिण्ड मात्र न होकर उससे कुछ अधिक और उसके परे भी कुछ है। उनके अनुसार इस समस्त दृश्य, अस्थायी, अचेत पदार्थ समूह के पीछे चैतन्य शक्ति आत्मा है जो अदृश्य शाश्वत, सर्वव्यापी एवं स्वप्रबुद्ध है। यह ईश्वर का अंश है। दूसरे शब्दों में यह मनुष्य में निहित परमात्मा है। गान्धीजी का कहना है कि ईश्वर और मनुष्य में तथा सृष्टियों की निम्नतर योनियों में भी कोई अन्तर्विरोध नहीं है। यह देश काल का अतिक्रमण करता है तथापि समस्त प्रतीयमान विभिन्न सत्ताओं को अनवित करता है। मैं ईश्वर की परिपूर्ण एकता में विश्वास करता हूँ अतः मानव की भी परिपूर्ण एकता का विश्वास हूँ। (यंग इण्डिया, खण्ड–2, पृ. 79) पुनः वे यंग इण्डिया के इसी खण्ड के पृष्ठ 421 पर कहते हैं – मैं अद्वैत का विश्वासी हूँ, मैं मनुष्य की ही नहीं बल्कि समस्त जीवों की अनिवार्य एकता का विश्वासी हूँ। आत्मा की अवधारणा को स्वीकार करना आधुनिक मनुष्य के लिये उतना ही कठिन है जितना ईश्वर की अवधारणा

को स्वीकार करना। यद्यपि उपनिषदों ने इस समस्या का विस्तार पूर्वक विश्लेषण कर अपने ढंग से प्रश्नों/संदेहों का निराकरण करने का प्रयास किया है। श्वेताश्वर उपनिषद् में इसका वर्णन इस प्रकार है – "अंगुष्ठमात्र, पुरुष, अन्तरात्मा सदा मनुष्यों के हृदयों में सन्निविष्ट।"[46]

इसी प्रकार बृहदारर्ण्यकोपनिषद् में कहा गया है – "वह महान् अजन्मा आत्मा वही है जो प्राणियों में विज्ञान है, और जो हृदय में आकाश है।"[47] तथापि, आधुनिक मनुष्य के लिए इस विचार को ग्रहण कर पाना कठिन है क्योंकि जंग का कथन है :

ऐसे प्रत्येक सान्त्वनादायक अभ्युपाय के तल में यंत्रणादायक सन्देह विद्यमान है। मेरा विश्वास है कि कल मिलाकर मेरी यह उक्ति अतिरंजनापूर्ण नहीं है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आधुनिक मनुष्य को सांघातिक आघात झेलना पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप वह गहरे अनिश्चय का शिकार हो गया है।[48]

जो हो, आत्मा की समस्या की गहनता से उलझना हमारे क्षेत्र एवं सामर्थ्य के बाहर की बात है। हम केवल इसी तथ्य पर बल देना चाहते हैं कि गांधी दर्शन में आत्मा का अत्यधिक महत्व है। अपनी समस्त योजनाओं एवं कार्यक्रमों में गान्धीजी मनुष्य के केवल भौतिक व्यवहारों का ही विचार नहीं करते बल्कि उसकी वास्तविक प्रकृति का, उसके सच्चे स्व का, उसके आध्यात्मिक तत्व का भी विचार करते हैं। आत्मा की सत्ता में विश्वास की आवश्यकता के सम्बन्ध में उनका मत है –

आत्मा शरीर के उपरान्त भी विद्यमान रहती है, इस ज्ञान के कारण सत्याग्रही इसी जीवन में सत्य की विजय देखने के लिए अधीर नहीं होता। अपने द्वारा सामयिक रूप में अभिव्यक्त सत्य को विरोधी भी ग्रहण कर सकें इसके प्रयास में मरण का भी वरण करने की क्षमता में ही वस्तुतः सत्याग्रही की विजय निहित है।[49]

गान्धीजी के पुनर्जन्म पर विचार –

आत्मा में विश्वास करने पर अनिवार्यतः पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास करना पड़ता है 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में कहा गया हैः इस विराट् ब्रह्मचक्र में समस्त जीवों का स्त्रोत एवं आधार हंस (व्यक्ति) अपने को नियन्ता से पृथक् मानकर भ्रमण करते रहने के लिए प्रेरित है। उससे संयुक्त होने पर वह अमरत्व प्राप्त कर लेता है।[50] 'बृहदारण्यकोपनिषद्' हमें बताता है : जिस प्रकार एक स्वर्णकार एक स्वर्णखण्ड लेकर उससे अन्य नवीनतर एवं सुन्दरतर रूप की सृष्टि करता है उसी प्रकार आत्मा इस शरीर का त्याग व र अविद्या के संयोग से अन्य नवीनतर एवं सुन्दरता रूप ग्रहण करती है।[51] एवं श्री कृष्ण गीता में कहते हैं –

जिस प्रकार कोई मनुष्य फटे–पुराने वस्त्रों को त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार देही (आत्मा) जीर्ण शरीरों का त्याग कर नवीन शरीर ग्रहण करता है।[52] गान्धीजी भी पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। वे लिखते हैं : मैं पुनर्जन्म में उतना ही विश्वास करता हूँ जितना अपने वर्तमान शरीरी की सत्ता पर। अतएव, मैं जानता हूँ कि

स्वल्प प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाता।[53]

इस विश्वास के कारण की कल्पना करना कठिन नहीं है। इसी विश्वास के कारण यदि वे अपने स्वप्न को एक वर्ष के भीतर रूपायित नहीं कर पाते हैं तो "वे कई शताब्दियों की अवधि में भी उसके लिए समान रूप से प्रस्तुत रहते हैं।"[54]

जीवन का उद्देश्य –

गान्धीजी का कथन है – जीवन एक प्रेरणा है। इसका लक्ष्य पूर्णता के लिए प्रयासशील रहना है, जो आत्मोपलब्धि है।[55] एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं:

जो मैं उपलब्ध करना चाहता हूँ, जिसकी उपलब्धि के लिए मैं इन तीस वर्षों से प्रयासशील और लालायित हूँ, वह आत्मोपलब्धि है, ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष की प्राप्ति है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं जीवित हूँ, प्रयत्नवान् हूँ, इसी के लिए मेरा अस्तित्व है। मेरे भाषण, मेरे लेख, राजनीतिक क्षेत्र के मेरे समस्त प्रयास..... ये सबके सब, मेरी सम्पूर्ण क्रियाएं इसी एक उद्देश्य की ओर निर्दिष्ट है।[56] पुनः मैं सत्य का एक विनम्र अन्वेषी हूँ। इसी जन्म में आत्मोपलब्धि कर मोक्ष पाने के लिए मैं विकल हूँ। मेरी राष्ट्र सेवा भी मेरी आत्मा को माया के बन्धन से मुक्त करने के प्रशिक्षण का एक अंग है।[57] वे इस आदर्श का विधान समूह और व्यक्ति प्रत्येक के लिए करते थे। क्योंकि "आत्मा तो सबमें एक ही है अतः इसकी संभावनाएँ भी प्रत्येक के लिए एक जैसी ही है।"[58] गान्धी जी कहते हैं: मेरी प्रकृति भी उतनी ही विकारक्षम है जितनी मेरे दूर्बलतम् बन्धु की, अतः अन्यों के सदृश ही मुझसे भी त्रुटि होने की सम्भावना है।[59]

अतएव मेरे जीवन को नियंत्रित करने वाले आदर्श सर्वसाधारण की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं। मैं क्रमिक विकास द्वारा उन तक पहुँचा हूँ। .....मुझे इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि कोई भी स्त्री या पूरूष उसकी उपलब्धि कर सकता है, जिसकी मैंने की है, यदि वह भी वैसे ही प्रयास करें और वैसे ही आशा और आस्था पोषित करे।[60]

अन्यत्र वे कहते हैं : और मेरा दावा है कि मैं जिसका अभ्यास करता हूँ, उसका अभ्यास सभी कर सकते हैं क्योंकि मैं एक अत्यन्त साधारण मरणशील व्यक्ति हूँ, और मैं भी उन्हीं प्रलोभनों और दूर्बलताओं का शिकार हो सकता हूँ जिनका शिकार हमारे क्षुद्रातिक्षुद्र बन्धु हो सकते हैं।

उनका विश्वास कहां तक विज्ञान–सम्मत है, इसका अनुसन्धान करना मनोवैज्ञानिकों का कार्य है, हमारा इससे विशेष सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार गान्धीजी का जीवन–लक्ष्य हिन्दू तत्वदर्शियों के जीवन–लक्ष्य से भिन्न न था। किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि अधिकांश हिन्दू तत्वदर्शियों के अनुसार मुमुक्षु को समस्त लौकिक व्यवहारों से तटस्थ रहना ही चाहिए। इसी कारण साधक–गण गुफाओं में निवास करते थे, सांसरिक व्यापारों से अनभिज्ञ होते थे और चौबीस घंटे "उच्चतर" माने जाने वाले तत्व में निमग्न रहते थे। किन्तु पूर्ववर्ती विवेचन के अनुसार गान्धी जी संसार को सत्य मानते थे, अतएव

कहते थे, "अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुफा की शरण लेना मेरे लिए आवश्यक नहीं है।" क्योंकि उनका विचार था: एक गुफा में रहने वाला व्यक्ति हवाई किले बना सकता है, जबकि जनक के समान महल में रहने वाले को किले नहीं बनाने हैं। वह गुफा में रहने वाला जो विचारों के पंखों के सहारे जगत् पर मंडराता रहता है, शान्ति नहीं पा सकता एवं ऐश्वर्ययुक्त वातावरण में निवास करते हुए भी एक जनक विवेकोद्भूत शान्ति प्राप्त कर सकता है।[61] केवल यही नहीं कि गान्धी जी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुफा की शरण नहीं लेते, बल्कि वे अतिशय लौकिक, राजनीतिक एवं आर्थिक व्यापारों में भी लगे रहते थे। ऐसा क्यों ? गान्धीजी का उत्तर है कि वे सत्य के अन्वेषी है और जो मनुष्य सत्य की सर्वव्यापी भावना की उपलब्धि का आकांक्षी है, वह अपने को जीवन के किसी भी क्षेत्र से अलग नहीं रख सकता। उनका कथन है, "इसी कारण सत्य के प्रति मेरी निष्ठा ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींच लिया।"[62] वस्तुतः वे राजनीति को अपरिहार्य दोष के रूप में देखते थे।[63] वे लिखते हैं: यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो सिर्फ इसीलिए कि आज राजनीति ने हमें नागपाश की तरह जकड़ रखा है, जिससे कोई कितनी भी चेष्टा क्यों न करे छूट नहीं सकता। मैं इस नाग से जूझना चाहता हूँ, साथ ही मैं राजनीति में धर्म का प्रवेश कराने की चेष्टा कर रहा हूँ।[64]

इसके अलावा, चूँकि वे "मानव जाति की परिपूर्ण एकता"[65] में विश्वास करते थे अतः वे मानव जाति से अपना पूर्ण तादात्म्य मानते थे। अतः उनके जीवन के उद्देश्य "आत्मोपलब्धि" की तब तक सिद्धि नहीं हो सकती जब तक "सर्वोदय" (सबका अधिकतम कल्याण) की स्थिति नहीं बन जाती। और तथाकथित लौकिक व्यापारों में भाग लिये बिना यह असंभव है। गान्धीजी की दृष्टि में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की विविध प्रचेष्टाएं एक दूसरे से सर्वथा कटी हुई न होकर परस्पर सम्बद्ध है और वे मिल कर संहत, अन्वित समग्र की रचना करती है। एक व्यक्ति ने गान्धीजी से सवाल पूछा कि उनके जीवन की प्रेरणा धार्मिक थी या सामाजिक या राजनीतिक ? गान्धीजी का उत्तर था, "पूर्णतः धार्मिक। स्व. श्री मान्टेग्यू ने मुझसे यह प्रश्न पूछा था जब मैं एक विशुद्ध राजनीतिक शिष्टमंण्डल के साथ उनके पास गया था। उनका आश्चर्योद्गार था, 'एक समाज-सुधारक होते हुए आप इस भीड़ के साथ कैसे मिल गए ?' मेरा उत्तर था कि यह मेरी सामाजिक गतिविधि का विस्तार मात्र था। तब तक मैं धार्मिक जीवन अतिवाहित नहीं कर सकता जब तक कि मैं सम्पूर्ण मानव जाति के साथ तादात्म्य नहीं कर लेता और वह मैं तब तक नहीं कर सकता जब तक मैं राजनीति में भाग नहीं लेता। मानवीय प्रचेष्टाओं का सम्पूर्ण क्षेत्र आज एक अखण्ड समग्र की रचना करता है, आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विशुद्ध धार्मिक कार्यों को सर्वथा पृथक खण्डों में विभक्त नहीं कर सकते।"[66]

गान्धीजी का मत है कि आर्थिक शोषण, सामाजिक उत्पीडन एवं राजनैतिक दास्ता सर्वोदय की सफलता में बाधाएं हैं। अतः आत्मोपलब्धि के लिये यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाएं जिसमें मानव आर्थिक राजनैतिक एवं

सामाजिक स्वतंत्रता एवं गौरव का सकारात्मक उपयोग कर सके। उनका विचार था जो कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं वह नहीं जानते है कि धर्म का अर्थ क्या है।[67] पुनः वह यह कहते हैं कि जो यह नहीं जानता कि देशभक्ति या अपने देश के प्रति ममत्व क्या है. वह अपना धर्म या सच्चा कर्तव्य ही नहीं जानता।[68]

गान्धीजी भौतिक और पराभौतिक स्तरों में अन्तर नहीं करते थे। जब प्रोफेसर ऑर्नाल्ड टायनबी ने अपनी पुस्तक "ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री" में इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि गान्धीजी ने अपने सांसरिक जीवन में अहिंसात्मक पद्धति के प्रयोग का साहस कैसे किया। तब गान्धीजी के पट शिष्य के रूप में प्रसिद्ध श्री महादेव देसाई ने इस प्रकार जवाब दिया। क्योंकि गान्धीजी सांसरिक एवं आदि भौतिक स्तरों में जहां तक उन्हें नियंत्रित करने वाले नैतिक एवं भौतिक नियमों का सम्बद्ध है, कोई भेद करने से मना करते हैं उनके लिये बाहरी विश्व अन्दर के विश्व का प्रतिबिम्ब मात्र है। उन्होंने अनेक बार यह कहा है कि विश्व अणू में समाया हूआ है। अणू के लिये एक और विश्व के लिये दूसरा नियम तो नहीं है। केवल कवि दृष्टि ने उन्हें यह सामर्थ्य नहीं दी थी कि –

"मुठ्ठी में अनन्तता बांधे एक घड़ी में शाश्वतता।
देखें जगत् रेणू के कण में, वन्य कुसुम में स्वर्गिकता।।"

अपितु वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति ने जिससे अनिष्ठा से प्राप्त होती है कि तब तक नैतिक सिद्धान्तों का कुछ अर्थ ही नहीं होता ज़ब तक वह मानव के दैनिक व्यवहारों में आचरण का मार्गदर्शक का कार्य नहीं करते।[69] श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी गान्धीजी के इस सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी इस प्रकार करते हैं। गान्धीजी ने पारलौकिकता को, जो भारत के लिये मनोग्रसित बन चुकी थी, समाप्त कर दिया।[70]

गान्धीजी की दृष्टि में मानवीय प्रकृति –

गान्धीजी की दृष्टि में मानवीय प्रकृति मूलतः अहिंसात्मक प्रतीत होती है। उनकी घोषणा है अहिंसा मेरे विश्वास का प्रथम अर्न्तःनियम है। यह मेरे विश्वास का अन्तिम नियम भी है। यह मेरे पंथ का भी अन्तिम अर्न्तःनियम है।[71] अतएव अहिंसा का प्रचार ही मेरा जीवन लक्ष्य है। इस लक्ष्य की सिद्धि के अतिरिक्त मेरी और कोई अभिरूचि नहीं है।[72] यर्थाथतः अहिंसा ही उनका धर्म है।[73]

हिंसा में लिप्त, पशुतः से लांछित रक्त प्रवाह से स्नात, विश्व में इसकी कल्पना करना कठिन हीं नहीं बल्कि असम्भव है कि अहिंसा प्रचार का गान्धीजी का लक्ष्य कभी भी सफल होगा तथापि जब अहिंसा के इस देवदूत का स्वयं उसके एक देशवासी द्वारा गोली मार दी गई तब विश्व ऐसे विश्वास के प्रति और भी सन्देह करता है। अतः यह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है कि उनके समालोचक उनके दर्शन का अर्थ यह करते हैं क्योंकि उनके अनुसार गान्धीजी मूलरूप से असत्य मनुष्य की अर्न्तजाति सत्ता पर विश्वास करते थे।[74] इस सम्बन्ध में हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि वह विद्यमान मानव प्रकृति से अनभिज्ञ नहीं थे। वे हमारी पशु प्रकृति के प्रति जागरूक थे। उनका

कहना था – "सम्भवतः आदि में हम सब पशु थे, मैं यह विश्वास करने के लिए प्रस्तुत हूँ कि हम विकास की धीमी प्रक्रिया द्वारा पशु से मनुष्य बने हैं।[75] लेकिन मनुष्य को उत्थान और पतन इन दो रास्तों में से एक को चुनना ही होगा। किन्तु क्योंकि उसमें पशु विद्यमान है अतः वह उत्थान के स्थान पर पतन मार्ग अधिक जल्दी से चुनेगा। विशेषकर जब यह पतित मार्ग एक सुन्दर आवरण से युक्त उसके सामने उपस्थित किया जाता है।[76] और हम पशुबल के साथ पैदा हुए थे किन्तु हमारे जन्म हुआ था हमारे भीतर निवास करने वाले ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिये। वस्तुतः यही मानव का विशेषाधि ाकार है जो उसे पशु सृष्टि से पृथक करता है।[77] मानव एवं राष्ट्रों के आपसी प्रतिद्वन्द्व और संघर्ष, विरोध और झगड़े उन्हें मनुष्य की अन्तःजाति अहिंसात्मक प्रकृति सम्बन्धी अपने विश्वास से विचलित नहीं कर पाते थे। क्योंकि वे प्रेम को ही हमारे अस्तित्व का नियम मानते थे।[78] लेकिन क्या एक सांसरिक व्यक्ति के लिये इसकी उपलब्धि असम्भव प्रायः नहीं है ? जो उन्हें स्वप्नदर्शी कहते थे, अपने उन आलोचकों को जवाब देते हुए गान्धीजी ने कहा था, "मैं स्वप्नदर्शी नहीं हूँ, मेरा दावा है कि मैं व्यावहारिक आदर्शवादी हूँ। अहिंसा धर्म ऋषियों और सन्तों के लिये ही नहीं है। यह सर्वसाधारण जनता के लिये भी है। अहिंसा हमारी प्रजाति का भी धर्म है। हिंसा जैसा पशुओं का है। पशु में आत्मा सुप्त रहती है और वह शारीरिक बल के अतिरिक्त और कोई नियम नहीं जानता। मनुष्य की मर्यादा के लिये एक उच्चतर नियम के प्रति आत्मिक बल के प्रति आनुगत्य अपेक्षित है।[79]"

इस प्रसंग में यह विचार करने योग्य बात है कि महात्मा गान्धी संसार में यदि सर्वाधिक नहीं तो सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्तियों में एक थे। प्रोफेसर राधा कृष्णन का कथन है– संसार के विभिन्न हिस्सों में यात्रा करते समय मैंने लक्ष्य किया है कि गान्धीजी का यश राष्ट्रों के प्रमुख राजनीतिज्ञों एवं नेताओं से अधिक विश्वजनीन है, और व्यक्तित्व उनमें से किसी आशयों पर अधिक प्रेमास्पद एवं समाधृत है। उनका नाम से इस सीमा तक सुपरिचित है कि मुश्किल से ही कोई ऐसा किसान या मजदूर होगा जो उन्हें मानव जाति का मित्र नहीं मानता हो।[80]

इसका कारण क्या है, क्या यह केवल गान्धीजी के स्वप्नों तथा सनकों के कारण है ? क्या यह उनके एक बड़े संगठनकर्ता या लोकप्रिय जन नेता या महान् राजनीतिज्ञ अथवा नैतिक सुधारक होने के परिणाम स्वरूप है ? कवीन्द्र, रवीन्द्र नाथ टैगोर का उत्तर है कि, गान्धीजी की इतनी लोकप्रियता दरअसल उनके मानवीय होने के कारण, तथा जैसा कि वह स्वयं कहते हैं, उनके मानव प्रकृति के प्रयाप्त खरे अध्येता होने के कारण है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार है, निश्चय ही वह एक राजनीतिज्ञ संगठनकर्ता, जननेता, नैतिक सुधारक के रूप में महान् है परन्तु एक मनुष्य के रूप में वह इन सबसे महत्तर हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी पहलू या कार्य क्षेत्र उनकी मानवता को सहमत नहीं कर पाता। बल्कि वे सब उससे अनुप्रेरित एवं पोषित हैं। यद्यपि वे असंशोधनीय आदर्शवादी हैं और समस्त आचरणों पर अपने कुछ निश्चित बन्धे बन्धाएं

नियमों के आधार पर ही विचार करने के अभ्यासी हैं, तथापि वे अनिवार्यता मनुष्य क प्रेमी हैं, केवल विचारों के नहीं, जिसके चलते वे अपनी क्रान्तिकारी योजनाओं में इतने सतर्क एवं संरक्षणशील हैं।

यदि वे समाज के लिये किसी प्रकार का प्रस्ताव करते हैं तो वह निश्चय ही सर्वप्रथम स्वयं उस अग्नि परीक्षा से गुजरते हैं। यदि वे किसी बलिदान की मांग करते हैं तो अवश्यमेव सर्वप्रथम स्वयं उसका मूल्य चुकाते हैं।[81] कुछ भी हो उनके अनुसार हमें आज की हिंसा से निराशावादी नहीं हो जाना चाहिए। क्योंकि अहिंसा हिंसा को एक ना एक दिन अवश्य ही पराजित कर देगी। गान्धीजी का विचार है कि "यह तथ्य कि संसार में इतने सारे मनुष्य अभी भी जीवित हैं, यह प्रदर्शित करता है कि यह शस्त्र बल पर नहीं, सत्य एवं प्रेम की शक्ति पर आधारित है। अतएव इस शक्ति की सफलता का सबसे बड़ा एवं सर्वथा अकाट्यतर्क एवं साक्ष्य इस तथ्य में ही निहित है कि संसार के समस्त युद्धों के बावजूद यह विद्यमान है।"[82]

गान्धीजी का विचार है कि[83] वर्तमान पूंजीवादी समाज व्यवस्था अहिंसा के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। इसी के चलते अहिंसा का संचालन हमें दूरवर्ती स्वप्न के समान लगता है। किन्तु हमें इसमें दृढ़ विश्वास रखना चाहिय कि "अहिंसा परिपूर्ण स्थिति है। यह वह लक्ष्य है जिसकी ओर समस्त मानवता को अग्रसर होना है।"[84] यह केवल स्वतः सिद्ध तर्कों पर ही नहीं अपितु वैज्ञानिक भूमिका पर स्थापित है। यदि हम इस पर विश्वास करते हैं कि वर्तमान अल्प हिंसक मानव अधिक हिंसक पशु से विकसित हुआ है तो हमें इसका अनुबोधन करना ही चाहिए कि विकास यहीं पर रूक नहीं गया है। हिंसा से अहिंसा की उत्पत्ति निश्चित ही हुई है। यह कोरा चिन्तन नहीं बल्कि तार्किक आवश्यकता है।

गान्धीजी का आदर्श सत्याग्रह –

गान्धी दर्शन व बापू के द्वारा निरूपित मानवीय प्रकृति पर विचार कर लेने के बाद मानवीय जीवन के आदर्श–सत्यग्रह के अवधारणा पर भी विचार करना आवश्यक है। हमें यह पता है कि गान्धीजी सत्य के अन्वेषी थे। सत्य की उपलब्धि के लिए ही वह विविध प्रकार के कार्यों में अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे। उन्होंने सत्य की उपलब्धि के लिये एक नई प्रविधि "सत्याग्रही प्रविधि" का विकास किया। तथा उनका आग्रह था कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्याग्रही होना चाहिये। अतः उनका आदर्श मानव सत्याग्रही है।

सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य के लिए आग्रह ही है। किन्तु एक सिद्धान्त के रूप में यह प्रविधि अत्यन्त प्रभावी परन्तु व्यवहार में अत्यन्त कठिन है। इसके लिये सैनिक अनुशासन से भी कठोर अनुशासन अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में श्री आर.आर. दिवाकर का मत उचित प्रतीत होता है।[85] सत्याग्रही को सैनिक के मशीनी अनुशासन से कहीं अधिक आत्मा अनुशासन की आवश्यकता है। यद्यपि उसका काम यांत्रिक अनुशासन

की प्रर्याप्त मात्रा के बिना भी नहीं चल सकता। सबसे प्रेम करने, कोधित न होने, ओर बिना दूर्भावना के कष्ट सहने की आदत सचमुच सरलता पूर्वक नहीं पड़ती। प्रार्थना एवं ध्यान की कठोर साधना तथा जीवन मूल्यों के पुर्ननिर्धारण द्वारा ही कोई मनुष्य जीवन के प्रति ऐसे नये दृष्टिकोण की आधारभूत अर्हता पा सकता है।[86]

कुछ भी हो गान्धीजी का आदर्श मानव सत्याग्रह ही है। प्रोफेसर हसले की तरह भले ही कोई अनाशक्त यह कहे कि – "आदर्श मानव अनासक्त मानव है, अपनी शारीरिक संवेदनाओं एवं लालसाओं के प्रति अनासक्त। विविध इच्छाओं के विषयों के प्रति अनासक्त। अपने क्रोध एवं घृणा के प्रति अनासक्त। अपने एकान्तिक अनुरागों के प्रति अनासक्त। अर्थ, यश, सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति अनासक्त। कला, विज्ञान, चिन्तन मनन, लोक कल्याण के प्रति भी अनासक्त। हाँ इनके प्रति भी अनासक्त।[87]"

ऐसे अहिंसात्मक सत्याग्रही को गान्धीजी की शब्दावली में वैष्णव भी कहा जा सकता है। इस वैष्णव की विशेषताएँ उनके एक प्रिय एवं सुप्रसिद्ध भजन में इस प्रकार वर्णित है। वैष्णव उसी को कहा जाए जो दूसरों के दर्द को समझता हो, दूसरों के दुख के समय उनका भला करता हो, परन्तु मन में उसके लिये अभिमान न करता हो, जो समस्त लोक में सबकी वंदना करता हो। किसी भी निंदा न करता हो, जिसके विचार शब्द एवं कार्य पवित्र हों, उसकी जननी धन्य है। जो समदृष्टि रखता हो, मोह तृष्णा का परित्याग कर चुका हो, परायी स्त्री जिसके लिये माँ के समान हो, जिसकी जीभ झूंठ बोल ही न सके, दूसरे के धन को जो कभी हाथ न लगाता हो, जिसको मोह माया न व्याप्ती हो, जिसके मन में दृढ़ वैराग्य हो, जो निरन्तर राम नाम की रट लगाता हो, उसके शरीर में समस्त पिड़ितों का निवास है जो लोभ लालच को जीत चुका हो, कपट रहित हो, काम क्रोध का निवारण कर चुका हो, नर्सी कहता है उस वैष्णव के दर्शन करने से कुल की 71 पीढ़ियाँ तर जाती है।[88]

गांधीजी की शब्दों में उसे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, रसना–निग्रह, अभय, एवं अस्तेय (या अपरिग्रह) पर विश्वास होना ही चाहिए, जैसा कि उनके आश्रमवासियों के लिए निर्दिष्ट सप्तव्रतों से स्पष्ट है।[89]

किन्तु क्या सामान्य जनता से इस आदर्श मानव कीर तरह जीवन यापन करने की अपेक्षा करना बहुत अधिक नहीं है ? निश्चय ही यह कठिन है, किन्तु आदर्श तो आदर्श है। मनुष्य आदर्श तक उठने की केवल चेष्टा कर सकता है किन्तु वह उसे पूर्णतः कभी उपलब्ध नहीं कर सकता। गांधी जी का कथन है : आदर्श एवं व्यवहार में सदा अपूरणीय खाई रहेगी ही। यदि उसे उपलब्ध करना सम्भव हो जाए तो वह आदर्श रहेगा ही नहीं।[90]

किन्तु एक आदर्श की भी – एक तार्किक अमूर्तन की, एक तात्विक अवधारणा की भी– अपनी व्यावहारिक उपयोगिता है। क्या गणित का 'बिन्दु' या सरल रेखा वास्तविकता है ? निश्चय ही नहीं। किन्तु क्या अभियंताओं का विशाल ठोस एवं वास्तविक भवन इसी अवास्तविक एवं आदर्श अमूर्तन पर आधारित नहीं है ? अतः गांधी जी के शब्दों में

आवश्यकता इस बात की है कि : हम अपने आदर्श के बारे में निश्चित रहें। हम इसकी उपलब्धि करने में सदा असफल रहेंगे किन्तु इसके लिए प्रयास करना कभी नहीं छोड़ेंगे।[91]

गान्धी दर्शन में हमसे यह अपेक्षा है कि हम भयभीत न हों, निराश होकर प्रयास करना न छोड़ दें, आदर्श को अधःपतित कर सस्ता न बनायें और इस प्रकार असत्य का सेवन कर अपने को हीनतर न बनायें।[92] कुछ अत्यन्त साहसी एवं निर्भीक व्यक्तियों को आगे आना चाहिए एवं इस स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए मन और प्राण से जुट जाना चाहिए क्योंकि गांधी जी का कथन है : कुछ व्यक्ति जो कर सकते हैं, उसका अनुकरण दूसरे भी करेंगे और इस प्रकार यह आन्दोलन गणित के प्रश्न के नारियल की तरह बढता जायेगा।[93] और जैसा कि गीता में भी कहा गया है – श्रेष्ठ जन जैसा अचारण करते हैं इतरजन वैसा ही करते हैं।[94]

यद्यपि "अनासक्ति" से गांधी जी का अभिप्राय वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक स्थिति से था तथापि उनके सन्वत् जीवन के कारण पूर्वग्रह–ग्रस्त होकर बहुत से लोग यह समझने लगे कि वे निरानन्द एवं स्वाद रहित जीवन–पद्धति के समर्थक हैं। अनन्य अनेक विषयों के अनुरूप ही इस क्षेत्र में भी भ्रान्ति का प्रमुख कारण यह है कि ऐसे व्यक्तियों ने शायद ही कभी गांधीजी की मूल रचनाओं के अध्ययन का कष्ट उठाया है। उनकी सूचनाएं वस्तुतः उन द्वितीय या तृतीय कोटि के परोक्ष सूचना–स्त्रोतों पर अवलम्बित है जिनमें गांधी जी को विकृत रूप से उपस्थित किया गया है। यह निश्चय ही भाग्य की विडम्बना है कि गांधीजी के प्रति सहानुभूति सम्पन्न व्यक्तियों ने भी उन्हें गलत समझा है। रेने फूलों मिलर ने (जिन्हें हम पहले भी उद्धृत कर चुके हैं) उन्हें "वैराग्य का महान् पुरोहित" की संज्ञा दी है, और कहा है –[95] गान्धीजी संन्यासियों की उस कोटि के अन्तर्गत आते हैं जो सचेत रूप से इन्द्रिय दमन करते हैं, जीवन की समस्त रंगरेलियों और ऊष्माओं को अस्वीकारते हैं, जीवन–धारण के लिए अनावश्यक सभी कुछ को त्यागते हैं, शरीर विघटन को त्वरान्वित करते हैं ताकि इसके भीतर आबद्ध आत्मा परमात्मा से शीघ्रातिशीघ्र संयुक्त हो सके।[96]

हाँ, गान्धी जी ने सचेत रूप से जीवन की समस्त रंगरेलियों और ऊष्माओं को अस्वीकारा था और जीवन धारण के लिए अनावश्यक सभी कुछ को त्यागा था। किन्तु यह मानना गलत है कि उन्होंने सन्यासी जीवन को स्वीकार कर लिया था। वे परिवार को त्याग कर सन्यासी नहीं बन गये थे, उन्होंने अपना सारा जीवन एक गृहस्थ की भांति अपनी पत्नी और बच्चों के साथ बिताया था, और फिर उन्होंने इस क्षेत्र में जो भी किया केवल अपने तय किया, यह कोई सार्वजनिक विधान नहीं था। उनके बहुत से भक्तों ने तथाकथित सन्यासी जीवन–पद्धति को नहीं अपनाया। गान्धी जी ने क्यों और कब इस प्रकार का जीवन स्वीकार किया इसके सम्बन्ध में एक कहानी है। उनके अन्तरंग सहयोगी श्रीकृष्णदास ने उस घटना को पुंखानुपुंख रूप से वर्णित किया है और उद्धरण की दीर्घता के बावजूद हम उसे यहां देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। उक्त घटना

गान्धीजी के 1920 के दक्षिण के दौरे से सम्बद्ध है। श्री कृष्णदास के शब्दों में –

ज्यों ज्यों सितम्बर का अन्त निकट आने लगा महात्मा जी अधिकाधिक असंदिग्ध होते गये कि निर्धारित समय के भीतर खद्दर के अपने कार्यक्रम की पूर्णता के लिए उनके द्वारा अपेक्षित शक्ति, संकल्प एवं साहस प्रदर्शित करने में देश असफल रहा है। तदतिरिक्त तमिलनाड़ु की सभाओं में भीड़ द्वारा किये गये भयानक उच्छृंखल आचरण के वे स्वयं प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे और उन्होंने इसका पहले से कहीं अधिक अनुभव किया कि जब तक जनता को अनुशासित सामूहिक आचरण की शिक्षा नहीं दी जानी तब तक देश में भद्र अवज्ञा जन आन्दोलन आरम्भ करने की कोई आशा नहीं है। और इस पर भी पहले से कहीं अधिक उनका विश्वास दृढ़ हो गया था कि जनता के मस्तिष्क में व्यवस्थित एवं अनुशसित आचरण के विचार का प्रवेश कराने के लिए तथा उन्हें सामूहिक नियंत्रण स्वीकार करने को तैयार करने के लिए भ खद्दर सन्देश से बढ़ कर और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार खद्दर का चरम मूल्य चरित्र परिवर्तन करने की उसकी शान्तिपूर्ण क्षमता में निहित है और इसीलिए भद्र अवज्ञा आन्दोलन से खद्दर इतने निविड़ रूप से सम्बद्ध है। खद्दर कार्यक्रम के प्रति समुचित उत्साह दिखाने में देश की असफलता से गान्धी जी के मस्तिष्क पर इतना गहरा और पीड़ादायक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने को दण्ड देने का निश्चय कर लिया। यह दण्ड अंशतः प्रायश्चित के रूप में था, किन्तु अंशतः देश के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से भी था। डिंडिगल में उन्होंने जो दस्तावेज जल्दी–जल्दी रेल में लिखा था और बाद में जिसकी प्रतिलिपि कर विविध स्थानों पर भेजने के लिए मुझे कहा था, वह जनता के प्रति एक घोषणा पत्र था, जिसमें कहा गया था कि शोक के निदर्शन के रूप में वे एक महीने के लिए धोती, कुर्ता और टोपी धारण करना छोड़ देंगे और केवल लुंगी ही पहना करेंगे तथा आवश्यकता होने पर शरीर के ऊपरी अंगो को ढंकने के लिए एक चादर ले लेंगे। जो अत्यन्त गरीब थे उनसे उन्होंने इस प्रकार की पोशाक अपनाने का और इस न्यूनतम फकीरी पोशाक से सन्तुष्ट रहने का अनुरोध किया। मदूरा में उस रात को महात्मा जी से मिलने के लिए विविध सम्प्रदायों के लोग आये थे और यद्यपि वे सबसे मुक्त भाव से बातचीत कर रहे थे तथापि मुझे लग रहा था कि उनकी मुद्रा असाधारण रूप से गम्भीर है। ....और तब रात के दस बजे एक नाई को बुलवा कर उन्होनें सिर पर उस्तरा फिरवा लिया।[97]

इस प्रकार महात्मा गान्धी ने अपनी वेशभूषा बदल डाली। श्री दास ने आगे यह भी बताया कि जब श्री राजगोपालाचारी एवं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने आकर उन्हें इस विरत करने के लिये अनेक तर्क दिये अथवा अन्तिम कदम उठाने से पहले कुछ दिन और प्रतिक्षा करने का अनुरोध किया तब गान्धीजी ने उन्हें आश्वस्त किया कि यह सन्यासी बनने के इरादे का कोई अंग नहीं है। डॉ. महादेव प्रसाद का विचार है कि उनका उद्देश्य वस्तुतः अपने देश के उन करोड़ों गरीबों से अपने को एकरूप कर देना था जो उनकी सामाजिक क्रान्ति में भाग लेने वाले थे। इस तरह हम देखते हैं कि गान्धीजी की

फकीरी पोषाक उनके आदर्श मानव की पोषाक न होकर क्रान्तिकारी की सेना का नतृत्व करने वाले सेनापति की युद्ध की पोषाक थी।[98]

इस प्रकार गान्धीजी के मानवतावाद के तत्वों के रूप में उनके मानव दर्शन तथा उसके तात्विक अंश, सत्य के स्वरूप, ईश्वरीय अवधारणा व सृष्टि सम्बन्धी विचारों के साथ–साथ आत्मा एवं पुर्नजन्म व मानव जीवन का लक्ष्य, उद्देश्य आधुनिक दर्शन शास्त्र एवं विश्व राजनैतिक दर्शन के लिये सर्वथा नये प्रत्यय प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने मानवीय प्रकृति व आदर्श सत्याग्रह की जो प्रविधि अपने समय पटल पर प्रस्तुत की वह निःसंदेह गान्धीजी को एक महान् दार्शनिक, तत्वदर्शी सिद्ध करती है। जब वह अपने अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्तों को अमल में लाते हुए जन आन्दोलन करते हैं तो एक महान् राजनेता एवं समाज सुधारक के रूप में दिखायी पड़ते हैं। इस प्रकार महात्मा गान्धी एक दर्शनशास्त्री, तत्ववेत्ता, राजनेता, समाज सुधारक और सन्त के रूप में समादृत हुए हैं। ऐसे महामानव पर संस्कृत साहित्य के काव्यकारों ने अपनी लेखनी चलाकर निश्चय ही उसे पवित्र किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के रूप में गान्धीजी के संस्कृत काव्यों में उपरिवर्णित रूपों का अन्वेषण करते हुए मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।

संस्कृत काव्यों में स्वतन्त्रता संग्राम, भारतीय जनजागरण एवं महात्मा गान्धी –

संस्कृत काव्यों में स्वतन्त्रता संग्राम एवं भारतीय जन जागरण की विवेचना से पूर्व 19वीं एवं 20वीं शताब्दी के आधुनिक संस्कृत काव्यों की प्रवृत्तियों की विवेचना अनिवार्य हो जाती है। 20वीं शताब्दी का शुभारम्भ भारत में ऐतिहासिक उद्भव और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के रूप में हुआ। पुनरुत्थान अतीत को वर्तमान पर आरोपित करता है, तथापि पुराने में थोड़ा बहुत सुधार करके उसे नये का स्थान देता है। और आगे देखने की बजाय पीछे देखता है। गान्धीवादियों जिन्हें 1920 में राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर वास्तविकता में प्राप्त हुई। पुनरुत्थान का ही आधुनिक रूप था। गान्धीवादी दृष्टिकोण न सिर्फ संस्कृत साहित्य अपितु समस्त भारतीय भाषाओं के साथ–साथ दुनिया के अन्य साहित्यों में खोजा जा सकता है।

अन्य शब्दों में पुर्नमूल्यांकन एवं पुनरुत्थान वाली प्रवृत्ति स्वतंन्त्रता संग्राम हेतु भारतीय जनजागरण की यर्थात् सम्वाहक है।

लगभग तत्कालीन स्वतन्त्रता आन्दोलन की प्रत्यक्ष कार्यकर्ता "सत्याग्रह गीता" की प्रणेत्री सौ. पण्डिता क्षमाराव ने अपने ही लोगों द्वारा अपने ही लोगों पर अत्याचार होते देखकर कहा था –

"के वयं ? कस्य देशाऽयं ? कस्यास्माकमधोगतिः ? किं धर्म्य ? किमधर्म्यम् ? चेत्यज्ञैरेतन्नचिश्तितम्।।"

अज्ञानता के भार से दबे नष्ट बुद्धि अपनों ने ही अपनों पर पशुओं से बुरे गये

गुजरे अत्याचार किये जिससे भारतीय जनता कराह उठी। यह यथार्थतः सत्य है कि जा जितना पीछे खींचा जायेगा वह उतना ही उसी वेग से ही धनुष पर चढ़े बाण की तरह वह उतना ही आगे जायेगा। भारतीय जनता को जितना पद–दलित किया गया वह उतना ही अधिक सत्याग्रहार्थ आगे बढ़ी, समुंद्र से संयोग की इच्छा वाली उद्दीम वेगवती नदी की गति की तरह प्रजा के वेग को कौन रोक सकता है ?

"प्रतिरोद्धं समर्थः कः स्रवन्तीनां समागमम्।
सिन्धुसंयोगकामानां तत्समा हि प्रजागतिः।।"

इस प्रकार गान्धी जी ने राजनीति में सत्य, अंहिसा का पुररुत्थानवादी रूख कारगर रूप से अपनाया।

आधुनिक विषयों से सम्बद्ध महाकाव्य प्रायः चरित प्रधान महाकाव्य हैं। "चरित्रगीतिर्नवराष्ट्रचेतनाप्रसूति", भारतीय मनीषा की मनोमयी धारणा ही नहीं है। अपितु जिज्ञासा और विवेकमयी कियात्मक कार्य पद्धति है इसलिए स्वातन्त्रयोत्तर जितने भी महाकाव्य लिखे गये हैं उनमें लगभग 80 प्रतिशत काव्य चरित प्रधान हैं। गान्धी के चरित्र एवं स्वतन्त्रता संग्राम में उनकी भूमिका के सन्दर्भ में गान्धी गौरवम् महाकाव्य के प्रणेता पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी द्वारा महाकाव्य की भूमिका में रचित निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

"कथयति जनवर्गो राजनीतौ न धर्मो.
भ्रमपतितमनुष्यः नैव जानन्ति धर्मम्।
जनहित लग्नं गान्धिनं राजनीतौ.
तमिह सपदि तस्या सत्यपूजा चकर्ष।।" (8/71)

स्वतन्त्रता संग्राम हेतु भारतीय जनजागरण में सहायक पण्डित क्षमाराव का निम्न श्लोक दृष्ट्व्य है –

"सत्यं विजयतां लोके मुक्तं भवतु भारतम्।
नन्दन्तु सुखिनः सर्वे देशजाश्च विदेशजाः।।"

(सत्याग्रह गीता, 18/19)

अंग्रेजों द्वारा कृत अत्याचार एवं दासत्व ग्रस्त देश को क्षमा के सिवाय और कोई उपाय नहीं अतः पृथ्वी पर अश्रुत अत्याचार एवं बलात्कार को सहन करना अपरिहार्य है –

"बलात्कारोऽपि सोढव्यः पृथिव्यामश्रुतोऽपि सन्।
दासत्वग्रस्त देशस्य क्षमायाः नापरा गतिः।।"

(सत्याग्रह गीता, 17/70)

गान्धी के चरित्र एवं कार्यों को उद्धृत करते हुये कवियत्री का कथन प्रशंसनीय एवं प्रेरक है :

"तस्माद् धर्मनाशाय प्रशान्तेः स्थापनाय च।
गान्धिरूपेण भगवान् अवतीर्णः किमु स्वयम्।।"

(सत्याग्रह गीता, 18/20)

इसी प्रकार स्वामी भगवदाचार्य ने भारत पारिजातम्, पारिजातापहारः पारिजात सौरभम् में समन्वित रूप से गान्धी चरित्र के साथ भारतीय राष्ट्रीय चेतना एवं आन्दोलन का काव्यमय इतिहास चित्रित किया है –

"अस्मिन्कथा काऽपि न कल्पिताऽस्ति नात्युक्तिलेशोऽपि कथंचिदत्र ।
सत्योमहात्मा. चरितं च सत्यं तल्लेखको यतिरस्ति सत्यः।।"

(सत्याग्रह गीता, 25/60)

स्वातन्त्र्य संग्राम में जन जागरण की प्रक्रिया किन कारणों से हुयी एवं उसकी परिणति क्या हुयी –

"पीडापरं सा क्षतमेव तिष्ठति–छाद्यो हि वह्निर्वसनेन नोचिरम्।"

(पारिजाताप हारः 4/5)

अस्तु "माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" की राष्ट्रीय भावना मातृभूमि के प्रति लगाव बीसवीं शताब्दी से पूर्व, प्राचीन भारतीयों के हृदय में विद्यमान थी परन्तु आज की सी राष्ट्रीय चेतना संस्कृति साहित्य का विषय न बन सकी, भले ही यातायात के साधनों का अभाव रह हो. अर्थाभाव सामने अवरोधक हो या प्रचार प्रसार के साधनों का अभाव रहा हो।

स्वातन्त्र्योत्तर देशवासियों में स्वदेश गौरव की बुद्धि की इच्छा जाग गयी है जो प्रतिक्षण महात्मा जी के महात्म्य बताने हेतु प्रर्याप्त है।

"स्वदेशगौरवस्य र्द्धेरभिलाषो नृषून्मिषन्।
प्रतिक्षणं यतीशस्य माहात्म्यं बोधयत्यलम्।।"

(भारत पारिजात, 25/33)

इसी प्रकार शिवाजी, लक्ष्मी बाई (झांसीश्वरीचरितम्), विवेकानन्द, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गान्धी, लाल बहादुर शास्त्री आदि राष्ट्रीय महानायकों पर अनेक काव्य रचे गये हैं जो जनजीवन में उदात्त भावनाओं का संचार करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं।

शोध प्रबन्ध की पृष्ठ भूमि –

देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में जन–जीवन का संघर्ष. त्याग. बलिदान की व्यापक काव्यात्मक पृष्ठभूमि पर महात्मा गान्धी के उदात्त जीवन चरित्र विषयक संस्कृत काव्य कृतियों एवं उनके कृतिकारों को काव्य साहित्य में विशिष्ट महत्व प्राप्त है। जिन उत्कृष्ट उपादानों से महिमा मण्डित होकर संस्कृत काव्य जगत् विश्व काव्य संसार में समादृत हो रहा है उनमें राष्ट्रीय महानायकों पर आधृत महाकाव्यों, खण्डकाव्यों आदि का उल्लेखनीय स्थान है।

अनुसंधान के व्यापक क्षेत्र में अभी गान्धी चरित्रात्मक उपरिवर्णित काव्य कृतियों का अनुसंधानात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन का कार्य अधूरा ही हुआ है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस दिशा में एक नन्हा प्रयास है। रचनात्मक आधुनिक साहित्य धारा को अक्षुण्ण

बनाये रखने के लिये जिसको सम्पन्न करना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शाध प्रबन्ध भूमिका एवं उपसंहार के अतिरिक्त नौ अध्यायों में विभक्त है। प्रबन्ध के अन्त में दो परिशिष्ट दिये गए हैं जिनमें प्रथम परिशिष्ट में संस्कृत के गान्धिचरितात्मक काव्यों में वर्णित सूक्तियों को प्रस्तुत किया गया है तथा द्वितीय परिशिष्ट में संदर्भ ग्रन्थ सूची दी गयी है।

प्रथम अध्याय गान्धिमाहात्म्य कार विजयराघवाचार्य का जीवन परिचय. व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 'गान्धिमाहात्म्यम्' का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित श्री गान्धिचरितम् खण्ड काव्य की साहित्यिक समालोचना प्रस्तुत की गई है।

तृतीय अध्याय में पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी का जीवन परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा 'श्रीगान्धिगौरवम्' महाकाव्य का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में श्री निवासताड़पत्रीकर का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा 'गान्धिगीता' का साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए प्रोफेसर इन्द्रविद्या वाचस्पति कृत 'गान्धिगीता' के साथ तुलनात्मक समीक्षा की गई है।

पंचम अध्याय में पण्डिता क्षमाराव का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ 'सत्याग्रहगीता' का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में श्री द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री की जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा 'स्वराज्यविजयम्' महाकाव्य का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

सप्तम् अध्याय में आचार्य सुधाकर शुक्ल का जीवन परिचच, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा 'गान्धिसौगन्धिकम्' की साहित्यिक समीक्षा की गई है।

अष्टम अध्याय में श्री साधुशरण मिश्र का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा उनके 'श्रीगान्धिचरितम्' महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

नवम् अध्याय में प्रकीर्ण संस्कृत कवि तथा उनकी विभिन्न काव्य कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत शोध निष्कर्षो का संक्षिप्त निरूपण किया गया है।

पाद टिप्पणी एवं संदर्भ –

1. तुलना कीजिए : स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।
   अर्थात् ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को ब्रह्माविद्या का उपदेश दिया जो समस्त विद्याओं का आधार है।
   मुंडकोपनिषद् 1/1/1 –

   ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दित्।
   न ह्मनध्यात्मवित् कश्चिय्त्क्रियाफलमुपाश्नुते।।

   अर्थात् जो कुछ भी "यह" शब्द से अभिहित है, सबका सब "ध्यान" के द्वारा ही

धृत है। जो अध्यात्मवित् नहीं है वह किसी भी क्रिया का फल नहीं पा सकता। मनुस्मृति, 6–82

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।

अर्थात् सब विद्याओं में मैं अध्यात्म विद्या हूँ, एवं समस्त वाणियों में मैं उनका पारस्परिक कथोपकथन हूँ, जो आत्मा के असीम एवं शाश्वत तत्व का अन्वेषण करते हैं, जिसके चलते समस्त पदार्थ वर्तमान, गतिशील एवं अस्तित्ववान् है।

2. रोम्याँ रोलां, 'महात्मागान्धी', द्वितीय भारतीय संस्करण (1948), पृ. 3।
3. रेने की घोषणा : "सदाशयता एवं अहिंसा की क्रान्ति के रूप में गान्धी की क्रान्ति इतिहास में अनन्य है, जो एक ऐसे व्यक्ति के नेतृत्व में की गयी जो समझदारी और बलिदान का पाठ पढ़ाता है और जिसका सिद्धान्त वाक्य है, अपने शत्रुओं को प्यार करो..... महात्मा जी की विलक्षणता यह है कि इतिहास में प्रथम बार उन्होंने एक नैतिक सम्बोध की एक व्यवाहारिक राजनीतिक संगठन में रूपान्तरित किया।"

   'लेनिन एण्ड गान्धी' (अक्तूबर, 1927), पृ. 256।

   इस अनन्यता ने अनेक पाश्चात्य मस्तिष्कों में भ्रान्ति की सृष्टि की एवं एक अहिंसक क्रान्तिकारी को "पेती बूर्जूआ (क्षुद्र पूंजीजीवी) एवं प्रतिकियावादी" कहने को उन्हें प्रेरित किया, उदाहरणार्थ, पी.स्प्रैट के अनुसार, "मि. गान्धी को सबसे बड़ी भूमिका रही है। मध्ययुगीन भार से अपने को मुक्त करने के लिए संघर्षशील विद्रोही पूंजीजीवी के शीलाचार के अनुरूप ही अधिक से अधिक माना जा सकता है।"

   (देखियः 'गांधीज्म–ऐन अनैलिसिस', इन्ट्रडक्शन)

   वे उन्हें (गान्धी जी को) पूंजीजीवी एवं व्यक्तिवादी" मानते हैं।
4. 'मैन एण्ड सोसाइटी', (केगन पाल, 1946), पृ. 15
5. 'यंग इण्डिया', 12 मई 1920, 25 मई, 12 जुलाई, 25 अगस्त 1925
6. 'यंग इण्डिया', 6 अक्तूबर 1921
7. 'यंग इण्डिया', 6 अक्तूबर 1921
8. कृपलानी, जे.बी., 'दि लेटैस्ट फैड' (जनवरी 1946), पृ. 101
9. दर्शन शब्द के "बृहत्तर अर्थ" की स्पष्ट धारणा के लिए निम्नलिखित तथ्य अवश्य स्मरणीय है :

(क) जब हम फिलॉसफी शब्द का प्रयोग भारतीय चिन्तकों के संदर्भ में करते हैं तब हमारा वास्तविक अभिप्राय "दर्शन" से होता है जो फिलॉसफी (तत्वाधान) से विशिष्ट है। अर्धपूर्वीय स्पिनोजा के अतिरिक्त अन्य पाश्चात्य चिन्तकों के लिए "फिलॉसफी" का आरम्भ विस्मय से होता है। यह केवल बृद्धि–विलास है। दूसरी तरफ अपनी व्युत्पत्ति "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" के अनुसार दर्शन वह है जिसे हम देखते हैं। दर्शन वास्तविकता को प्रत्यक्ष करने में हमारी सहायता करता है.

या जैसा कि अग्रणी भारतीय चिन्तक डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है, "दर्शन आध्यात्मिक प्रत्यक्ष ज्ञान है, आत्मा के बोध स्तर पर समग्र दृश्य की विवृति है।" यह वस्तुतः प्राचीनतम् आस्तिक दर्शन सांख्य की कारिका की प्रारम्भिक पंक्ति "दुखत्रयाभिघांता ज्जिज्ञासा तदपघात के हतौ" के अनुरूप ही है, अर्थात्, यह दुःखत्रय से मुक्ति पाने के उपायों को जानने की इच्छा परिणाम है। बादरायण के ब्रह्मसूत्र के प्रारम्भ के अनुसार यह ब्रह्मजिज्ञासा है। "ऐश्वर्य से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? आत्मीय स्वजनों से तुम्हें क्या लेना–देना है ? हे वत्स! पत्नियाँ भी तुम्हें क्या अवलम्ब दे सकेगी ? ये सब निश्चय ही नश्वर है। गुहा में निहित आत्मा का अनुसंधान करो। तुम्हारे पिता और उनके पूर्वज कहां चले गये ?" ऐसी थी और भी प्राचीनतर शिक्षा जो प्राचीन भारतीय पिता द्वारा प्राचीन भारतीय पुत्र को दी गयी थी– व्यास के द्वारा अपने पुत्र शुक को दी गयी शिक्षा – शुक जो अपने महान् पिता से भी महत्तर हुए और इस प्रकार दर्शन का आरम्भ हुआ करता था प्राचीन भारतवर्ष में।

– डॉ. भगवान दास, 'साइन्स ऑफ दि इमोशन्स' पृ. 9

अतः "दर्शन के प्रति प्रथम अन्तःप्रेरणा बौद्धिक नहीं, भावात्मक एवं नैतिक हैं।"

– (पी.टी.एस. आयंगर, 'ऐन आउट लाइन ऑफ इंडियन फिलॉसफी' 1909, पृ. 4)

अपने इसी जीवन में मोक्ष प्राप्त करने के लिए आतुर महात्मा गान्धी (देखिये 'यंग इण्डिया', 3 अप्रैल 1924) का अपना दर्शन था, यह इसी अर्थ में कहा जाता है। इसके द्वारा उन्होंने मानवता को पूर्वकथित दुःखत्रय से मुक्त करने का प्रयास किया था। उन्होंने न केवल एक दर्शन प्रवर्तन किया बल्कि उसे जिया भी। वे आध्यात्मिक प्रत्यक्ष ज्ञान की उपलब्धि कर रहे थे एवं उनकी आत्मा के बोधस्तर पर समग्र दृश्य विवृत हो रहा था। और यदि डॉ. राधाकृष्णन का यह कथन सत्य है कि "यह आत्मदर्शन तभी संभव है जब दर्शन को जिया जाय और यही सच्चे दार्शनिक का प्रभेदक लक्षण है" तो हम साहसपूर्वक कह सकते हैं कि इस महान् व्यवाहारिक आदर्शवादी का अपना विशिष्ट दर्शन था।

(ख) स्मरण रखने योग्य दूसरी बात उनके दर्शन के रीति–विधान के सम्बन्ध में है। उनकी रीति आगमनात्मक थी और इसे संकेतित करना अर्थपूर्ण है कि संभवतः इसी कारण उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम 'सत्य के मेरे प्रयोग' रखा, और वास्तक में उन्होंने अपने प्रयोग एक वैज्ञानिक की भावना से किये। अपनी आत्मकथा की प्रस्तावना में वे लिखते हैं : "उनके (प्रयोगों के) संबंध में मेरा दावा एक वैज्ञानिक से अधिक नहीं है जो अपने प्रयोग अतिशय परिशुद्धता, दूरदृष्टि एवं सूक्ष्मता के साथ करने पर भी अपने निर्णयों के सम्बन्ध में अन्तिमता का दावा नहीं करता, बल्कि उनके सम्बन्ध में अपने मस्तिष्क को पूर्वग्रह मुक्त रखता है।" (देखिये, 'माई एक्सपेरिमेन्ट्स विद ट्रूथ, पृ. 4)

10. 'यंग इण्डिया', 13 अक्तूबर, 1921
11. राय, बी.जी., 'गान्धियन एथिक्स', पृ. 3–4
12. कृष्णमूर्ति, वाई.जी., गांधियन इरा वर्ल्ड पॉलिटिक्स', (1943) पृ. 66
13. राय, बी.जी., 'गान्धियन एथिक्स', पृ.4।
14. 'यंग इंडिया', 6 अक्तूबर, 1921, पृ. 317
15. तुलना कीजिये : ऋग्वेद, 1/164/46

    इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहु,
    रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
    एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति,
    अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

    अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरूण, अग्नि (के रूप में) उसे पुकारते हैं। वह स्वर्णिम पंखों वाला गरूत्मान (पक्षी) है। श्रेष्ठ विप्रगण एक का ही अनेक रूप में व्याख्यान करते हैं, वे उसे अग्नि, यम, मातरिश्वा कहते हैं।

    तथा – मनुस्मृति 12/123

    एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
    इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।

    अथात् कुछ लाग उस आग्न कहत ह ता कुछ मनु, कुछ प्रजापात, कुछ इन्द्र, कुछ प्राण एवं कुछ शाश्वत ब्रह्म।
16. 'हिन्द स्वराज', पृ. 24
17. रोम्यां रोलां द्वारा "महात्मा गान्धी" (लंदन, 1924) के पृ. 28 में पादटिप्पणी में उद्धृत।
18. राय, बी.जी., 'गांधियन एथिक्स', पृ. 5

    तुलनाथ भाष्म का उाक्त ह :महाभारत, शाान्तपव 162/5

    सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
    सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

    अर्थात् सत्य ही सनातन ब्रह्म है – सब कुछ सत्य पर प्रतिष्ठित है।

    तथा देवताओं ने श्री कृष्ण के रूप में आविर्भूत परब्रह्म की स्तुति करते हुए कहा था :

    सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
    सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्र सत्यात्यकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

    अर्थात् हे सत्यव्रत, सत्यपर, त्रिसत्य, सत्य के उदगम स्थल, सत्य में निहित, सत्य के भी सत्य, ऋत एवं सत्य के नेत्र, सत्यात्मक प्रभु हम आपकी शरण द्वारा 'सनातन धर्म' के पृ. 314 पर उदृत।
19. 'माई एक्पेरिमेन्ट्स', पृ. 6
20. रामचरितमानस, बाल कांड, 7 –

    "जड चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।

बंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पान।।'

अर्थात् जगत् में जड़ चेतन जीव है, सबको राममय जानकर मैं उस सबके चरण कमलों की सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।

रामचरितमानस, बाल कांड, 8 –

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

अथात् समस्त जगत् को सीताराममय जान कर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

रामचरितमानस, बाल कांड, 116 –

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना।।
पुरूष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिबँ नायउ माथ।।

अर्थात् राम व्यापक ब्रह्म है, परमानन्द स्वरूप है, सबके स्वामी और पुराण पुरूष है, यह सारा संसार जानता है। जो प्रसिद्ध पुरूष है, स्पष्ट प्रकाश के निधि है, सूक्ष्म स्थूल के अधिपति है वे ही रघुकुल मणि मेरे स्वामी है, ऐसा कह कर शिव जी ने उन्हें मस्तक झुकाया।

रामचितमानस, बाल कांड, 116 –

तात राम कहुँ नर जनि मानहु।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु।।

अर्थात् हे तात राम की मनुष्य मत जानो, उन्हें अजेय और अजन्मा निर्गुण ब्रह्म समझा।

मानस, सुन्दर कांड, 39 –

तात राम नहिं नर भूपापा।
भुवनेश्वर कालहु कर काला।।

अर्थात् हे तात, राम मानव भूप नहीं है, वे समस्त भुवनों के स्वामी एवं काल के भी काल हैं।

21. ईशावास्योपनिषद् 1 –

ईसावास्यमिदं सर्वे यत् किंच जगत्याम् जगत्।।

22. गीता 13/33 –

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।

23. वही, 10/21 –

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यंच भूतानामन्त एव च।।

24. वही 10/39 –

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति बिना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।

25. श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/11 –
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

26. गीता 13/27 –
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।
वही, 13/30 –
समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।
वही, 13/30 –
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा।।

27. बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/5 –
न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु
कामाय पतिः प्रियो भवति।

28. वही, 2/4/5 –
न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवत्यात्मनस्तु
कामाय सर्व प्रियं भवति।

29. श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/16 –
घृतात्परं मण्डभिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टतारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

30. 'यंग इण्डिया', 11 अक्तूबर 1928
31. 'सिलेक्शन फ्रॉम गान्धी', पृ. 22
32. 'यंग इण्डिया', 11 अक्तूबर 1928
33. 'दि अनसीन पावर', पृ. 53
34. 'गान्धीजी के समय में बिहार में भूकम्प आया था जिसके लिये वे सवर्ण हिन्दुओं की अस्पृश्यता की धारणा का दण्ड स्वरूप इसे मानते थे।
35. धवन, जी.एन. 'दि पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गान्धी, द्वितीय परिच्छेद।
36. 'गान्धियन एथिक्स', पृ. 7
37. उदाहरणार्थ, भारत की सोशलिस्ट पार्टी के मार्क्सवादी।
38. 'हरिजन', 3 जून 1939, पृ. 151
39. वही, 17 जून 1939, पृ. 167
40. 'एन्टीथीइस्टिक थीउरीज़', पृ. 31
41. लैस्टर, म्युरियल, 'गान्धीः वर्ल्ड सिटिजन', पृ. 27

42. गान्धी, एम.के., फैलोशिप ऑफ फेथ्स एण्ड यूनिटी ऑफ रिलिजन्स, पृ. 53

43. मुण्डकोपनिषद् 1/1/7 –

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथापृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरूषात्केश लोभानि तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम्।।

44. गीता, 8/18–20 –

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
राव्यागमे प्रलीयन्ते तत्र वाव्यक्तसंज्ञके।।
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
राव्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।

45. मनुस्मृति 1/8/9

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादी तासु बीजमवासृजत्।।
तदण्डमभवद्वैमं सहत्रांशु समप्रभम्।
यस्मिंजज्ञे स्वयं ब्रह्म सर्वलोकपितामहः।।

46. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/7/13 –

अंगुष्ठमात्रः पुरूषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संन्निविष्ठः।

47. बहदारण्यकोपनिषद् 4/4/22 –

स वा एष महानज योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः।

48. जुंग, सी.जी., 'माडर्न मैन इन सर्च ऑफ ए सोल', ई.टी. (1933), पृ. 230–31

49. 'स्पीचिज एण्ड राइटिन्ग्स ऑफ एम.के. गान्धी' मद्रास 1934, पृ. 504

50. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 1/6 –

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्ते नामृतत्वमेति।।

51. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/4/4 –

तद्यथा पेशस्कारो पेशसी मात्रामुपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं।
रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वाऽन्यन्नवतरं
कल्याणकल्याणतरं रूपं कुरुते ।।

52. गीता 2/22 –

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

53. 'यंग इण्डिया', खण्ड 2, पृ. 45

54. रोम्याँ रोलाँ, 'महात्मा गान्धी', पृ. 45।
55. 'हरिजन', 22 जून, 1935, पृ. 148
56. 'माई एक्सपेरिमेन्ट्स' पृ. 4
57. 'यंग इण्डिया', 3 अप्रेल, पृ. 1924
58. 'हरिजन', 18 मई, 1940, पृ. 254
59. 'यंग इण्डिया', खण्ड 3, पृ. 517
60. 'यंग इण्डिया', खण्ड 2, पृ. 204
61. 'यंग इण्डिया', 3 अप्रेल, पृ. 1924
62. 'माई एक्सपेरिमेन्ट्स' खण्ड 2, पृ. 591
63. 'हरिजन', 24 दिसम्बर, 1938, पृ. 393
64. 'यंग इण्डिया', 12 मई, पृ. 1920
65. 'यंग इण्डिया', खण्ड–2, पृ. 79
66. 'हरिजन', 24 दिसम्बर, 1938, पृ. 1938
67. 'माई एक्सपेरिमेन्ट्स' खण्ड 2, पृ. 591
68. एच.होल्स कृत 'महात्मा गान्धी, दि वर्ड सिगनिफिकेन्स के अन्तर्गत अफ्रीकी जेलों में गान्धी जी के अनुभव, पृ. 83, धवन की पॉलिटिकल फिलॉसी के पृ. 35 पर उद्धत।
69. 'नॉन वायलेन्स इन पीस एण्ड वार', पृ. 5
70. 'गान्धी, माई मास्टर', पृ. 83
71. 'यंग इण्डिया', 23 मार्च, 1922 पृ. 186
72. 'हरिजन', 6 जुलाई, 1940, पृ. 185
73. 'यंग इण्डिया', 8 अगस्त, 1920
74. 'हरिजन', 16 मई, 1933
75. 'हरिजन', 2 अप्रेल, 1938, पृ. 65
76. 'हरिजन', 1 फरवरी, 1935, पृ. 410
77. 'हरिजन', 1 फरवरी, 1935, पृ. 410
78. 'हरिजन', 26 सितम्बर, 1936
79. 'यंग इण्डिया', 11 अगस्त, 1920
80. 'महात्मा गान्धी' पृ. 39
81. महात्मा गान्धी पर 'दि मैन' शीर्षक एक लेख : 'दि सन्डे स्टेट्समन', 13 फरवरी, 1938 में प्रकाशित।
82. बोस, 'सिलेक्शन्स फ्रॉम गान्धी', पृ. 22
83. 'यंग इण्डिया', 6 फरवरी, 1930

84. 'यंग इण्डिया', 9 मार्च, 1920

85. 'सत्याग्रह', पृ. 77

86. अनासक्ति की व्याख्या करते हुए हक्सले ने लिखा है – अनासक्ति केवल नाम में ही निषेधमूलक है। अनासक्ति के अनुशीलन में समस्त सद्गुणों का अनुशीलन समाविष्ट है, उदाहरणार्थ, इसमें दया (प्रेम) का अनुशीलन समाविष्ट है क्योकि अन्तमर्यामी एवं सर्वातिशायी परमात्मा के साथ आत्मा के तादात्म्य के मार्ग में कोध (न्यायोचित आक्रोश की) एवं हृदयहीन विद्वेष से बढ़ कर अन्य घातक बाधाएं नहीं है। इसमें साहस का अनुशीलन समाविष्ट है क्योंकि भय तो आत्मा का शरीर के साथ पीड़ादायक एवं मनोग्रस्तिपूर्ण तादात्म्य है। (भय निषेधमूलक कामासक्ति है जैसे आलस्य निषेधमूलक विद्वेष है।) इसमें बृद्धि का सवंर्धन समाविष्ट है क्योंकि असंवेदनशील मूढ़ता समस्त अन्य विचारों की मुख्य जड़ है। इसमें उदारता एवं निःसवार्थता का अनुशीलन समावष्टि है क्योंकि लोभ एवं परिग्रह अपने अभागे आलम्बन को केवल पदार्थों से समीकृत करने के लिए विवश कर देते हैं। – हक्सले, 'एन्ड्स एन्ड मीन्स', पृ. 4

87. वही, पृ. 3

88. श्री कृष्णदास कृत 'सेवन मन्थ्स विद महात्मा गान्धी' के पृ. 293 से उद्धृत।

वैष्णव जन तो तेने कहीये जो पीड़ पराई जाणे रे,
पर दुःखे उपकार करे ताये मन अभिमान न आणे रे।
सकललोमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्ती जेने मत रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहीं जने, दृढ़ वौराग्य जेना मनमां रे,
रामनामशुं तालि लगी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम कोध निवार्या रे,
भणे नर सयो तनुं दरसन करता, कुल एक तेरे तार्यां रे।

89. 'फॉम यरवदा मन्दिर', पृ. 25

90. 'हरिजन', 14 अक्तूबर, 1939, पृ. 303

91. स्पीचिज ऑफ महात्मा गान्धी, पृ. 301

92. 'फॉम यरवदा मन्दिर', पृ. 27

93. हिन्द स्वराज, पृ. 86

94. गीता, तृतीय अध्याय, 21 :

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तत।।

95. रेपे फ़ुलो मिलर, गान्धी, द होली मैन, पृ. 157

96. कृष्णदास, सेवन मन्थ्स विद महात्मा गान्धी, पृ. 285

97. सेवन मन्थ्य विद महात्मा गान्धी, पृ. 201

98. महादेव प्रसाद, महात्मा गान्धी का समाज दर्शन, पृ. 35
महात्मा गान्धी के कल्पित मानव सम्बन्धी विचारों के लिये महादेव प्रसाद की उक्त पुस्तक के पृष्ठ 1–35 द्रष्टव्य हैं। आभार सहित उद्धृत।

प्रथम अध्याय

गान्धी माहात्म्यकार विजयराघवाचार्य

प्रथम अध्याय
गान्धिमाहात्म्यकार विजयराघवाचार्य

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य चरितात्मक तथा प्रबन्धात्मक काव्य कृतियों से अत्यन्त समृद्ध संलक्षित होता है। इन रचनाओं में प्रायः राष्ट्रवादी पृष्ठभूमि पर हमारे देश के अनेक चरित नायकों का चारु जीवन चरित चित्रित है। इन महापुरुषों में महात्मा गान्धी सुभाषचन्द्र बोस, महामना मदन मोहन मालवीय, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक, इन्दिरा गान्धी, हेमवती नन्दन बहुगुणा, श्री लाल बहादुर शास्त्री आदि उल्लेखनीय है।

महात्मा गान्धी के आदर्श जीवन चरित का प्रभाव लोक जीवन पर प्रभावी रूप से पड़ा। जिससे इस देश के प्रायः सभी प्रदेशों के प्रमुख कवियों ने उनके जीवन चरित को काव्य में निबद्ध करने का यथा सम्भव सुन्दर प्रयास किया है। इन अर्वाचीन श्रेष्ठ कवियों में श्री विजयराघवाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका महात्मा गान्धी के बहुआयामी जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित काव्य रचना का प्रयास अत्यन्त श्लाघनीय है। यह संयोग की बात है कि विजयराघवाचार्य नाम के दो विख्यात संस्कृत कवि गान्धी युग में प्रादुर्भूत हुए है। जिन्होंने अपना विपुल संस्कृत साहित्य सरस और स्तरीय रूप में प्रस्तुत किया। इनका संक्षेप में साहित्यिक परिचय यहां प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रथम– श्रीविजयराघवाचार्य सुप्रसिद्ध तिरूपति देवस्थान के ताम्रपट शिलालेखाधिकारी के रूप में विख्यात रहे। इनका संस्कृत साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण और विपुल है। इनकी महत्वपूर्ण रचनायें इस प्रकार विद्वानों की दृष्टि में आकर समालोचित हुई हैं। ये रचनायें निम्नलिखित हैं –

सुरभिसन्देश–

यह एक सरस काव्यात्मक रचना है जिसकी रसवत्ता सहृदय संवेद्य है।

पंचलक्ष्मीविलासः –

यह एक स्तरीय स्तोत्र काव्य है जिसमें पांच सहस्त्र श्लोकों के द्वारा लक्ष्मी का ऐश्वर्य वर्णित किया गया है। इसकी श्रेष्ठता अनेक समीक्षकों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है।

नीतिनवरत्नमाला –

यह नीति शास्त्री सम्बन्धी श्रेष्ठ काव्यकृति है। जिसमें पूर्ववर्ती नीति कारों के विचारों का काव्यात्मक प्रस्तुतीकरण प्रशसंनीय रूप से किया गया है।

अभिनवहितोपदेशः –

सुप्रसिद्ध हितोपदेश के आधार पर सरल संस्कृत में नीति पूर्ण उपदेश देने का कवि ने इस कृति में सुन्दर प्रयास किया है।

कवनेन्दुमण्डली –

कवि ने इस कृति में प्रमुख कवियों के काव्य सौष्ठव और उनके साहित्यिक महत्व को रेखांकित करने का सराहनीय प्रयास किया है।

वसन्तवास –

काव्यात्मक ऋतुवर्णन की दृष्टि से इस रचना में वसन्त ऋतु का सुन्दर चित्रण कवि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जिसका साहित्यक दृष्टि से विशेष महत्व है।

ध्यानं प्रशंसा –

योग शास्त्र की सुदृढ़ पृष्ठ भूमि पर श्री विजयराघवाचार्य ने इस ग्रन्थ में ध्यान की प्रशंसा करते हुए मानव की समस्त सफलता का मूल स्वीकार किया है।

दिव्यक्षेत्रयात्रामाहात्म्य –

धर्मशास्त्र के आधार पर मनु, याज्ञवल्क्य आदि धर्म शास्त्रीयों के मान्यता को ध्यान में रखकर कवि ने तीर्थ यात्रा पवित्र स्थलों की करने की महत्ता इस कृति में प्रतिपादित की है। वस्तुतः देवातात्मा देश का दर्शन करना कवि का अभिप्रेत है।

आत्मसमर्पण –

कवि की यह उत्कृष्ट कोटि की भक्तिभाव पूर्ण सरस काव्य रचना है।

नवग्रहस्तोत्र –

ज्योतिषशास्त्र में नवग्रहों का महत्व एवं उनका प्रभाव हृदयं करते हुए कवि ने इन सभी ग्रहों की सुन्दर स्तुति इस रचना में प्रस्तुत की है। यह भी एक भक्तिरस की उत्कृष्ट कोटि की काव्य कृति है।

दशावतारस्तवः –

भगवान विष्णु के दशावतारों को ध्यान में रखते हुए उनकी सुन्दर स्तुति इस श्रेष्ठ काव्य में की गई है। वस्तुतः स्तोत्र काव्यों में इस रचना का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

लक्ष्मीस्तुति –

इस स्तोत्र काव्य में भगवान विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की सुन्दर स्तुति की गई है। यह काव्य कृति भी संस्कृत के स्तोत्र साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

गुरूपरम्पराप्रभाव –

भारतीय संस्कृति में गुरू के महत्व और उनकी विख्यात परम्परा को इस ग्रन्थ में वर्णित करते हुए गुरू का लोक जीवन में व्यापक प्रभाव प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

गान्धिगौरवम् –

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के जीवन चरित्र को अंकित करते हुए उनका आदर्श काव्य के माध्यम से कवि ने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। महात्मा गान्धी का लोक जीवन में व्यापक प्रभाव और उनका गौरव इस काव्य कृति का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

गान्धिगौरवम् की भाषा भावपूर्ण, प्रासादिक, सरस, माधुर्य गुण युक्त तथा स्वाभाविक रूप से इसमें अलंकारपूर्ण परिलक्षित होती है। यथा –

मानवतावतारंच मानवानां हितेच्छुकम्।
राष्ट्रसंरक्षकं धीरं वन्दे पथप्रदर्शकम्।।
अहिंसाप्रियमेव त्वां धर्मात्मानं स्वाभावतः।
प्रशांतं सुधियं सन्तं वन्देऽहं विश्ववन्दितम्।।
जगति विश्वशंतिश्च संदेशामृतदायिनम्।
वन्दे गान्धिमहात्मानं सत्यागमय जीवनम्।।
प्रार्थना प्राण–सर्वस्वं नमामि युगनायकम्।
रक्षितारं च राष्ट्रस्य गोभक्तं लोकसेवकम्।। (गान्धिगौरवम्)

विजयराघवाचार्य जी का काव्य सौष्ठव निःसन्देह असाधारण है। उनका कृतित्व स्वर्गीय डॉ. श्रीधरभास्कर वर्णेकर जैसे महाकवि एवं विद्वान् प्राध्यापक ने समीक्षित किया है। जिसमें उनकी साहित्यिक श्रेष्ठता मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है। (द्रष्ट्व्य–संस्कृत वाङ्मय कोश–प्रथम खण्ड, अखिल भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता–1988, पृ. 448)

द्वितीय विख्यात कवि श्रीविजयराघवाचार्य बीसवी शती के संस्कृत कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका जन्म 1884 ई. में हुआ था। जन्म से ही साहित्यिक प्रतिभा शिक्षा के प्रारम्भ से ही परिलक्षित होने लगी थी। परिणामतः संस्कृत शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त यह संस्कृत कविता की सुन्दर रचना करने लगे थे। इनकी राष्ट्रवादी विचारधारा प्रायः इनकी काव्य कृतियों में सहज रूप से व्यक्त हुई है। इस आधार पर इन्होंने देश की स्वतन्त्रता में योगदान देने वाले विख्यात महापुरुषों के जीवन चरित को अपनी काव्य कृतियों में सरस रूप में चित्रित किया है। इन कृतियों में निम्नलिखित रचनायें उल्लेखनीय है –

तिलक वैदग्ध्यम् –

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के जीवन चरित को चित्रित करते हुए इस काव्य कृति में उनकी महत्वपूर्ण राष्ट्र सेवाओं और उनकी विदग्धता को कवि ने व्याख्यायित किया है। वस्तुतः तिलक जी का वैदुष्य और राजनैतिक पटल पर उनका प्रभाव लोक व्यापी था, जिसका विजयराघवाचार्य जी ने इस काव्य कृति में सरस उल्लेख किया है। अर्वाचीन काव्य कृतियों में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

नेहरूविजयम्–

भारत स्वतन्त्रता के प्रथम चरण में श्री मोतीलाल नेहरू के महत्वपूर्ण और सक्रिय योगदान का इस काव्य में सरस और सुन्दर चित्रण किया गया है। यह काव्य कृति सरस, प्रासादिक तथा काव्य सौष्ठव से युक्त है। इसमें मोती लाल जी का राष्ट्रीय गौरव और उनकी स्वतन्त्रता संग्राम में सफलता विजय के रूप में वर्णित की गई है।

गान्धिमाहात्म्यम् –

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के महान् व्यक्तित्व, कृतित्व और उनके उत्कृष्ट आदर्श जीवन का इस काव्य में सुन्दर चित्रण है। स्वाधानीता संग्राम में महात्मा गान्धी की प्रभाव पूर्ण भूमिका और उनके असाधारण तथा महत्वपूर्ण योगदान को कवि ने वर्णित करते हुए

उनकी उल्लेखनीय राष्ट्र सेवाओं पर सुन्दर प्रकाश डाला है। यहां गान्धी माहात्म्य के काव्य सौष्ठव की समीक्षा संक्षेप में प्रस्तुत की जा रही है –

गान्धी माहात्म्यं काव्य में गुण का प्रयोग –

गुण की दृष्टि से पूववर्ती आचार्यों के अनुसार काव्य की आत्मा अथवा सौन्दर्य मानते हुये काव्यालंकार सूत्र का यह अभिमत विचारणीय है कि काव्य की आत्मा सौन्दर्य है और वह गुण तत्व आविर्भूत होता है। (काव्यांलकार सूत्र, पृ. 27)

गुण काव्य के उन विशिष्ट धर्मों को कहा जा सकता है जिनसे काव्य शरीर मे यौवन आता है और काव्य का जीर्णोद्यान वासन्ती उपवन में परिणत हो जाता है। अथवा कहा जा सकता है कि शरीर में यौवन का और उद्यान में वसन्त का जो स्थान है वही स्थान काव्य में गुणों का है। अर्थात् काव्य धर्मी है और उसमें शोभा को जो उत्पन्न करने वाले जो धर्म हैं उनका नामकरण गुण किया गया है। गुणों की स्थिति आचार्य मम्मट ने रस में स्वीकार की है। उनका मन्तव्य है कि रस अंगी है और गुण उसके अंग रूप । गुण रस में नियत रूप से रहते हुये उसका उपकार करते हैं। यद्यपि गुण और अलंकार दोनों ही काव्य के आत्मास्वरूप रस को उपकृत करते हैं किन्तु दोनों में भेद यह है जो धर्म प्रधानतया शब्द और अर्थ के उपकारक होने से कभी–कभी रस का उपकार करते हैं। अर्थात् कभी करते हैं, कभी नहीं। वही अलंकार कहे जाते हैं। गुणों की रस में स्थिति स्पष्ट करने के लिये आचार्य मम्मट ने आत्मा का दृष्टान्त दिया है उनका कथन है कि जिस प्रकार शूरता आदि गुण आत्मा से नियमतः रहते हैं, उसी प्रकार माधुर्य योज आदि गुण काव्य के आत्मभूत रस में नियमपूर्वक रहते हुये उसे उपकृत करते हैं, गुणों की स्थिति रसों से पृथक नहीं रहती।

"ये रसस्याङ्गिनों धर्माः शौर्यादयः इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलास्थितयो गुणाः।।"

(काव्य प्रकाश)

कविराज आचार्य विश्वनाथ ने भी इसी आश्य को पुष्ट किया है। अपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ साहित्यदर्पण के प्रथम परिच्छेद में वह कहते हैं –

"उत्कर्षहेतवस्ते गुणालंकाररीतयः।"

अर्थात् गुण, अलंकार और रीतियां काव्य के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले धर्म है।

(साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, कारिका सं. 3)

भरतमुनि ने गुणों का लक्षण दोषों का विपर्यास अर्थात् अभाव किया है। उनके अनुसार गुण मानो वेदान्त का ब्रह्म है। जो नीति नेति क अपोह द्वारा ही जाना जा सकता है। इस प्रकार आचार्य भरत ने दोषों को भावात्मक तथा गुणों को अभावात्मक माना है। भरतमुनि के पश्चात् आचार्य वामन ने गुणों का अधिक सुसम्बद्ध और तर्कसंगत विवेचन प्रस्तुत किया। उन्होंने गुणों तथा रीतियों का सम्बन्ध भी प्रतिपादित किया। उनका मत है कि रीति तो काव्य की आत्मा है (रीतिरात्मा काव्यस्य) तथा रीति की आत्मा गुण है।

(विशेषो गुणात्मा) वामन ने न केवल गुणों के स्वरूप को विवेचित किया है, अपितु अपने ग्रन्थ "काव्यालंकारसूत्राणि" में गुणों और अलंकारो के भेद को भी स्पष्ट किया है, उनके अनुसार गुण काव्य के अंतरंग तत्व हैं और अंलकार बाह्य तत्व हैं। इस प्रसंग में उनका यह कथन समीचीन प्रतीत होता है।

'काव्य' में शोभा को उत्पन्न करने वाले धर्म. गुण हैं तथा उस शोभा के अतिशय को करने वाले धर्म अलंकार हैं। ओज, प्रसाद आदि गुण काव्य में शोभा को उत्पन्न करने वाले धर्म है। ओज, प्रसाद आदि अलंकार स्वयं काव्य में शोभा को उत्पन्न नहीं करते, परन्तु वह उस शोभा के अतिशय को प्रतिपादित करते हैं। जिस प्रकार युवति के शरीर में सौंदर्यादि गुणों के होने पर भी अलंकार उसकी शोभा को बढ़ाते हैं।

शारीरिक सौन्दर्य के न होने पर धारण किये हुए भी अलंकार व्यर्थ होते हैं। उसी प्रकार की स्थिति काव्य में हैं। काव्य में ओज, प्रसाद आदि गुणों के होने पर उपमा अलंकार उसकी शोभा की वृद्धि कर सकते हैं। इस प्रकार ओज, प्रसाद आदि गुण काव्य के नित्य धर्म हैं, क्योंकि उसके बिना काव्य के शोभा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। गुणों की सामान्य परिभाषा यह दी जा सकती है कि काव्य में उसके आत्मभूत रस को उत्प्लावित करने वाले और इस प्रकार काव्य में शोभा का आधान करने वाले जो धर्म हैं उनकी संज्ञा गुण है।

गुणों की संख्या कितनी है। इस सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों (रीतिवादी और आलंकारिक) में मतैक्य का अभाव है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में गुणों की संख्या दस बताई है। आचार्य भामह ने गुणों की संख्या तीन मानी है। 1, माधुर्य, 2. ओज और 3. उभयगुण । वहां सात शब्द गुण तथा छः अर्थगुण और छः उभयगुण स्वीकार किये गऐ हैं।

आचार्य कुन्तक ने गुणों के दो प्रकार माने हैं। विशिष्ट तथा साधारण। विशिष्ट गुण चार हैं। 1. माधुर्य, 2. प्रसाद, 3. लावण्य तथा 4. आभिजात्य। साधारण गुण दो हैं। 1. औचित्य और 2. सौभाग्य। इस प्रकार प्राच्य आचार्यों में गुणों की संख्या और स्वरूप के सम्बन्ध में एकता और निश्चितता का अभाव है। किन्तु आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि नवीन आचार्यों ने गुणों की संख्या तथा स्वरूप को सुव्यवस्थित किया । उनके अनुसार गुणों की संख्या तीन है । 1. माधुर्य, 2. ओज और 3. प्रसाद।

1. माधुर्य गुण –

माधुर्य का लक्षण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार निर्दिष्ट किया है –

"आह्लादकत्वं माधुर्य श्रृङगारे द्रुतिकारणम्।"

(काव्य प्रकाश, अष्टमुल्लास, कारिका सं. 68)

अर्थात् चित्त की द्रुति का हृदय के भाव मग्न होने का कारण जो आह्लादकता है वही माधुर्य है और वह श्रृंगार रस में रहता है। संयोग श्रृंगार की तुलना में करूण रस में, करूण रस की अपेक्षा विप्रलम्भ श्रृंगार में तथा विप्रलम्भ श्रृंगार की अपेक्षा शांत रस

में अधिक माधुर्य होता है।

इस गुण में सुकुमार वर्णों की प्रधानता रहती है और ट्, ठ्, ड् और ढ् को छोड़कर क से लेकर म पर्यन्त सभी वर्ण तथा ह्रस्व स्वर से व्यवहृत अर्थात्– लघु स्वर जिनके बीच में ऐसे र् और ण् माधुर्य गुण के अभिव्यंजक हैं। इसके अतिरिक्त समास रहित अथवा अल्पसमास युक्त मधुर रचना भी माधुर्य गुण की अभिव्यंजक है।
यहां न और म जैसे अनुनासिक वर्णों की आवृति से माधुर्य गुण की छठा दृष्टव्य है। इसी प्रकार यह छन्द भी माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग है। गान्धी माहात्म्य काव्य में माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है –

गंगाज्ञानं जनगणहितं गान्धिनः सर्वमतेत्,
हस्तेदण्डः कमलहृदयो नोग्रदण्डस्तथापि।
कण्ठे सत्यं कपटरहितं धर्मराजोपमानम्,
देशोन्नत्यै श्रमसुखरतौ राष्ट्रतातस्य पादौ।।

(गान्धी माहात्म्य 4)

प्रसाद गुण –

प्रसाद गुण का लक्षण काव्यप्रकाशकार मम्मट ने इस प्रकार निर्धारित किया है –

"श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणे मतः।।"

(काव्यप्रकाश, अष्टमुल्लास, कारिका सं. 76)

अर्थात् जिन वर्णों, समासों तथा रचनाओं के श्रवणमात्र से ही शब्द से अर्थ की प्रतीति हो जाती है। वे सब प्रसाद गुण की अभिव्यंजक हैं। यह गुण सभी रचनाओं में समान रूप से हो सकता है।

जिस प्रकार अग्नि ईधन को व्याप्त कर लेती है, और जल स्वच्छ वस्त्र को व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार प्रसाद गुण सहृदय के चित्त को सहसा व्याप्त कर लेता है। श्री विजयराघवाचार्य प्रसाद गुण के प्रयोग में परम् प्रवीण परिलक्षित होते हैं। यथा –

स्वात्मालम्बी परसुखसुखी निर्बलः सन् बलिष्ठः,
दीनानां यश्चरणशरणो मुक्तिदश्चाकृपाणिः।
कारागारेऽगणितमनः भारतीयार्थजीवः,
सोऽयं गान्धी स्मरणभरितात् मानसात् नापयाति।।

ओज गुण –

आचार्य मम्मट ने ओज गुण का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है –

"दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।"

(काव्यप्रकाश, अष्टमोल्लास, कारिका सं. 69)

अर्थात् दीप्ति रूप चित्त के विस्तार का हेतु ओज गुण कहलाता है। इसकी

स्थिति वीर रस में होती है। दीप्ति चित की विशेष प्रकार की वृत्ति है जिसमें मन प्रज्ज्वलित सा हो जाता है। यह द्रुति से भिन्न प्रकार की चित्त की एक अवस्था है जो प्रतिकूल विषयों के प्रति हुआ करती है। इस दीप्ति का जो जनक है, वह ओज गुण कहलाता है। यह ओज गुण वीर रस के समान वीभत्स तथा रौद्र रस में भी होता है। वीर की अपेक्षा वीभत्स में वीभत्स की अपेक्षा रौद्र रस में ओज गुण अधिक होता है। इसका कारण यह है कि वीर रस में जो द्वेष्य अर्थात् शत्रु के प्रति जीतने की इच्छा मात्र होती है और रौद्र रस में तो अपकारी के वध की ही इच्छा होने लगती है। इस प्रकार चित्त का प्रज्ज्वलन अधिक ही होता जाता है।

वर्गों के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ द्वितीय तथा चतुर्थ वर्णों का योग वर्णो का र के साथ संयोग, तुल्य वर्णों का सम्बन्ध ट आदि (चार वर्ण) श, ष, ये सभी वर्ग ओज गुण के अभिव्यंजक हैं तथा दीर्घ समास युक्त और विकट रचना भी ओज गुण की व्यंजक है। गान्धी माहात्म्य में श्री विजयराघवाचार्य ने ओज गुण का भी यथा स्थान सुन्दर सन्निवेश किया है। यथा –

अब्ध्युद्भूते मलिनमतिना सर्वकारेण निन्धः,
क्षारे क्षिप्तः कुटिलगतिना तत्करोऽसत्करोऽस्मिन्।
याता यब्दया प्रतनुतनुनो गान्धिनो दाण्डियात्रा,
शीतोष्णं यत् किमपि भवतु प्रस्थितस्तज्जयाय।।

(गान्धी माहात्म्य 6)

रीति प्रयोग की दृष्टि से काव्य सौष्ठव –

श्रीविजयराघवाचार्य ने अपने काव्य ग्रन्थ गान्धिमाहात्म्यम् में सुन्दर प्रयोग किया है। यहां रीति की दृष्टि से उनके काव्य सौष्ठव की विवेचना की जा रही है।

"विशिष्टपदसंघटना रीतिः। विशेषो गुणात्मा।"

(आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्र)

विशिष्टता युक्त पदों की रचना रीति कहलाती है। आचार्य वामन का विशेषतः से तात्पर्य है – पदों का गुणान्वित होना। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि रीति उन गुणयुक्त पदों की रचना होती है, जिनका समायोजन अत्यन्त विचार पूर्वक काव्य में किया जाता है तथा जिनके स्थान पर कोई अन्य पद प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। और यदि कर भ दिया जाए तो वह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। अतः भलीभांति सोच–समझकर प्रयुक्त किये गए गुणयुक्त तथा सार्थक पदों की संयोजना रीति कहलाती है।

रीति गत पदों की विशिष्टता अथवा गुणयुक्तता काव्य का शोभावर्द्धक नित्य धर्म है। जिसके विना काव्य में शब्द और अर्थ का प्रयोग औपचारिकता मात्र होगा और ऐसा काव्य भी नीरस ही होगा। क्योंकि रस को उत्प्लावित करने का कार्य गुण करते हैं। जो कि रीति में निहित होते हैं। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर आलंकारिक आचार्य वामन ने सर्वप्रथम काव्य में रीति को प्रमुख स्थान दिया। और उसको काव्य की आत्मा के रूप में

प्रतिपादित किया।

वामन का स्थितिकाल अष्टम शताब्दी है। वामन ने गुणों की संख्या बीस मानी है। दस शब्द गुण और दस अर्थगुण यद्यपि काव्यशास्त्रीय इतिहास में वामन से पहले ही रीति की खोज की जा चुकी थी। वामन से पहले भामह ने काव्यालंकार में और दण्डी ने 'काव्यादर्श' में भी रीतियों की चर्चा की थी। किन्तु उन्होंने रीति के स्थान मार्ग शब्द का प्रयोग किया था। इनसे भी पहले भरत ने रीति के लिए प्रवृत्ति पद का प्रयोग किया। किन्तु वामन पहले ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने रीति की स्पष्ट व्याख्या की और उसका काव्य की आत्मा माना। धीरे–धीरे वामन के मत के समर्थकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई और रीति को काव्य की आत्मा मानने वालों का एक पृथक सम्प्रदाय बन गया जो कालान्तर में रीति सम्प्रदाय के नाम विख्यात हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन कहलाये, जिन्होंने रीति का सांगोपान विवेचन किया है। उन्होंने रीति के तीन भेद किये हैं – 1. वैदर्भी रीति, 2. गौड़ी रीति, 3. पांचाली रीति। जैसाकि निम्न पद्य में प्रतिपादित किया गया है –

"एतातिस्त्रो वृत्तयो वामनादीनां मते।
गोंडीया पांचालयाख्या रीतयः उच्यन्ते।।"

(काव्यालंकारसूत्र)

आचार्य वामन अपने 'काव्यालंकारसूत्र' वैदर्भी रीति के प्रति अधिक आदरवान हैं। उनके मतानुसार वैदर्भी रीति में समस्त गुणों का समावेश होता है। पांचाली रीति में केवल ओज और माधुर्य के दो गुण होते हैं। यही बात उन्होंने 'काव्यालंकारसूत्र' में सूत्र रूप से कही है, जिसके विवेचन में उन्होंने निम्न लक्षण प्रस्तुत किये हैं।

1. वैदर्भी रीति –

"समग्रगुणा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।1।।"

(ओज, प्रसाद आदि समस्त गुणों से युक्त वैदर्भी रीति कही जाती है।)

इसके अनुसार –

"अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता।
विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भीरीतिरिष्यते।।"

(काव्यालंकारसूत्राणि, द्वितीय अध्याय)

अर्थात् काव्य के जो श्रुतिकटुत्व, च्युत् संस्कृति, ग्राम्यत्व आदि दोष माने गये है। इन सभी काव्य दोषों की मात्रा से रहित अर्थात् जिसमें काव्य दोष लेशमात्र भी न हों तथा ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों से समन्वित, एवं वीणा के स्वर के समान कर्णप्रिय रीति का नाम वैदर्भी है। इस दृष्टि से इसे इस प्रकार अन्य आचार्यों ने व्याख्यायित किया है –

"माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका,
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।"

(अर्थात् व्यंजनों की मधुरता, रचना का लालित्य तथा समासयुक्त पदों का सर्वथा

अभाव अथवा थोड़े समासयुक्त पदों की विद्यामनता जिसमें हो, ऐसी शब्द संयोजन वैदर्भी रीति कही जाती है।)

गान्धी माहात्म्य के निम्नलिखित पद्य भी वैदर्भी रीति का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है –

समयो नयतीति विश्रुतिः, समयोऽस्मिन् स्वमेव विभ्रमात्।
न कदाप्यनयन्ननेष्यति हृदयेभ्यो गुणिनं तु गान्धिनम्।।

(गान्धी माहात्म्य 12)

पांचाली रीति –

इस रीति का लक्षण काव्याशास्त्रियों द्वारा इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है –

माधुर्यासैकुमार्योपपन्ना पांचाली।।3।।

(माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से उपपन्न रीति पांचाली है)

इस सन्दर्भ में इसका लक्षण इस श्लोक के द्वारा पुष्ट किया गया है –

"अश्लिष्ट श्लथभावां ता पूरणच्छायया श्रिताम्।
मधुरां सुकुमारां च पांचाली कवयो विदुः।।"

अर्थात् शिलष्टता रहित और समास रहित बहुल पदों वाली एवं मधुर एवं सुकुमार पदों से युक्त शब्द रचना को पांचाली रीति की संज्ञा दी गई है।

वामनाचार्य से पूर्व काव्य–रचना के दो ही मार्ग प्रचलित थे – वैदर्भ और गैड़ीय। किन्तु वामन ने एक नवीन मार्ग पांचाल का भी प्रतिपादन किया। श्री विजयराघवाचार्य पांचाली रीति के भी प्रयोग में परम् प्रवीण परिलक्षित होते हैं यथा –

जलधौ लवणं नियोजितम् दिवसे तारकवार एव खे।
सुरभिः कुसुमे स्थिता यथा स महात्मा हृदये तथास्थितः।।

(गान्धी माहात्म्य 19)

गौड़ी रीति –

श्री विजयराघवाचार्य गौड़ी रीति का भी सुन्दर प्रयोग अपने काव्य में यथा स्थान किया है। आचार्यों के अनुसार गौड़ी रीति का सामान्य लक्षण इस प्रकार है –

"ओजः कान्तिमत गौडीया।।2।।"

(ओज तथा कान्ति से युक्त रीति का नाम गौड़ी है।)

इस सन्दर्भ में यह श्लोक दृष्टव्य है –

"समस्तात्युद्भटपदामोजः कान्तिगुणान्विताम्।
गौडीयामिति गायन्ति रीति रीतिविचक्षणाः।।"

अर्थात् समास युक्त एवं उग्र पदों से युक्त तथा ओज एवं कान्ति इन दो गुणों से युक्त रीति की संज्ञा गौड़ी है। ऐसा रीति विशेषज्ञ कहते हैं। इस रीति में उग्र पदों का संयोजन होने के कारण माधुर्य तथा सौकुमार्य गुणों का अभाव एवं सामासिक बहुलता

है। गान्धी माहात्म्य में अनेक स्थलों पर गौड़ी रीति का भी सुन्दर प्रयोग परिलक्षित है। जिसमें समास बहुला ओजो गुण प्रधान, पदावली पायी जाती है। यथा –

उष्णोस्त्रोस्त्रैरनल सदृशैः शुष्कसारं प्रतप्ताम्,
शीतांशुस्तां स्वकरनिकरैः मेदिनीं मातरं नः।
स्वल्पां शान्तिं गमयति ततो नातिदूरो दिनेशः,
शश्वतमुक्तिं कुजनजनिताद् बन्धनात्प्रापिता नः।।

(गान्धी माहात्म्य 27)

छन्दोलंकार योजना –

श्री विजयराघवाचार्य काव्य की भावभूमि तथा प्रसंगानुसार अनुकूल छन्दों एवं अलंकारों के प्रयोग में परम् प्रवीण परिलक्षित होते हैं। उन्होंने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों तरह के विविध छन्दों का सुन्दर प्रयोग अपने काव्य में किया है। यहां अनुष्टुप छन्द का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है –

श्रीमद् भगवतं श्रुत्वा मालवीयसुखाद्धियः।
अखण्डानन्दसम्पनौ ह्यभवत् तमहं भजे।।
महोदारशीलं वन्दे महाविक्रमशालिनम्।
महाभागवतं नित्यं महान्तं गान्धिमवे तम्।।

(गान्धी माहात्म्य 35, 36)

कवि ने वियोगिनी वृत्त का भी सुन्दर प्रयोग किया है। जिसमें दाण्डी यात्रा के साथ नमक कानून तोड़ने का सुन्दर उल्लेख किया गया है। यथा –

जलधौ लवणं निर्योजितम् दिवसे तारकवार एव खे।
सुरभिः कुसुमे स्थिता यथा स महात्मा हृदये तथास्थितः।।

(गान्धी माहात्म्य 19)

अलंकार –

कवि ने इस काव्य में शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों का स्वाभाविक रूप से सुन्दर प्रयोग यथा स्थान किया है। जिससे कृति का महत्व स्वतः ही बढ़ जाता है। यथा –

वन्दे पूज्यं महात्मानं विश्वैविभूतिं परम्।
गान्धि विंशशताब्देश्च नेतारं भयवर्जितम्।।

(गान्धी माहात्म्य 39)

इस अनुष्टुप छन्द में अनुप्रास अंलकार का सुन्दर स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। जिससे गान्धी जी के व्यक्तित्व से सहृदय पाठक पढ़कर परम् प्रभावित हो जाता है।

रस निष्पत्ति –

श्री विजयराघवाचार्य रस निष्पत्ति के सुन्दर और सफल प्रयोग की दृष्टि से सर्वथा प्रभावशाली हैं। अपनी इस काव्य कृति में उन्होंने महात्मा गान्धी की महत्वपूर्ण घटनाओं को चित्रित करते हुए यथा स्थान शान्त और वीर रस का सुन्दर प्रयोग किया

है। इस दृष्टि से यह सरस छन्द अवलोकनीय हे। यथा –

ऋतुराजगुणेषु कोकिलाः वनवाहागमने कलापिनः।
कमलेष्वलयो गुणार्थिनेः अद्राभाः कवयस्तु गान्धिनि।।

(गान्धी माहात्म्य 42)

समीक्षा –

श्री विजयराघवाचार्य के समृद्ध काव्य सौष्ठव को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि राष्ट्रवादी विचारधारा से अनुप्राणित गान्धी माहात्म्यम् एक उत्कृष्ट काव्य कृति है। इसमें राष्ट्र नायक महात्मा गान्धी का महान् जीवन दर्शन सरस रूप में रूपायित हुआ है। जिससे लोक जीवन सर्वथा प्रभावित और अनुप्राणित होता है। इस प्रकार अर्वाचीन गान्धी चरितात्मक काव्यों में गान्धी माहात्म्य एक महत्वपूर्ण और स्तरीय काव्य कृति है। जिसका गान्धी दर्शन के प्रति आस्था रखने वाले राष्ट्र भक्त, काव्य प्रेमी तथा सहृदय साहित्यिकों को इसका आद्योपान्त अनुशीलन अवश्य करना चाहिये।

डॉ. रामजी उपाध्याय, पूर्व संस्कृत प्रोफेसर सागर विश्वविद्यालय तथा प्रधान सम्पादक सागरिका ने श्री विजयराघवाचार्य के समृद्ध साहित्यिक अवदान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा अपने स्तरीय समालोचना ग्रन्थ – "संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" शीर्षक ग्रन्थ में की है। (द्रष्टव्य : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, सम्वत् 2018, पृ. 196) इससे श्री विजयराघवाचार्य तथा उनकी स्तरीय काव्य कृति गान्धी माहात्म्यम् की महत्ता स्वतः सम्वर्धित हो जाती है।

द्वितीय अध्याय

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित 'गान्धिचरितम्' का काव्य वैशिष्ट्य

द्वितीय अध्याय

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित 'गान्धिचरितम्' का काव्य वैशिष्ट्य

श्री गान्धी चरितम् नामक काव्य खण्ड काव्य की संगति करता हुआ प्रतीत होता है। प्रस्तुत काव्य का नामकरण उदात्त गुणों से युक्त महात्मा गाँधी के चरित्र के आधार पर किया गया है। यह सर्गो में उपनिबद्ध नहीं है। जबकि महाकाव्य के लिए सर्गबद्धता अनिवार्य मानी जाती है। अतः प्रस्तुत काव्य को खण्ड काव्य की श्रेणी में रखा जा रहा है। इस काव्य में कुल 111 पद्य हैं। श्री गान्धी चरितम् काव्य में जहां एक ओर अपने देश की रक्षा के लिये आत्म बलिदान की भावना है वहीं दूसरी ओर आत्म ग्लानि एवं दुःख का भाव भी समाहित है। कवि ने सर्वप्रथम यह कामना की है कि गंगा आदि नदियों से पवित्र एवं लक्ष्मी आदि के द्वारा गाये गए यशोगान से वाल्मीकि आदि कवियों द्वारा, श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा सेवित तथा पुजित अनन्त काल तक शोभायमान रहना वाला भारत वर्ष हमारा कल्याण करेगा। काव्य के समापन पर कवि ने दिव्य गुणों से सम्पन्न गान्धी जी के अमृत्व की कामना की है तथा कवि की यह भी कामना है कि सम्पूर्ण मानव समाज राम नाम एवं सत्य का अनुपालन करते हुए गान्धीजी के रामराज्य के स्वप्न को साकार कर देश में सत्य न्याय की स्थापना करें।

खण्ड काव्यत्व की दृष्टि से गान्धी चरितम् –

महाकाव्य के लघु रूप में ही खण्ड काव्य को परिभाषित किया जाता है। 'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च' – साहित्य दर्पण 6/239 अर्थात् जिन काव्यों मे महाकाव्य के सम्पूर्ण गुण या लक्षण दृष्टिगत नहीं होते, उन्हें खण्डकाव्य या गीतिकाव्य कहा जाता है। इसमें प्रायः मुक्तक पद्यों का प्रयोग होता है, जिसमें इसका पूर्ण अभिव्यक्त या किसी विषय का सांगोपांग वर्णन होता है। उसे हृदयंगम करने के लिएं पूर्वा पर प्रसंग की अपेक्षा नहीं होती –

'पूर्वापरनिरपेक्षणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्'

(आनन्दवर्धन–ध्वन्यालोक)

आचार्य रुद्रट ने खण्डकाव्य को "लघु काव्य" की संज्ञा दी है। उनका स्पष्ट अभिमत है कि इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक की ही प्राप्ति होनी चाहिए और असमग्र अथवा एक ही रस पूर्णरुपेण अभिव्यक्त होना चाहिये।

जनजीवन की एकदेशीय तन्मयता अथवा मानव अन्तरात्मा के किसी एक ही पटल का चित्रण लालित्य एवं माधुर्यपूर्ण भाषा के गेयात्मक स्वरूप में अभिव्यक्त हो तो उसे गीति काव्य की संज्ञा दी जाती है। इसमें मानव – जीवन की समग्रता का प्रसार न

होकर एक ही पक्ष (श्रृंगारि, धार्मिक या नैतिक) का उद्घाटन होता है।

डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने संस्कृत साहित्य के समीक्षात्मक इतिहास में गीत काव्य या खण्ड काव्य को इस प्रकार परिभाषित किया है – "गीतिकाव्य काव्य का वह स्वरूप है, जिसमें काव्यत्व के साथ संगीतात्मकता प्रमुख होती है। इन पद्यों को वाद्यों के साथ गाया जा सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है। क्योंकि इसमें महाकाव्य के पूरे गुण नहीं होते हैं।"

उद्भव एवं विकास की दृष्टि से गीतिकाव्यों का सर्वप्रथम परिचय वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेद के उषःसूक्त में मिलता है। इस सन्दर्भ में मेकडॉनल का विचार है कि "These lyrics of the vedas are unsurpass in there beauty and thre is nothing like them to be found in any of the branches of indo-europian languages. In the excellence of feelings as well in the perfect art of language and metre they stand singular."

सुभाषित ग्रन्थों में व्याकरण पाणिनि के नाम से कतिपय गीति पद्य प्राप्त होते हैं। पालिग्रन्थों में आनुषंगिक रूप से प्राप्त होने वाले ग्राम गीतों (Ballads) के खण्डों एवं गद्य गीतों के अंश से भी उपलब्ध होते हैं।

इन्सायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में गीतिकाव्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "Lyrical poetry, a general term for al poerty which is, or can be, supposed to be, susceptable of being sung to the accompaniment of a Musical-Instrument."

यहां खण्डकाव्य की गेयात्मकता पर बल दिया गया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में गेयता गीत काव्य का अनिवार्य उपादान है, कहकर बल दिया है। खण्ड काव्य में हृदय की भावनाएं तार्किक पक्ष की अपेक्षा अधिक प्रबल होती हैं तथापि इनमें संक्षिप्तता भी रहना अनिवार्य रहता है। खण्ड काव्य की कतिपय विशेषताएं ऐसी हैं जो उसे महाकाव्य से पृथक् करती हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

(1) भाव, रस, छन्द, अलंकार और भाषा पर प्रभाव जमाने वाली अनुभूति का संतुलित सहयोग होता है।

(2) उदात्त, नैतिक आदर्श प्रमुखता विद्यमान होता है। खण्ड काव्य चाहे धार्मिक हो या श्रम प्रधान अथवा श्रृंगार प्रधान हो।

(3) खण्ड काव्यों में रमणी का अन्तः एवं बाह्य सौन्दर्य का प्रभावी चित्रण मिलता है। खण्ड काव्य में कोमल भावों की प्रधानता होने के कारण इसमें करुण, श्रृंगार एवं वीर रस आदि का वर्णन होता है। मानवीय भावों की कोमलता को कम करने वाले रसों का प्रायः अभाव रहता है। खण्ड काव्य में प्रायः काव्यकार स्वच्छन्द रूप से सुनियोजित छन्दों में अपने भाव व्यक्त करता है।

(4) खण्ड काव्यों में संगीतात्मकता का प्रमुख स्थान होता है।

(5) इनमें सुख दुख आदि मानवीय मनोभावों का चित्रण होता है। जिससे जीवन की मार्मिक अनुभूति का अनुभव पाठक करता है।

(6) खण्ड काव्य पद्य मुख तक होते हैं जिनमें पूर्वापर सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं होती है। प्रायः वह स्वतन्त्र रूप से ही रसास्वादन कराने में सक्षम होते हैं।

(7) खण्ड काव्यों में लालित्य और मधुरता का संतुलित सनिवेश रहता है, जिससे सरस भावों के अनुकुल ही भाषा बनाने में सहायता मिलती है।

(8) खण्ड काव्यों में प्रायः भाव पक्ष कला पक्ष की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है।

(9) खण्ड काव्यों में सुकुमार तथा उदात्त भावना की प्रकृति का चित्रण होता है। अतः इनमें प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का समावेश रहता है।

(10) श्रृंगार प्रधान खण्ड काव्यों में प्रेम तथा धार्मिक खण्ड काव्यों में भक्ति रस प्रमुखता से स्थान पाता है।

इस प्रकार खण्ड काव्य शास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्यों से अलग न होते हुए भी अपनी स्वतन्त्र पहचान रखते हैं।

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित श्रीगान्धिचरितम् में खण्ड काव्य के तत्व –

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित प्रस्तुत खण्ड काव्य राष्ट्रीय भावना से युक्त काव्य है, यद्यपि यह खण्ड काव्य, खण्ड काव्यों की परम्परा से सर्वथा भिन्न है लेकिन उसके गुणों पर विचार करने से सहज ही निष्कर्ष निकलता है कि इसे खण्ड काव्य ही कहना सर्वथा उचित होगा। यह सर्गो में उपनिबद्ध नहीं है, तथापि इसे महात्मा गान्धी के चरित्र के उदात्त गुणों के आधार पर उन्हीं के नाम पर इसका नामकरण कर दिया गया है। इसमें अपनी मातृ भाषा, प्राचीन साहित्य तथा सांस्कृतिक मूल्यों के साथ–साथ प्रमुख महापुरूषों के प्रति आस्था एवं पूज्य भाव सन्निहित है। वह क्रियाशील रहने और विषयों के प्रति अनाशक्त रहने की प्रेरणा देता है। प्रस्तुत काव्य में मूलतः नैतिकता पर जोर देते हुए सदाचार, सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह जैसे श्रेष्ठ नैतिक आदर्शो के पालन पर जोर दिया गया है। प्रस्तुत काव्य जहां हमें कर्त्तव्य पद पर बने रहने की शिक्षा देती है वहीं सम्पूर्ण मानवों से विना कोई जाति भेद किये हुए समानता का व्यवहार करने की भी शिक्षा देता है। स्पष्टता काव्य, खण्ड काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

श्रीगान्धिचरितम् के रचनाकार का जीवन वृत्त –

बीसवी शताब्दी के आरम्भिक काल के इस उद्‌भट विद्वान के जन्म समय के विषय में पर्याप्त अनिश्चितता है। फिर भी इस वशिष्ठ गोत्रीय संस्कृत विद्वान् का जन्म स्थान अनुमान के आधार पर सन् 1904 ई. निश्चित किया गया है। आपके जन्म स्थान के रूप में उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिले के चरथावल नामक कस्बे को पहचाना गया है। इसके पितामह पण्डित बद्रीदत्त शुक्ल को स्थानीय ब्राह्मण समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। आपके पिता का नाम भाई दयालु शुक्ल तथा माता का नाम श्रीमती तुलसी देवी बताया जाता है। शुक्ल जी के खानदान में उनके दो चाचा थे जिनमें छोटे चाचा मंगलराम शुक्ल थे। दुर्भाग्य से बड़े चाचा के नाम आदि के विषय में कोई

जानकारी नहीं मिलती है। शुक्ल जी की एक बहन कुमारी ब्रह्मा देवी थी और एक छोटे भाई मित्र सेन भी थे।

शुक्ल जी मात्र जब तीन या चार वर्ष के थे तभी उनके परिवार पर अनभ्र बज्रपात हुआ। प्राकृतिक प्रकोपवश संक्रामक रोग जो उस समय असाध्य या भयंकर प्लेग फैला, जिसकी चपेट में उनके घर बाग, दुकान, भाई बन्धु सभी आकर उजड़ गये। फलस्वरूप इस भयंकर प्रकोप से श्री शुक्ल जी एवं उनके अनुज श्री पं. मित्रसेन जी शुक्ल बच सके। इनका पालन पोषण इनकी ननिहाल मुजफ्फरनगर जनपद स्थित "बेहड़ा आसा" में मामा श्री पण्डित देवीदत्त जी शर्मा एवं उनके सुपुत्र श्री पण्डित प्यारे लाल जी शर्मा वैद्य के असीम वात्सल्यमय छत्रछाया में हुआ।

इनका जीवन अध्यवसायी था जिससे उन्होंने अपने जीवन को प्रवाहमय किया। विभिन्न संस्कृत विद्यालयों यथा – कालका, डेराबसी, मुजफ्फरनगर आदि में प्रधानाचार्य पद पर आसीन रहने के उपरान्त सन् 1936 ई. में अपने पूज्य गुरूवर विद्यावाचस्पति श्री पण्डित परमानन्द जी शास्त्री के आवाहन पर आप खुरजा नगर स्थित सुप्रसिद्ध विद्याकेन्द्र श्री राधाकृष्ण संस्कृत कॉलेज में आये एवं अनेक वर्षों तक वहां साहित्य विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया अनन्तर वहां के प्रधानाचार्य पद पर आसीन होकर उसे भी सुशेभित एवं गरिमामण्डित किया। अन्तिम समय तक वे इन्हीं दोनों पदों पर आरूढ़ रहकर इन्हें सुशोभित करते रहे। यावज्जीवन उन्होंने निम्न उक्ति को अक्षरशः चरितार्थ किया –

"अधीतमध्यापितमर्जितं यत्र"।

उनके गुणों एवं ज्ञान से परिपूर्ण हजारों शिष्य प्रशिष्य सम्पूर्ण देश में फैले हुये हैं। आचार्य प्रवर संस्कृत साहित्य पर असामान्य अधिकार से युक्त थे एवं विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न होने से संस्कृत–हिन्दी में धारावाहिक रूप से लिखने की कला में निष्णात निपुण थे। आचार्य श्री शुक्ल जी में एक साथ अनेक सद्गुणों का संकलन था यथा–सफल अध्यापक, कर्तव्यनिष्ठ प्रशासक, कुशलवक्ता, उत्साही संगठनकर्ता, रससिद्धकवि, मार्मिक टीकाकार, मर्मज्ञ सम्पादक एवं निष्णात कथावाचक।

उनका व्यक्तित्व आकर्षक था एवं जीवन सतत् संघर्षशील था। बाल्यकाल में ही माता पिता की छत्रछाया से विरत हो जाने के कारण युवावस्था में सांसरिक समस्याओं का सामना उन्हें अकेले ही करना पड़ा। देवी विडम्बना उन्हें अपनी भरी जवानी में अपनी पुत्री के वैधव्य का दारुण दुःख देखना पड़ा। जीवन के अवसान के दिनों में उन्हें भयंकर एवं दीर्घकालीन रूग्णता सहन करनी पड़ी परन्तु उनका साहित्य सर्वथा अवसाद एवं दैन्य की छायां से परे है।

सरस्वती का आराधना उनका धन्धा न होकर "धर्म" होने के कारण वे यशोधन थे। संस्कृत के अनन्य उपासकों में से एक थे। उन्होंने प्रचलित इस धारणा का कि "संस्कृत के विद्वान् अपने बालकों को संस्कृत नहीं पढ़ाते" का खण्डन अपने सभी बच्चों को संस्कृत पढ़ाकर किया।

परम आस्तिक एवं भक्त होने के कारण वे ईश्वर पर अटूट विश्वास रखते थ जिससे बड़ी–बड़ी विपत्तियां भी उन्हें विचलित नहीं कर सकीं। स्फटिक के समान उनका चरित्र धवल था एवं किसी भी मानव का अहित चिन्तन् तो वे जानते हीं नहीं थे। प्रसिद्धि से लगभग 6 मास पूर्व "संस्कृत परिषद्, अलीगढ़" द्वारा सम्मान में "संस्कृत वैभवम्" नामक अभिनन्दन ग्रन्थ उनको समर्पित किया गया था। जिसमें उनकी संस्कृत सेवाओं का मूल्यांकन इस प्रकार किया गया है –

"संस्कृत सेवमानस्याचार्य शुक्लस्य पंचचत्वारिशं–द्वर्षव्यापीदीर्घः समयोऽतिक्रान्तः। एतत्समयान्तराले स संस्कृतसरस्वत्या वन्दनीयां यां वरिवस्यां विहितवानस्ति सास्ति बहुविधा। छात्राणामध्यापनं, नव नव रचनानां विरचनं, सतां सभासु प्रवचनानां ततेर्वितननं, श्रीमद्भागवत सुधायाः प्रवाहनं, पत्र पत्रिकाणां, सम्पादनं, विशाल विशालतराणां सम्मेलनानां समायोजनं साहित्यिक संघटनानां संचालनं, संस्कृत प्रचारणाभ्युत्थापनादि महनीय महानां कृते स्वस्य परेषाचांवतराणं, भारतीय संस्कृति–मर्यादा–रक्षण–दक्ष कार्य–कलायानामाचरण, सत्यापरिग्रहादियम स्वाध्यायतपः प्रभृति नियमानां परिचालनं, भारतीकसांह्रदय–धरित्र्या उपरिराष्ट्र प्रेम प्रवाहस्य संचारणभित्यादिकाः सन्ति तदीया नानाविधा परिचतयः। तस्य ताभिस्ताभि, सेवा निर्देशोऽयं, विशेषेण च संस्कृत संसारः प्रणतमस्तकी कृतोऽस्ति।"

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल का व्यक्तित्व : एक परिचय –

संस्कृत काव्य संसार और गान्धी के अध्यात्म का उपासक यह साहित्यकार अनोखे व्यक्तित्व का धनी था। भौमिकी प्रतिभा के धनी और संस्कृत के असाधारण यह विद्वान् अपने सम्पर्क में आने वालों के दिल में अपने वाक्चातुर्य के माध्यम से स्थान बना लेते थे। आप व्याख्यान कला में दक्ष थे। जहां कहीं भी आप भाषण देने जाते थे वहां पर उपस्थित श्रोताओं से मुक्त कण्ठ से प्रशंसा प्राप्त करते थे। उनके व्यक्तित्व का एक अनोखा पक्ष यह था कि वह ईर्ष्या का भाव अपने मन में नहीं रखते थे। उन्हें दूसरों की उन्नति से अपार आनन्द मिलता था।

सौम्य व्यक्तित्व के धनी इस संस्कृत आचार्य को अन्याय पूर्वक इकट्ठा किया गया धन बिल्कुल भी पसन्द नहीं था। उनके व्यक्तित्व में स्वावलम्बन तथा देश प्रेम की भावना स्पष्ट झलकती थी। उनके विराट् व्यक्तित्व का ही यह प्रभाव था कि उनके पुत्र–पुत्रियां आज राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत सेवी के रूप में पहचाने जाते हैं तथापि उन्होंने उन्हें उदात्त संस्कारों से अभिमण्डित किया है। उनके पांचो पुत्र डॉ. कृष्णकान्त शुक्ल, प्रो. उमाकान्त शुक्ल, डॉ. रमाकान्त शुक्ल, श्री लक्ष्मीकान्त शुक्ल, श्री विष्णुकान्त शुक्ल अपने उदात्त गुणों से राष्ट्रीय स्तर पर पहचाने जाते हैं। डॉ. रमाकान्त शुक्ल के सम्पादन में अर्वाचीन संस्कृतम् नामक पत्रिका अपनी राष्ट्रीय पहचान बना चुकी है।

संस्कृत भाषा के प्रति आपके मन में विशेष अनुराग था। यही कारण है कि आपने अपने पुत्रों को भी संस्कृत की शिक्षा दिलवायी। आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था लेकिन 1959 ई. में एक पैर में जूते के काटने और मधुमेह रोग हो जाने के कारण आपका

स्वास्थ्य खराब हो गया। फिर भी बारह वर्षों तक आप संस्कृत की सेवा में बिगड़ स्वास्थ्य में भी कार्य करते रहे।

पं. ब्रह्मानन्द शुक्ल का सृजन संसार –

शुक्ल जी ने संस्कृत के साथ–साथ हिन्दी भाषा में भी काव्य सृजन किया है। उनकी कुछ रचनायें मौलिक हैं तथा कुछ ग्रन्थों का उन्होंने सम्पादन एवं व्याख्या भी की है। कतिपय रचनायें अप्रकाशित भी हैं। उनके जीवन काल में प्रकाशित काव्यात्मक रचनायें निम्नलिखित हैं –

(क) संस्कृत भाषा में –

1. श्रीनेहरूचरितम् –

पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल के संस्कृत रचना संसार में यह उनकी मौलिक एवं सबसे अंतिम कृति है। जिसे महाकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। प्रस्तुत काव्य की रचना सन् 1968 में हुई थी। इस महाकाव्य में उन्होंने जवाहर लाल नेहरू के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

2. श्रीगान्धिचरितम् –

यह खण्ड काव्य 111 पद्यों का संकलन है जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला गया है।

(ख) हिन्दी भाषा में –

1. उद्बोधन –

इस हिन्दी काव्य में आपने गीता के आधार पर कृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिये गए उपनिषदों के माध्यम से भारतवासियों को अंग्रेजों से अपने अधिकार एवं स्वतन्त्रता प्राप्त करने का उपदेश दिया है। इस काव्य की रचना उन्होंने सन् 1947 में की थी। अतः इसकी विषय वस्तु सर्वथा समयानुकुल प्रतीत होती है एवं इसमें राष्ट्रीय भावना का प्रचुर समावेश है।

2. मणिनिग्रह –

प्रस्तुत खण्ड काव्य में भी हिन्दी भाषा में रचित है तथा इसमें नारी के गौरव प्रतिष्ठा का अत्यधिक प्रभावी ढंग से चित्रण किया गया है। इस कृति के अनोखी विशेषता यह है कि इसमें जीवन मूल्यों को सूक्तियों के माध्यम से प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया गया है।

भारत सुषमा नामक हिन्दी काव्य उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो पाया तथापि आश्वासन एवं वस्त्रावतार नामक काव्यों के कुछ अंशों की ही वह रच पाने में सफल हो पाये।

सम्पादित एवं टीकाग्रन्थ –

पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल ने मौलिक काव्यों के अतिरिक्त अनेक संस्कृत ग्रन्थों को सम्पादित कर उनकी टीकाएं/व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। इनमें सावित्र्युपाख्यानम्, मृच्छकटिकम्, हर्षचरितम एवं उत्तरचरितम्, मुद्राराक्षस, प्रमुख हैं। इसके साथ ही इन्होनें साधु (यह पत्रिका ऋषिकेष से निकलती थी) विज्ञान ज्योति (यह पत्रिका खुरजा से निकलती थी) एवं विद्या वाचस्पति पण्डित परमानन्द शास्त्री का जीवन चरित्र जैसे पत्र–पत्रिकाओं एवं ग्रन्थों का सम्पादन/प्रणनयन किया। उनके द्वारा प्रणीत अभिनन्दन पत्रों में मालवीय जी का अभिनन्दन पत्र तो ऐतिहासिक महत्व रखता है।

अनेक श्लोकों को लिखने के फलस्वरूप ही उन्होंने अपने साहित्य का संकलन अधिक नहीं किया। सैंकड़ो श्लोक उन्होंने अपने परिचितों अथवा शिष्यों को दे दिये। उनकी कविताओं के संग्रह की कॉपी किसी छात्र ने चुरा ली थी। संस्कृत श्लोक पाठ का ढंग अत्यधिक सुन्दर होने के कारण श्रोता श्लोक सुनने पर मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे। आकाशवाणी से भी आपकी अनेक वार्ताएं प्रसारित हुई थीं। आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए भारत धर्म महामण्डल काशी ने आपको कविरत्न की उपाधि से अलंकृत किया था। आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल जी राष्ट्रीयता एवं भारतीय संस्कृति की अमर गायक हैं एवं उनका समस्त साहित्य स्वस्थ परम्परा का साहित्य है। नेहरू चरितम् महाकाव्य संस्कृत साहित्य की एक अनुपम निधि है। इस महाकाव्य के विषय में आचार्य पण्डित सीताराम जी चर्तुवेदी ने कहा था कि – "इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस शताब्दी में इनता सरल, काव्यकौशलयुक्त और उपादेय महाकाव्य दूसरा नहीं रचा गया।"

यह महाकाव्य उनके महाप्रयाण से डेढ़ मास पूर्व प्रकाशित हुआ था एवं इसके प्रकाशन से उन्हें असीम सन्तोष प्राप्त हुआ था।

डॉ. रमेशचन्द्र जी शुक्ल के शब्दों में –

"आचार्य शुक्ल एक महान् कर्मयोगी एवं सरस्वती पुत्र थे।" कर्मयोगिता एवं उनकी साहित्य साधना का परिचायक आचार्य श्री ब्रह्मानन्द जी शुक्ल की निम्न पंक्तियां हैं जो उन्होंने अपने स्वर्गवास से कुछ समय पूर्व डॉ. रमेश चन्द्र जी शुक्ल से मिलने पर कहीं थीं –

"मस्तिष्क में अब भी बहुत कुछ करने की योजना है – मुझे कोई वृद्ध कहता है तो मेरे हृदय पर चोट लगती हैं।"

महाप्रयाण –

आजीवन सरस्वती की आराधना करते हुये "वसन्त पंचमी" सम्वत् 2026 दिन मंगलवार दिनांक 10.02.1970 ई. को माँ सरस्वती की आराधना करके, अपने पूज्य गुरूवर विद्यावाचस्पति पंण्डित परमानन्द जी शास्त्री के चित्र को मस्तक से लगाकर और

सम्मुखस्थ शिष्य श्री ओमप्रकाश शास्त्री से बातें करते–करते वाग्देवता के चरणों में सदा के लिये विलीन हो गये। डॉ. रमाकान्त शुक्ल ने अपने शोध प्रबन्ध "जैनाचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामायण" के आरम्भ में इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार किया है –

"वाग्देवतावतारो वाग्देवीमर्चन्नित्यम्।
वाग्देवीः पंचम्यां वाग्लीनो योऽभवज्जनकः।।"

उनके सम्बन्ध में निम्न उक्ति सत्य है –

"जयन्ति ते सुकृतिनों रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्तियेषां यशः काये जरा मरणजं भयम्।।"

आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित गान्धिचरितम् का साहित्यिक वैशिष्ट्य –

गान्धिचरितम् के साहित्यिक वैशिष्ट्य को रेखांकित करने के लिये इसके भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सम्यक् विश्लेषण करना आवश्यक है। यहां कला पक्ष एवं भाव पक्ष की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

कला पक्ष एवं भाव पक्ष दोनों में समानता एवं उचित समन्वय के माध्यम से ही काव्य में पाठक अथवा श्रोता आनन्दानुभूति कर पाता है। महाकाव्य की भांति ही खण्ड काव्य में कला पक्ष महत्वपूर्ण होता है। कला पक्ष का प्रयोग भावों के सम्बर्धन को ध्यान में रखकर ही होना चाहिये।

श्रीगान्धिचरितम् की भाषा –

खण्ड काव्य गान्धिचरितम् की भाषा शैली पर सर्वप्रथम विचार किया जा रहा है। भाषा का विचार का करने पर दूसरे काव्यों की तुलना में इसकी भाषा अत्यन्त सरस, सरल, गम्भीर, भावयुक्त, लघुसमासपूर्ण, विषयोपगी एवं सर्वथा काव्य की उपयुक्त है। अभिव्यक्ति के लिये कवि ने संस्कृत साहित्य में प्रचलित शब्दावली के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी उसी रूप में प्रयोग किया है जो विषय की प्रासंगिकता बनाये रखने में समर्थ हों। उदाहरणार्थ – पोरबन्दर, अफ्रीका, कांग्रेस, रौलेट, कुली, अंग्रेज, राजकोट, बापू, अगस्त इत्यादि शब्दों का प्रयोग यद्यपि कहीं–कहीं कवि ने अन्य भाषाओं के शब्दों को संस्कृत के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। यथा बैरिष्टर वकील आदि को बैरिस्टर इसके अतिरिक्त भावा अभिव्यक्त की सरलता के लिये कवि ने कुछ शब्दों में परिवर्तन भी कर लिया है। इसमें प्रयुक्त सूक्तियों से भी भाषा मर्म स्पर्शी बन गई है। गान्धी के जन्म प्रसंग के सम्बन्ध में प्रस्तुत निम्न श्लोक भाषा की दृष्टि से अत्यन्त सरल एवं सरस है –

"भूयौ न जाने कति वा भवन्ति,
सुताः स्यवंशोन्नतिहेतु भूताः?

सम्मुखस्थ शिष्य श्री ओमप्रकाश शास्त्री से बातें करते–करते वाग्देवता के चरणों में सदा के लिये विलीन हो गये। डॉ. रमाकान्त शुक्ल ने अपने शोध प्रबन्ध "जैनाचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामायण" के आरम्भ में इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार किया है –

"वाग्देवतावतारो वाग्देवीमर्चन्नित्यम्।
वाग्देवीः पंचभ्यां वाग्लीनो योऽभवज्जनकः।।"

उनके सम्बन्ध में निम्न उक्ति सत्य है –

"जयन्ति ते सुकृतिनों रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्तियेषां यशंः काये जरा मरणजं भयम्।।"

आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल रचित गान्धिचरितम् का साहित्यिक वैशिष्ट्य –

गान्धिचरितम् के साहित्यिक वैशिष्ट्य को रेखांकित करने के लिये इसके भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सम्यक् विश्लेषण करना आवश्यक है। यहां कला पक्ष एवं भाव पक्ष की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

कला पक्ष एवं भाव पक्ष दोनों में समानता एवं उचित समन्वय के माध्यम से ही काव्य में पाठक अथवा श्रोता आनन्दानुभूति कर पाता है। महाकाव्य की भांति ही खण्ड काव्य में कला पक्ष महत्वपूर्ण होता है। कला पक्ष का प्रयोग भावों के सम्बर्धन को ध्यान में रखकर ही होना चाहिये।

श्रीगान्धिचरितम् की भाषा –

खण्ड काव्य गान्धिचरितम् की भाषा शैली पर सर्वप्रथम विचार किया जा रहा है। भाषा का विचार का करने पर दूसरे काव्यों की तुलना में इसकी भाषा अत्यन्त सरस, सरल, गम्भीर, भावयुक्त, लघुसमासपूर्ण, विषयोपगी एवं सर्वथा काव्य की उपयुक्त है। अभिव्यक्ति के लिये कवि ने संस्कृत साहित्य में प्रचलित शब्दावली के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी उसी रूप में प्रयोग किया है जो विषय की प्रासंगिकता बनाये रखने में समर्थ हों। उदाहरणार्थ – पोरबन्दर, अफ्रीका, कांग्रेस, रौलेट, कुली, अंग्रेज, राजकोट, बापू, अगस्त इत्यादि शब्दों का प्रयोग यद्यपि कहीं–कहीं कवि ने अन्य भाषाओं के शब्दों को संस्कृत के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। यथा बैरिष्टर वकील आदि को बैरिस्टर इसके अतिरिक्त भावा अभिव्यक्त की सरलता के लिये कवि ने कुछ शब्दों में परिवर्तन भी कर लिया है। इसमें प्रयुक्त सूक्तियों से भी भाषा मर्म स्पर्शी बन गई है। गान्धी के जन्म प्रसंग के सम्बन्ध में प्रस्तुत निम्न श्लोक भाषा की दृष्टि से अत्यन्त सरल एवं सरस है –

"भूयौ न जाने कति वा भवन्ति,
सुताः स्यवंशोन्नतिहेतु भूताः?

सर्वात्मना विश्व विनोद हंतु,
बलिस्तु जातो ननु मोहनोऽयम्।।"

छन्दोयोजना –

पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल के इस काव्य में प्रायः सभी छन्दो का कुशलता पूर्वक प्रयोग किया गया है। काव्य में उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, इन्द्रवज्रा, अनुष्टुप् आदि छन्दों का सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है। इसमें भी उपजाति छन्द की अधिकता पायी जाती है। जिसके लघु प्रयोग से वर्णित विषय की अभिव्यक्त क्षमता बढ़ जाती है।

"शक्वरि" नाम के छन्दों के प्रत्येक चरण में चौदह–चौदह अक्षर एवं अतिशक्कवरि नाम के छन्दों के प्रत्येक चरण में पन्द्रह–पन्द्रह अक्षर होते हैं। इस प्रकार काव्य के अन्तर्गत आठ, चौदह एवं पन्द्रह वर्णों वाले जिन समवृत्तों का प्रयोग हुआ है वह भी द्रष्टव्य है। पारिभाषित संज्ञा त्रिष्टुम् वाले छन्दों के एक चरण में आठ अक्षरों वाले वृत्त विशेष वक्त्र नाम के होते हैं। इनके प्रत्येक चरण में ग्यारह–ग्यारह अक्षर प्रयुक्त होते हैं।

काव्य में वक्त्र के अन्तर्गत अनुष्टुप् का, त्रिष्टुप् के अर्न्तगत इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा और उपजाति का, शक्वरि के अन्तर्गत वसन्ततिलका का और अति शक्कवरि के अन्तर्गत मालिनी छन्द प्रयुक्त हुए हैं –

अनुष्टुप् छन्द का लक्षण श्रुत बोध में निम्न है –

"श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्विचतुष्पादयोर्हस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।"

यह वृत्त विशेष अनुष्टुप्, पद्य, श्लोक आदि नामों से पहचाना जाता है। अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग इस खण्ड काव्य में निम्न ग्यारह श्लोकों में हुआ है –

"पोरबन्दर" –राजस्यं साचिव्यं परिपालयन्
यः प्रसिद्धिं च सिद्धिं च या तो मित्रारिपक्षयोः।।8।।

सत्यशीलनिधेस्त पतिधर्म परायण।
पत्नी चतुष्टयस्यासीच्चतुर्थी "पुतली" प्रिया।।9।।

"राजोचितैः सुखैर्बलो लालितो गुरुभिर्गृहे।
क्रमशोवृद्धिमापन्नः शुक्लपक्षे शशी यथा"।।14।।

सर्वोपस्कार संयुक्ता भूमिर्दिव्य फलप्रदा।
मातुर्गुणैरभूत्पूर्णः पीयूषैरिव चन्द्रमाः।।15।।

धन्या कस्तूरबा देवी पतिधर्मपरायण।
स्थानं सुरक्षितं कर्तु पूर्वमेव दिवंगता।।103।।

"साम्प्रदायिकता–दोष–दुष्टैर्माता विरूपिता।
इत्येवंतप्यमानस्य, व्यतीताः कतिचिन्निशां" ।।105।।

सर्वे सन्तोषवन्तः स्युर्भवन्तो भगवत्प्रियाः।
नवैः सम्भाषणै र्नित्यं सन्तोषं व्याकरोत् पिता।।106।।

भारतोद्धारको हन्तः महात्मा सर्वमोहनः।
केनाप्युन्मादिना सोअपि कथा मात्र वपुःकृतः।।107।।
रामनाम–कथालापैराशिः कायः सभूतले।
दिव्यरूपेण सर्वत्रजयतात् सर्वदा पिता।।108।।
नैव वंचकता क्वापि, नापि क्षुत्क्षामकण्ठता।
न चापि दुर्बलाघातो, ममदेशे भवेत्क्वचित्।।109।।
सर्वत्र समता देवी पूज्यमाना भवेदिह।
सर्वदाभ्युदयोभूयादित्यास्तां तत्समो हितम्।।110।।

श्रीगान्धिचरितम् काव्य के प्रणेता पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल द्वारा इस काव्य में इन्द्रवज्रा छन्द का भी यथा स्थान सुन्दर प्रयोग किया गया है। इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण है – "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौगः (वृत्त–रत्नाकर)" अर्थात् इसमें दो तगण, जगणं, तथा गुरू होते हैं। उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण वृत्त रत्नाकर के अनुसार निम्न है –

"उपेन्द्रवज्रा जत जास्त तौगौ।"

अर्थात् इसमें जगण, तगण, जगण एवं 2 गुरू होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह–ग्यारह वर्ण होते हैं। इसमें पादान्त में यति होती है। प्रस्तुत खण्ड काव्य गान्धिचरितम् के अधोलिखित श्लोक उपेन्द्रवज्रा में निबद्ध हैं –

"विदेश यात्रा तु हिताय में स्याद्
विचिन्त्य मानो मनसा मनस्वी।
विहाय भूयो निजबन्धुलोकम्,
विधेरवन्ध्येच्छतयाजगाम्"।।55।।
"कादाप्यनेकानयमान–हेतून्,
बभंज गौरांग–विधीन् बलेन।
निर्माय नूत्नं लवणं कदाचिदं,
विवेश काराभवनं चिराय"।।92।।

उपजाति –

समान जाति के दो छन्दों के संकर हो जाने पर उपजाति छन्द की व्युत्पत्ति होती है। विषम जाति दो वृत्तों के मेल से उपजाति छन्द नहीं बनता, इस स्थिति में वृत्त अध सिम होता है। इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा दो जातिक वृत्तों के मेल को उपजाति कहते हैं। इनके प्रत्येक चरण में ग्यारह–ग्यारह वर्ण होते हैं तथा पादान्त में यति होती है। गणों का कम इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के समान होता है।

इसके चौदह भेद हैं –

1. "उइइइ" (यहां "उ" उपेन्द्रवज्रा को एवं "इ" इन्द्रवज्रा को निर्दिष्ट करता है।) अर्थात् प्रथम पाद में उपेन्द्रवज्रा, द्वितीय चरण में इन्द्रवज्रा, तृतीय चरण में इन्द्रवज्रा और चतुर्थ चरण में इन्द्रवज्रा।

यह उपजाति छन्द "गान्धिचरितम्" काव्य के पांच श्लोकों में प्रयुक्त हुआ हे। इन श्लोकों की क्रम संख्या 11, 60, 79, 86, 101 है।

2. "इउइइ" (यह उपजाति अधोलितिख 10 श्लोकों में प्राप्त है।) जिनकी क्रम संख्या 7, 12, 13, 34, 58, 83, 90, 95, 98, 102 है।
3. "उउइइ" यह उपजाति गान्धिचरितम् खण्ड काव्य में कुल पांच श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है। जिनकी क्रम संख्या 1, 17, 85, 99, 100 है।
4. "इइउइ" यह उपजाति प्रस्तुत खण्ड काव्य के निम्न श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है। जिनकी क्रम संख्या 48, 49, 61 है।
5. "उइउइ" यह उपजाति निम्न श्लोकों में द्रष्टव्य है। जिनकी क्रम संख्या 45, 51, 81 है।
6. "इउउइ" यह उपजाति अधोलिखित तीन श्लोकों में प्राप्त है। जिनकी क्रम संख्या 30, 75, 80 है।
7. "उउउइ" यह गान्धिचरितम् के श्लोक संख्या सैंतीस में प्रयुक्त हुआ है।
8. "इइइउ" यह उपजाति गान्धिचरितम् के आठ पद्यों में प्रयुक्त हुआ है। जिनकी क्रम संख्या 10, 52, 62, 66, 78, 82, 84, 94 है।
9. "उइइउ" यह उपजाति निम्न ग्यारह श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है। जिनकी क्रम संख्या 3, 6, 18, 39, 42, 46, 63, 71, 76, 89, 91 है।
10. "इउइउ" यह उपजाति गान्धिचरितम् के निम्न सात श्लोकों में प्रयोग हुआ है। जिनकी खण्ड काव्य में पद्य संख्या 31, 33, 36, 54, 57, 72, 88 है।
11. "उउइउ" यह उपजाति निम्न दो श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है –

"कदाचिदेवं विचचार चिन्ते,
किमात्मदेशे न हि नृत्य–विद्या?
गानाय नृत्याय चं दूरदेशे,
समागतोअहं द्रविण–व्ययाय ?"।।32।।

"समाप्य विद्याध्ययनं क्रमेण,
विसर्जितो मित्रगणैः कथंचित्।
प्रेमाश्रुभिः साकमसौ स्वदेश,
प्रति प्रतस्थे परमोत्सुकः सन्"।।43।।

12. "इइउउ" यह उपजाति छन्द गान्धिचरितम् के जिन चार श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है, उनकी क्रम संख्या 35, 64, 69, 74 है।
13. "उइउउ" यह उपजाति निम्न पांच श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है जिनकी संख्या 40, 41, 44, 53, 81 है।
14. "इउउउ" यह उपजाति श्लोक काव्य खण्ड के पद्य संख्या 58, 65, 77, 97, 104 में प्रयुक्त हुआ है।

समासतः गान्धिचरितम् खण्ड काव्य के 62 श्लोकों में उपजाति छन्दों का प्रयोग कुशलता पुर्वक हुआ है।

वसन्ततिलका –

वसन्ततिलका छन्द का लक्षण इस प्रकार है –

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः"

या

"ज्ञेया वसन्ततिलकं तभजा ज गौ गः"

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरू होते हैं वहां वसन्ततिलका छन्द होता है। इसमें कुल 14 वर्ण होते हैं और यति पद के अन्त में होती है। इसे कश्यप मुनि सिद्धोन्नता तथा सतैव मुनि उद्धर्षिणी कहते हैं। यह छन्द गान्धिचरितम् खण्ड काव्य के दस श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है।

मालिनी –

मालिनी छन्द का लक्षण – "मालिनी नौ मया य्" अथवा वृत्त रत्नाकर में इसका लक्षण इस प्रकार बताया गया है – "न–न–म–यययुतेयं मालिनी भौगिलोकैः"

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में नगण–नगण, मगण, यगण, यगण के क्रम से 15 वर्ण होते हैं तथा आठवें व सातवें वर्ण पर यति होती है वहां मालिनी छन्द होता है। श्री गान्धिचरितम् खण्ड काव्य के अन्तिम श्लोक में सुकवि पण्डित ब्रह्मानन्द ने इस छन्द का प्रयोग किया है –

"जयतु जयतु नित्यं भारते मोहनो नः,
पिबतु पिबतु लोको रामनामामृतं च।
वसतु वसतु सत्यं वाचि चित्ते च कृत्ये,
भवतु भवतु भूयो भारते रामराज्यम्"।।111।।

रस निष्पत्तिः –

प्रस्तुत खण्ड काव्य में यद्यपि करूण रस प्रधान प्रतीत होता है, तथापि अंगभूत वीर रस भी यथा स्थान अवलोकित हो रहा है। जिसका स्थायी भाव उत्साह परिलक्षित होता है। वात्सल प्रसंग में भी माता के उपदेश स्वदेश के गौरव प्रकाशन में उत्साह सम्मिलित हैं। श्रीगान्धिचरितम् ईश्वर स्तुति करुणा से परिपूर्ण भक्ति है। माता के स्वर्ग लोक प्रयाण के वियोग में करूण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। इसी प्रकार अफ्रीका में भारतीयों की दशा का वर्णन भी करूण रस से परिपूर्ण है। देश की प्रतिष्ठा के वर्णन में करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्त निम्न श्लोकों में द्रष्टव्य है –

"आचारहीन–जन–जीवन न्यावनाम,
वेदोअपि नार्हतिमभामिति वत्स विद्धि।
तस्मादिहैव पठ पूज्यतमें स्वदेशे,
देवैरपि प्रतिपदं गमिते प्रतिष्ठाम्।।"

सुकवि पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल की अभिव्यक्ति अतीव निर्मल है। विदेश में गान्धी

के चिन्तन के प्रसंग में, स्वदेश में अपनी माता के देहावसान के दुख में, अफ्रीका में भारतीयों के अत्यन्त विपन्नतापूर्ण दशा के अवलोकन में, परतत्रंता के निरीक्षण में, अभिव्यक्त प्रस्फुटित हुई है और काव्य के लिये सर्वथा उपयोज्य है।

विविध विचारपूर्ण वर्णन –

काव्यकार ने स्वाभिमान, संघशक्ति, मानवसेवा, अहिंसा, उत्साह, सदाचार आदि अनेकानेक भावों का महत्वपूर्ण प्रतिपादन किया है। मानवसेवा के सन्दर्भ में यह विचार विचारणीय है –

"ये मानवा देशदरिद्रताया, अन्तं विधातुं सततं यतन्ते।
स्वं जीवनं पावनमेव कर्त्तुम, जना महान्तो नम्रताः कथन्ते"।।35।।

इसी प्रकार कवि ने अहिंसा के संदर्भ में अपने विचार इस खण्ड काव्य के श्लोक संख्या 3, 80, 82 में दिये हैं। जिनमें यद्यपि गान्धीजी की अहिंसा सम्बन्धी अवधारणा पूर्ण रूप से मुखरित नहीं हो सकी है, लेकिन केन्द्रीय भाव अवश्य समझ में आ सकता है। संघशक्ति अर्थात् राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में कवि ने प्रस्तुत खण्ड काव्य के पद्य संख्या 69, 70, 81 में निचार व्यक्त किये हैं।

धैर्य अथवा धीरता की अभिव्यक्ति निम्न श्लोकों में द्रष्टव्य है –

"एवं विधानि बहुभीतिकराणि दृष्टवा,
वृत्तानि नैव विचचाल स वीरबालः।
आरुह्य निश्चितमतिर्नन्नु वारयेत,
माश्वासितः प्रियजनैरथ संप्रतस्थे" ।।26।।

इसी प्रकार राष्ट्र सेवा के प्रति उनकी यह पावन प्रतिज्ञा दर्शनीय है –

"स्वंजीवनं जीवनमेव कर्तु
स्थिरप्रतिज्ञो भवितास्मि नूनम्।
दारिद्रय–दास्यादिनिपीड़ितस्य
देशस्य मुक्तेर्भवितास्मि हेतुः"।।34।।

गान्धीजी के राजनीतिक दर्शन में सत्य एवं अहिंसा का महत्व सर्वोपरि रहा है। कवि ने उनकी सत्य एवं अहिंसा सम्बन्धी धारणाओं का सटीक वर्णन इन शब्दों में किया है –

"अहिंसया सत्य वलेन चैव
कार्याण्यसाध्यान्यपि यान्ति सिद्धिम्।
इत्थं व्रतं हयस्य सदा समृद्धम्,
जयत्यसौ मोहनदासगांधी।।"

राष्ट्रीय एकता अथवा संघशक्ति के महत्व का प्रस्तुतीकरण कवि द्वारा इस प्रकार वर्णित किया गया है –

"कृत्वा प्रतिज्ञां ननु भारतीयाः
स संग समेषामथ योजयन्तु।

सर्वे मिलित्वा सुविचारर्णायान्
विश्वाभियोगान् सुविचारयन्तु" ।। गा.च. 68।।

भाव–प्रभाव –

प्रस्तुत काव्य खण्ड में कवि ने यत्र–तत्र दूसरे काव्यों की छाया भी ग्रहण की है। यहां उनके भाव साम्यों की सविनय समालोचना प्रस्तुत है –

"दिने दिने सा परिवर्धमाना, लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्य मयान्विशेषात्र ज्योत्स्नान्तराणिं कलान्तराणि"।।

(कु.सं.1/25)

उपर्युक्त श्लोक की छाया गान्धिचरितम् के निम्नांकित पद्य में देखी जा सकती है –

"राजोचित–सुखैर्बालो लालितोगुरुभिर्गृहे।
क्रमशो वृद्धिमापन्नः शुक्लपक्षे शशीरिव" ।।4।।

इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् के निम्नांकित श्लोक की तुलना भी गान्धिचरितम् के पद्यों से की जा सकती है –

"भवन्ति नम्रास्तखः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः, स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।"

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् 15)

यह श्लोक गान्धिचरितम् के निम्नांकित पद्य से तुलनीय है –

"परिश्रमंपूर्णतया विधामनैकासु, भाषा स्वभवत्सुविज्ञः।
विज्ञानवित्तोअपि बभूव नम्रः फलति भारेण यथा सुवृक्षः"।।29।।

और इसी प्रकार –

"यशोअधिगन्तुं सुखलिप्सया वा, मनुष्य संख्यानति वर्तितुं वा।
निरुत्सुकानामभियोगभाजाम् समुत्सुके वाकमुपैति सिद्धिः"।।

(किरात 3/40)

इस श्लोक की तुलना श्री गान्धिचरितम् के निम्नांकित पद्य से की जा सकती है –

"उत्साह–सम्पत्प्रवणं यदि स्युर्जनास्तदा स्याद्धिवदां विनाशः।
क्रिया विधिज्ञस्य हि याति लक्ष्मीः, स्वयं सुभाकं सुखवांछयेव"।।66।।

कविकुल गुरू कालिदास द्वारा रचित रघुवंश के पंचम सर्ग में वर्णित कौन्स के विद्या समाप्ति पर गुरू दक्षिणा के सन्दर्भ में गान्धिचरितम् का निम्नांकित श्लोक तुलनीय है–

"समाप्य विद्याध्ययनं क्रमेण
विसर्जितो मित्रगणैः कथंचित।
प्रेमाशुभिः साकमसौ स्वदेशं,
प्रति प्रतस्थे परमोत्सुकः सन्"।।43।।

उपर्युक्त भाव साम्य की तुलनात्मक प्रस्तुति के बाद गान्धिचरितम् की सरस सूक्तियां भी ध्यान आकर्षित करती हैं । इन सूक्तियों के माध्यम से काव्य का भाव पक्ष

काफी सबल हो गया है। इन सुक्तियों को परिशिष्ट एक में संग्रहीत करके प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल का खण्ड काव्य श्रीगान्धिचरितम् अपने भाव पक्ष एवं कला पक्ष के कौशल के बल पर संस्कृत साहित्य के गान्धिचरितात्मक काव्यों में अग्रगण्य बन पड़ा है।

गान्धिचरितम् में चित्रित तत्कालीन सामाजिक स्थिति –

ब्रिटिश कालीन भारत की सामाजिक स्थिति में भारतीय लोगों को दोयम दर्जे की नागरिकता प्राप्त इस अर्थ में थी कि अंग्रेज शासकों की दृष्टि में वह तिरस्कृत एवं प्रताड़ित करने वाले लोग थे। साफ है कि शासक एवं शासित के सामाजिक जीवन में पर्याप्त अन्तर था जो गान्धिचरितम् में यथावत् चित्रित हुआ है। अफ्रीका में गौरे लोगों द्वारा अफ्रीकावासियों के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार को निम्नांकित पद्य सटीक चित्रित करते हैं –

"तत्र प्रमातोअनुतताप दृष्ट्वा,
तां दुर्दशां भातर भूजनानाम्।
गौरांगलोकैः प्रपदातयोऽपि,
कर्त्तव्यमार्गाद्विचचाल नैव"।।56।।

ब्रिटिश शासकों द्वारा देशवासियों को काला आदमी कहकर प्रायः सम्बोधित किया जाता था एवं गौर लोगों द्वारा देशवासी सदैव प्रताड़ित होते रहते थे तथा इन्हें धनवान होने पर भी सन्ताप एवं दुख से विशेषता परतत्रंता के कारण अधिक दीनता प्राप्त थी। इनकी दयनीय दशा का वर्णन निम्नांकित पद्यों में सफलता पूर्वक हुआ है –

"कृष्णत्वमंकेन कलंकितानां,
गौरांग–पादाहति–शक्तितानाम्।
रक्तत्वमेवास्ति महाधनानां,
शंके भृशं ताप–कदर्थितानाम्"।।59।।

इसी प्रकार देशवासियों की घोर निर्धनता एवं विपन्नता से जीवन पद्धति चल रही थी उसका चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है –

"वासो विहीनानवलोक्य दीनान्,
तत्याज वासांसि निजांगतोऽपि"।।93।।

देशवासियों के दासता की भावना को स्थायी करने का प्रयास किया जा रहा था। उन्हें कुली अर्थात् बोझा ढ़ोने वालों के रूप में सम्बोधित करके अपमानित व कलंकित किया जाता था। उदाहरणार्थ –

"हां सर्वतो दास्यममी भजन्ते,
कुलीति कौलीन्यमथो लभन्ते।
विगर्हिता जीवन–यातनामयं,
करातिभारेण भवन्ति खिन्नाः"।।58।।

इस प्रकार श्रीगान्धिचरितम् खण्डकाव्य में तत्कालीन सामाजिक जीवन की विद्रूपताओं का सफल चित्रण हुआ है। सामाजिक जीवन में प्रचलित विसंगतता का चित्रण करने में कवि को अभूतपूर्व सफलता मिली है। काव्य पाठकों में तत्कालीन समाज के प्रति मार्मिक अनुभूति पैदा करने में सक्षम है।

गान्धिचरितम् में चित्रित तत्कालीन आर्थिक स्थिति –

प्रस्तुत खण्ड काव्य में कवि ने यद्यपि ब्रिटिश शासकों की सम्पन्नता का यत्र–तत्र संकेत किया है। लेकिन भारतीयों की निर्धनता एवं गरीबी को चित्रित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। जहां एक ओर उसने देशवासियों की भौतिक विपन्नता को चित्रित किया है। वहीं दूसरी ओर देशवासियों की भावनात्मक गरीबी को भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है –

"वासो विहीनानवलोक्य दीनान्,
तत्याज वासांसि निजांगतोऽपि"।।93।।

भले ही सुकवि पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल को आर्थिक सिद्धान्तों एवं वर्तमान अर्थशास्त्र विषय का ज्ञान न हो लेकिन वे सामान्य भारतीय की दरिद्रता को पहचानने में निश्चय ही सफल हुए हैं। उन्होंने अनेक स्थानों पर भारतीयों के जीवन में विविध प्रकार के अभावों को भाव पूर्ण ढंग से चित्रित किया है। इस प्रकार गान्धिचरितम् काव्य में अतिसंक्षेप में तत्कालीन समय की आर्थिक स्थिति का भी आभास कराया गया है।

गान्धिचरितम् में चित्रित तत्कालीन धार्मिक स्थिति –

सुकवि शुक्ल जी स्वयं आस्थावान आराधक थे। तथापि उन्होंने अपने इस खण्ड काव्य में तत्कालीन समय में ईश्वर के प्रति अगार श्रद्धा एवं विश्वास से परिपूर्ण जन जीवन था। इसका चित्रण कवि ने प्रकीर्ण काव्य के विविध अंशो में बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। अपनी बुद्धि को निर्मल बनाने एवं स्वयं में अलौकिक शक्ति प्रदान करने हेतु गान्धीजी द्वारा की गई ईश प्रार्थना दृष्टव्य है –

"सर्वेश सद्यो विलयं विधेहि,
समुद्गताया मम दुष्टबुद्धेः।
आत्मन्यथो दिव्यबलं निधेहि,
यथामदीयं नवजीवनं स्यात्"।।36।।

प्रस्तुत ईश्वर स्तुति में गान्धीजी के माध्यम से कवि ने जनता को नवजीवन प्रदान करने की ईश्वर से प्रार्थना की है। इसी प्रकार खण्ड काव्य में स्थान–स्थान पर कवि का आस्थावान् दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है। उसने भारतीय धर्म एवं अध्यात्म के साथ भारतीय दर्शन की अनुपम झांकी का प्रस्तुतिकरण बहुत ही सरल शब्दों में प्रदर्शित किया है। उन्होंने गीता के आत्मसिद्धान्त को आदर्श रूप में स्वीकार करते हुए यह सहज प्रश्न किया है कि आत्मा एक है तो गौर और काले का भेद कैसा ? यहां यह उदाहरण दर्शनीय है –

"का गौरकृष्णत्व कृतेह भीतिः?
सर्वेषु चात्मा नियतः स एकः।
अहिंसया सत्य–बलेन–चाहम्।
सन्तापमालां कल दूषयामि"।।61।।

इसके अतिरिक्त कवि ने प्रस्तुत खण्डकाव्य में राम और कृष्ण में देशवासियों द्वारा अगाध श्रद्धा व्यक्त करना चित्रित किया है। प्रतीत होता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के वैष्णव भक्ति को कवि ने ध्यान में हीं नहीं रखा अपितु स्वयं भी उसके वैष्णव भक्ति में आस्थावान होने का आभास होता है। जिस प्रकार महात्मा गान्धी वैष्णव भजन पसन्द करते थे, उसी प्रकार कवि ने राम और कृष्ण में अगाध श्रद्धा व्यक्त की है। इस प्रकार महात्मा गान्धीयुगीन देश को कवि ने अपने खण्ड काव्य में वैष्णव भक्ति से प्रभावित बताते हुए सर्वथा आस्तिक चित्रित किया है।

गान्धिचरितम् में चित्रित तत्कालीन राजनैतिक स्थिति –

प्रस्तुत खण्डकाव्य में कवि ने यद्यपि कोई राजनैतिक सिद्धान्त तो नहीं बताये हैं लेकिन उसने यह अवश्य चित्रित किया है कि देशवासियों को राजनीति में भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उन्होनें यह भी कहा है कि न कोई राजनैतिक मंच देशवासियों के लिये उपलब्ध था। इस प्रकार गौरांग ही इस राष्ट्र के राजनैतिक सम्प्रभु थे। गान्धीजी ने सम्पूर्ण राष्ट्र में भ्रमण करके तत्कालीन राजनीतिक शास्त्रियों का एक मंच गठित किया और उनके साथ तत्कालीन राजनैतिक दशा पर विचार विमर्श किया। उन कुशल राजनीति विद्वानों के द्वारा प्रकटित मतों से राष्ट्रपिता गान्धीजी का मन तृप्त न हो सका। साथ ही साथ कुछ राजनेताओं द्वारा ब्रिटिश प्रभुत्व एवं अपनी दुर्बलता का अनुरूपण करके संदेह युक्त वचनो से गान्धीजी का उत्साह भंग हुआ। राजनीति में अहिंसा का प्रवेश मार्ग राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी द्वारा ही तत्कालीन भारतीय राजनीति में प्रविष्ट किया जाना काव्यखण्ड बताता है तथा इसी शास्त्र को संशोधित कर महात्मा गान्धी के ही माध्यम से स्वराज्य की प्राप्त हुई। भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली कांग्रेस पार्टी का उल्लेख भी काव्यखण्ड में किया गया है। इतना ही नहीं तत्कालीन अनेक राजनेताओं का नाम सहित उल्लेख कवि ने अपने काव्य खण्ड में किया है। किसी राजनेता पर कवि ने कोई अनावश्यक एवं अनापेक्षित टिप्पणी नहीं की है। यह सुकवि पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल का संतुलित दृष्टिकोण ही है कि उन्होंने तत्कालीन अन्य राजनीतिक पार्टियों पर भी कोई टिप्पणी नहीं की। मुख्य रूप से राजनीति में महात्मा गान्धी के अहिंसा के सिद्धान्त को उन्होंने अपने काव्य में प्रतिपादित किया है।

समीक्षा –

प्रस्तुत अध्याय में पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल द्वारा रचित खण्ड काव्य

श्रीगान्धिचरितम् का अध्ययन किया गया। जिसके अन्तर्गत पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल का जीवन परिचय उनका सृजन संसार तथा उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया। इसके साथ ही साथ गान्धिचरितम् के काव्य वैशिष्ट्य को भी रेखांकित किया गया। प्रस्तुत खण्डकाव्य के कला पक्ष के पर्यालोचन से यह सहज उद्घाटित हुआ कि कवि ने खण्ड काव्य में अनुष्टुप, मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों का सुन्दर प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से कवि उदार प्रतीत हुआ। जिस प्रकार राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी हिन्दुस्तानी भाषा की बात करते थे उसी प्रकार कवि ने भी संस्कृत भाषा के सरल स्वरूप के माध्यम से ही काव्य की सृजना की तथापि वर्णनना की आवश्यकता अनुरूप अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

इसमें नायक महात्मा गान्धी का जीवन चरित्र वृत संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। कवि ने भी यहां यह स्वीकार किया है कि "श्रीमान् गान्धीजी के महान चरित्र को वर्णन करने से सभी की आत्मा उज्ज्वल होगी, मन सरस होगा एवं आचरण अनुकरणीय होगा, वहीं लेखनी के संचालन से स्वयं आत्मा पवित्र होगी, प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ का प्रधान निदान है।"

भाव पक्ष की दृष्टि से प्रस्तुत खण्डकाव्य उच्चकोटि का प्रतीत हुआ। कथानक, के विकास एवं अनुभूति के तुल्य भावों का उचित समावेश किया गया है। श्री गान्धी जी की स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश के प्रति रामराज्य की कल्पना निम्नांकित श्लोकों के माध्यम से व्यक्त की गई है –

"नैव वंचकता क्वापि, नापि क्षुत्क्षामकण्ठता।
न चापि दुर्बलाघाती, मम देशे भवेत्क्वचित्।।107।।

एवं

"सर्वत्र समता देवी पूज्यमाना भवेदिह।
सर्वदाभ्युदयो भूयादित्यास्तां तत्समीहितम्"।।110।।

इस प्रकार पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल एवं उनका खण्डकाव्य श्रीगान्धिचरितम् संस्कृत साहित्य के गान्धिचरित्रात्मक काव्यों में एक महत्वपूर्ण कृति है। जिसके अन्तर्गत न सिर्फ महात्मा गान्धी के जीवन वृतान्त और तत्कालीन देश की धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति की जानकारी मिलती है अपितु गान्धी दर्शन का भी संक्षेप में वर्णन हुआ है।

तृतीय अध्याय

पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी रचित 'गान्धिगौरवम्' महाकाव्य का वैशिष्ट्य

तृतीय अध्याय
पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी रचित 'गान्धिगौरवम्' महाकाव्य का वैशिष्ट्य

संस्कृत साहित्य के गान्धी चरितात्मक काव्यों में गान्धी गौरवम् महाकाव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत काव्य के प्रणेता पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी अपने साहित्यिक वैशिष्ठ्य के बल पर आधुनिक संस्कृत काव्यकारों में प्रमुखता गिने जाते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के चरित्रांकन को यर्थाथतः प्रतिबिम्बित करने वाले इस महाकाव्य के प्रणेता का परिचय इस प्रकार है।

काव्यकार की जन्मस्थली –

गान्धी गौरवम् महाकाव्य के रचयिता पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी का जन्म उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत नैमिषारण्य नामक पवित्र तीर्थ स्थान के निकट हरदोई जनपथ में स्थित सण्डीला नामक नगर के बरौनी नामक मोहल्ले में हुआ था।[1]

काव्यकार का वंश परिचय–

श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी का जन्म चैत्र शुक्लः अष्टमी बुधवार सम्वत् 1955 तदानुसार सद् 1898 ई. में ब्राह्मण श्रेष्ठ पण्डित शिव नारायण त्रिपाठी के घर हुआ था। आपके पिता ने पण्डित कालका प्रसाद त्रिपाठी की हार्दिक इच्छा के अनुसार आपने बचपन से ही संस्कृत अध्ययन मनन के संस्कार स्वीकार किये। काव्यकार के पितामह श्री कालिका प्रसाद त्रिपाठी परम् विद्धान और तपस्वी थे। कर्मकाण्ड, ज्योतिष तथा वैद्यक चिकित्सा उनका व्यवसाय था। अतः उनकी अपने पौत्र को स्वानुरूप देखने की प्रबल अकांक्षा थी।

कवि का विधार्थी जीवन –

काव्यकार की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। माँ ने सत्संस्कार घुटी में ही मानो दिये हों। तत्पश्चात् कवि ने अपने पिता की अनुमति से संस्कृत विधिवत् अध्ययन करने हेतु श्री सद्धिद्यालय, बालीगंज मल्लावां, जिला हरदोई उत्तर प्रदेश में प्रवेश ले लिया। उन दिनों यह संस्कृत विद्यालय क्षेत्र में संस्कृत शिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना जाता था तथापि उसके आचार्य श्री शम्भु रत्न शुक्ल संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इस प्रकार पितामह के सत्प्रेरणा, आर्शीवाद और गुरू के सम्पर्क से महाकवि का अध्ययन सुचारू रूप से चलना लगा। लेकिन दुर्भाग्य से इसी बीच कवि पण्डित श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी पितामह पण्डित कालिका प्रसाद त्रिपाठी का निधन हो गया। फलस्वरूप कुछ समय के लिये उनके अध्ययन में बाधा उत्पन्न हो गई।

इस आत्मीय आघात को दृढ़ता से सहन करके कवि अपनी शिक्षा–दिक्षा को आगे बढ़ाता हुआ संस्कृत विषय में उत्तरोत्तर ज्ञान प्राप्ति के लिये दुगुने उत्साह से जुट गया। इस महाकवि ने न सिर्फ संस्कृत साहित्य का ही अध्ययन किया अपितु आर्युवेद और ज्योतिष जैसे कठिन विषयों का भी सफलता पूर्वक अध्ययन किया। काव्यकार की प्रतिभा तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनके सहपाठियों तथा आचार्यों ने उनकी मुक्ति कण्ठ से प्रशंसा से। उनके विधार्थी जीवन को पूर्णता: राजकीय संस्कृत कॉलेज से प्राप्त हुई। ध्यान रहे यही राजकीय संस्कृत कॉलेज कालान्तर में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय काशी के नाम से प्रसिद्ध हुआ जो वर्तमान में श्री सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय जिला वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध है। कालान्तर में कवि ने अपने विधार्थी जीवन को विराम इलाहाबाद के पैडागागिस्ट इन्स्टीट्यूट से दिया।

काव्यकार का पारिवारिक जीवन –

काव्यकार पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी का शिक्षा–दिक्षा के बाद भारतीय परम्परा अनुसार विवाह सम्पन्न हुआ और उन्होंने गृहस्थी जीवन में प्रवेश किया। उनका पारिवारिक जीवन सुखमय बीता। उनके दो विवाह सम्पन्न हुए थे। प्रथम विवाह विधार्थी जीवन के दौरान 16 वर्ष की आयु में और द्वितीय विवाह 24 वर्ष की आयु में प्रथम पत्नी श्रीमती शिवरानी की मृत्यु के बाद हुआ था।

प्रथम पत्नी शिवरानी से उन्हें एक पुत्र श्रीमान् शिवाधर त्रिपाठी की प्राप्ति हुई जो व्यापार वाणिज्य में संलग्न रहे। द्वितीय पत्नी श्रीमती हरप्यारी से सात पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। उनमें से बड़े पुत्र डॉ. शिव सागर त्रिपाठी जी हैं जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत होकर सम्प्रति जनता कॉलोनी जयपुर में रहते हुए संस्कृत साहित्य सेवा में संलग्न है। दूसरे पुत्र श्री शिव प्रसाद त्रिपाठी हरदोई जिले के सण्डिला नामक नगर में ही सर्वमंगल चिकित्सालय में आयुर्वेद आचार्य हैं। तीसरे पुत्र श्री शिव शर्मा त्रिपाठी राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अन्तर्गत कार्यरत हैं। चौथे पुत्र राजस्थान वन सेवा में कार्यरत हैं। पांचवे पुत्र श्री सरोज कुमार त्रिपाठी स्वतन्त्र व्यापार में संलग्न है। छठवें पुत्र श्री दिनेश कुमार त्रिपाठी भी राजस्थान वन विभाग में कार्यरत हैं। सातवें पुत्र भूमि विकास बैंक में कार्यरत हैं। बड़ी पुत्री शकुन्तला ने विवाह नहीं किया तथा वह गान्धी ज्ञान मन्दिर बापू नगर जयपुर में प्राध्यापिका रही हैं। द्वितीय पुत्री शैलजा उन्नाव उत्तर प्रदेश वांगरमऊ नामक कस्बे के सुभाष इन्टरकॉलेज के अध्यापक श्री शम्भु नाथ पाण्डे जी की धर्म पत्नी हैं। तृतीय पुत्री सुधा का विवाह बरेली के मूकबधिर विधालय के प्रधानाचार्य श्री राम किशोर शुक्ल जी के साथ सम्पन्न हुआ था।

काव्यकार की आर्थिक स्थिति –

विद्याव्यसनी काव्यकार श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी का जीवन निर्धनता के कारण

अभावग्रस्त ही रहा, तथापि इस संस्कृत सेवक ने कभी धन संचय की ओर विशष ध्यान भी नहीं दिया। फलस्वरूप अर्थाभाव में पुत्र–पुत्रियों का व्यक्तित्व स्वावलम्बी बन गया। तथापि पुत्र–पुत्रियों ने अपने अध्ययन, अध्यवसाय के माध्यम से ही सबकुछ अर्जित किया। कवि ने तो अभाव में ही संतोष करके अपना जीवन यापन किया।

काव्यकार का कर्म क्षेत्र–

शिक्षा पूर्णोपरान्त काव्यकार ने देशबन्धु औषधालय की स्थापना करके चिकित्सा क्षेत्र को अपनी आरम्भिक कर्म भूमि बनाया। आयुर्वेद चिकित्सक के रूप में क्षेत्र में प्रख्यात होने के बावजूद भी आप में संस्कृत के प्रचार–प्रसार के लिये हार्दिक उद्विग्नता रहती थी। तद्नुरूप अपनी हार्दिक बलवति इच्छा पूर्ति हेतु अपने स्थापित चिकित्सक कर्म को छोड़ कर आप हरदोई जनपत के ही भगवन्त नगर स्थान पर नवस्थापित आंग्लविद्यालय में संस्कृत के प्रधान शिक्षक के रूप में अध्यापन कार्य करने लगे। वर्तमान में यह आंग्लविद्यालय वी.एन. इन्टर कॉलेज के रूप में जाना जाता है। अंग्रेजी विद्यालय के माध्यम से आप संस्कृत भाषा तथा साहित्य के व्यापक प्रचार–प्रसार में संलग्न हो गए। प्राचीन गुरूकुलों के समान आपका निवास ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय भी संस्कृत विधार्थियों से भर जाया करता था। जहां छात्र निःशुल्क शिक्षा के साथ–ही–साथ पुत्रवत स्नेह, संरक्षण एवं उत्साह वर्धन प्राप्त करते थे। आपकी अध्यापन शैली अत्यन्त सरल एवं सहज होने से दुरूह विषय भी सहज बोधगम्य हो जाते थे। पल्लवग्राही पाण्डित्य के आप घोर विरोधी थे। सामाजिक योगदानों में विशिष्ट स्थान बनाये रखने वाली अनेक स्वानाम संस्थाओं की स्थापना करने के साथ ही साथ विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से आप सम्बन्धित रहे।

अध्यात्म, योग एवं तंत्र जैसे गहन विषयों में भी आपकी अप्रतिम प्रतिभा होने के कारण विविध विषयक समाधानों हेतु लोग आपके पास आते ही रहते थे। गान्धी शताब्दी वर्ष 1969 में उन्होंने लेखन कार्य आरम्भ किया। काव्याकार पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी ने संस्कृत तथा हिन्दी में अनेक प्रस्फुटित लेख, निबन्ध कविताएं तथा एकांकी नाटकों की सृजना की। जो कि जयपुर से प्रकाशित भारतीय नामक संस्कृत पत्रिका तथा बाजीगंज विद्यालया से प्रकाशित सुधा नामक पत्रिका में संग्रहित है। उन्होंने संस्कृत कविताओं का संग्रह "काव्य संग्रह" माध्यमिक कक्षाओं के लिये सुर साहित्य सरोवर हिन्दी एवं संस्कृत निबन्धों को संग्रह "निबन्ध संग्रह" एवं आत्माकथा हिन्दी में लिखी है, तथापि निचली कक्षोपयोगी पाठावली सरल संस्कृत में निबद्ध की है। एक हरिजन बालक द्वारा महात्मा गान्धी के उपवास के तोड़ने से सम्बन्धित एक घटना के आधार पर संस्कृत भाषा में एक लघु एंकाकी लिखा है। परन्तु इनमें से किसी भी कृति का अभी प्रकाशन नहीं हुआ है, इसके अतिरिक्त कविवर पण्डित त्रिपाठी जी ने धार्मिक एवं कर्मकाण्ड सम्बन्धी पुस्तकों का भी लेखन किया है। इसके अतिरिक्त आपकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना श्री गान्धीगौरवम् महाकाव्य राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के प्रति उनके हृदय में जो भावनाएं हैं उन्हें व्यक्त करता है।

काव्यकार की दिनचर्या एवं व्यक्तित्व –

पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी का व्यक्तित्व सहज सरल एवं आर्कषक होने के कारण उनके सानिध्य में भले ही निराश से निराश व्यक्ति भी आता तो उसमें नवस्फूर्ति का संचार होने लगता था। दीर्घकाल तक संस्कृत के अध्यापन एवं प्रचार में कियात्मक योगदान देने के कारण सम्पूर्ण क्षेत्र में आपको गुरूजी के नाम से लोग जानते थे। उच्च पद पर प्रतिष्ठित आपके शिष्य गण पूज्य गुरूजी के गौरव का स्मरण करते हैं। शिक्षण काल में कठोरता एवं कोमलता के अप्रतिम व्यक्तित्व का प्रकटीकरण आप करते रहे हैं। शिक्षण अनुशासन में कठोरता एवं छात्रों के प्रति उनके दैनिक जीवन में सहानुभूतपूर्ण कोमलता में एक सफल शिक्षक होन के साथ ही साथ छात्रों की आन्तरिक अनुभूति को भी आप अनुप्राणित करते रहे हैं। छात्र "सदैव आपमें" माता सदृश स्नेह अनुभव करते रहे हैं। कविवर की दिनचर्या प्रातः चार बजे प्रारम्भ हो जाती थी और रात्रि 8:30 बजे तक विधार्थियों की विविध समस्याओं का समाधान चलता रहता था। उन्हें प्रातः भ्रमण करने का व्यसन जैसा था। नित्य प्रति कई किलोमीटर पैदल घूमते थे। कभी–कभी निकटस्थ तीर्थ स्थानों का भी भ्रमण किया करते थे। सम्भवतः उनकी धर्म परायणता, ज्योतिष तथा वैधक में रूचि एवं आध्यात्मिक अभिरूचि उन्हें नैसर्गिक प्राकृतिक, सौन्दर्य से परिपूर्ण, शान्तिदायक पवित्र स्थानों में भ्रमण करने के लिये अभिप्रेरित करती रहती थी। वह सच्चे ज्ञानी और संवेदनशील सन्त तुल्य थे। जहां भी जाते थे प्रेम की बेल व आस्था का दीपक चमकृत करते थे।

संस्कृत साहित्य प्रकाण्ड विद्वान् और आयुर्वेद ज्योतिष धर्म एवं व्याकरण में अग्रणी श्री त्रिपाठी जी में अहंकार नाम मात्र को भी नहीं था। उनकी बुद्धि विवेक से और हृदय वात्सल्य प्रेम से विभुषित था। परोपकार उनकी आदत बन चुका था।

काव्यकार का कृतित्व –

साहित्य सेवा में निरन्तर लेखनी संचालन कविवर ने हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में अनेक प्रौढ़ रचनायें प्रदान करके संस्कृत क्षेत्र को आपने एक अभूतपूर्व दिशा देने के प्रयत्न में सदैव तत्पर रहे हैं। अन्य भाषा भाषी लोक प्रचलित शब्दों को संस्कृतिकरण या व्युत्पत्ति प्रदर्शन द्वारा ज्यों का त्यों आत्मसात कर लेना चाहते थे। आपका ऐसे शब्दों का संकलित शब्द कोष बनाने का प्रयास असफल रहा। ऐसे कुछ शब्दों का संकलन देखकर जयपुर के हास्य कवि "श्री हरिशास्त्री दाधीचि" ने अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से प्रभावित कविवर ने संस्कृत सेवार्थ सकिय राजनीति में भाग नहीं लिया। गान्धी जी के प्रति हार्दिक श्रद्धा एवं गहन अनुरक्ति होने के कारण आप उन्हें युग पुरूष एवं महामानव मानते थे, इस आत्मप्रेरणा के फलस्वरूप ही आपने अष्ट सर्गात्मक महाकाव्य "गान्धी गौरवम्" महाकाव्य की रचना की जो महापुरुष, युगदृष्टा गान्धीजी के परम पावन चरित एवं उनके जीवन की सांघर्षिक घटनाओं से ओत–प्रोत है। आपके इस महाकाव्य के साहित्यिक वैशिष्ठ्य एवं युवाओं के

प्रति इसकी नैतिक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर ने एम.ए. उत्तरार्द्ध संस्कृत के पाठ्यक्रम में इसे कई वर्षों तक स्थान दिया।

काव्यकार का महाप्रयाण –

ऐसे बहुमुखी व्यक्तित्व एवं प्रतिभा सम्पन्न समाज, संस्कृति एवं संस्कृत की विकासोन्मुख आशाओं पर तुषारापात करते हुए पण्डित श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी 27 जून 1972, तद्नुसार आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा सम्वत् 2029 को स्वस्थ एवं प्रसन्नावस्था में श्रीमद्देवी भागवत् का पारायण करते हुए गोलोकवासी हो गये। पैतृक थाती संस्कृत के प्रचार–प्रसार में आपका परिवार आज भी निरन्तर सक्रिय है। आपकी सचेतन भावना को दृष्टिगत कर शास्त्राकारों की निम्न उक्ति सत्य है।

"जयन्ति ते सुकृतिनोरससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।"

श्रीगान्धिगौरवम् काव्य की साहित्यिक समालोचना –

पण्डित श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी प्रणीत "गान्धिगौरवम्" महाकाव्य गान्धी जी के चिरत्र पर आधृत श्रेष्ठ ग्रन्थ है। प्रकृत महाकाव्य की रचना गान्धीजी द्वारा हस्तलिखित "आत्मकथा" एवं अन्य अन्यान्य गान्धी साहित्यों के आधार पर की गयी है। कवि श्रेष्ठ की सृजनात्मक प्रतिभा के फलस्वरूप ही गान्धी चरितात्मक अधुनातन संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों में उनकी कृति "गान्धी गौरवम्" का अपना विशिष्ट स्थान है। महाकाव्य के सम्पादक श्री शिव सागर त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर है। प्रकाशन संस्था "मातृ शरणम् ए, 64 जनता कॉलोनी, जयपुर–302004 है। सन् 1974–75 का उत्तर प्रदश सरकार द्वारा प्रदेय राज्य साहित्यिक पुरस्कार" प्रकृत काव्य को प्रदान किया गया है। महाकाव्य का समीक्ष्य द्वितीय संस्करण सन् 1977 में मुद्रित हुआ है। वर्ण विषय युग पुरूष श्री मोहन दास करमचन्द गान्धी जी का सांघर्षिक जीवन चरित है। प्रस्तुत काव्य में महाकाव्य के लक्षण स्पष्ट विद्यमान हैं। जिनके विषय में बहुत चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु महाकाव्य की संगति के लिये जिन तत्वों की अनिवार्यता होती है उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

महाकाव्य का शुभारम्भ –

प्रस्तुत काव्य का प्रारम्भ शास्त्रीय परम्परा अनुसार गुरूवन्दना और तत्पश्चात् बागदेवी सरस्वती की वन्दना के रूप में मंगलाचरण से ही हुआ है –

"आदौ स्मरामि गुरुपादरजांसि चित्ते,
स्थित्वा पुरः स्वकरकम्पिततप्तभागेः।
उष्णं विधाय बहुशीतसमृद्धिशीतम्,
ध्यायेऽङ्घ्रियुग्ममहमत्र हृदि स्वकीये।।"

"प्रणम्य भारती देवीं, शम्भुरत्नं स्वकं गुरूम्,
देववाणी समाश्रित्य, लिख्यते गान्धिगौरवम्।।"
(श्री गान्धि गौरवम्, 1/1–2)

सज्जन प्रशंसा एवं खलनिन्दा –

महाकाव्यों में प्रायः सज्जन एवं उदात्त महापुरूषों की प्रशंसा की जाती है एवं खल एवं दुष्टजनों की निन्दा की जाती है। इस काव्य में भी तत्कालीक शासक वर्ग गर्वनर जनरल बिलंगटन, लार्ड कर्जन के दम्भपूर्ण व्यवहार की कटु आलोचना की गई है और सुपरटेन्डेन्ट अलेकजेन्डर तथा उनकी पत्नी के साथ–साथ पण्डित मदन मोहन मालवी, फिरोज शाह मेहता, गोविन्द वल्लभ पंथ, आत्म ज्ञानी राजचन्द्र, पोलक तथा महात्मा गान्धी जैसे महान् लोगों के कृत कार्यों की प्रशंसा एवं उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के उदात्त पक्षों का चित्रण करने के लोभ को भी कभी नहीं रोक पाया है। बिना किसी जाति, वेष के वह देश का उद्वार करने के लिये भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस संस्था के संस्थापक ए.ओ.ह्यूम के प्रति आभार भी व्यक्त करते हैं तथापि भारत विभाजन के पक्षधर मोहम्मद अली जिन्ना एवं गान्धीजी के हत्यारे नाथूराम गोड़से की निन्दा करते हैं।

काव्य का नामकरण एवं कथानक –

महाकाव्य का नाम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के नायक महात्मा गान्धी के नाम के आधार पर ही रखा गया है जो सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर अग्रिम सर्ग में गठित घटनाओं का संकेत दिया गया है। प्रत्येक सर्ग को विषय और घटनाओं को स्पष्ट करने वाले अनेक उपशीर्षकों में विभक्त कर दिया गया है। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग को ही गुरुवन्दना, गान्धी के जन्म, बाल्यकाल आदि से सम्बन्धित घटनाओं को बदनममंगलमबाध्यम् इसी प्रकार विवाह और ज्ञान प्राप्ति के लिये विवाहपठनन्तथा, उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु विलायत गतः सोऽयं नाम से वर्गीकृत किया गया है। इस प्रकार महाकाव्य के वर्ण विषय को अधिक रोचक एवं प्रस्तुतीकरण सरल बनाया गया है। महाकाव्य का सम्पूर्ण कथानक आठ सर्गों में विभक्त है। सर्गात्मक दृष्टिकोण से काव्य का कथानक निम्न प्रकार से है –

प्रथम सर्ग –

इस सर्ग में श्री गान्धी जी के प्रारम्भिक जीवन का वर्णन कविवर श्री गोविन्द जी त्रिपाठी ने किया है। जन्म स्थली गुजरात प्रदेश का "पोबन्दर" नामक नगर, वंशमोडवंशीय वैश्य समाज, पितामह उत्तम चन्द्र एवं पिता कर्मचन्द का वर्णन है। 2 अक्टूबर 1869 में श्री मोहनदास करमचंद्र गान्धी का जन्म, शिक्षा, माताज्ञा से अध्ययनार्थ विदेश गमन, इंग्लैण्डवास में जीवन की पूर्ण सात्विकता, अंग्रेजों द्वारा अपमानित भारतीयों को देखकर

उत्पन्न उद्विग्नता, लन्दन से मेट्रीकुलेशन उत्तीर्णतः सः लैटिन एवं फ्रेंच आदि भाषाओं का अध्ययन, कानून–परीक्षा उत्तीर्णोपरान्त अध्ययनानुभव से भारत सम्मान रक्षा, पोर्ट स्मिथ स्थिति एक बस्ती में संगत में जाना एवं एक दुश्चरित्रा स्त्री से अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करना एवं 12 जून सन् 1891 ई. को बैरिस्टर की उपाधि धारण कर भारत वापस लौटना आदि घटनायें वर्णित हैं।

द्वितीय सर्ग –

इस सर्ग में "एडविन आर्नाल्ड" अनूदित "गीता" और "बुद्धचरित" से गान्धी जी का प्रभावित होना, शतावधानी कवि राजवन्द्र के सम्पर्क में आकर उनका भक्त हो जाना एवं स्वामी मुलानन्द जी से प्रभावित होना वर्णित है। एक अंग्रेज अधिकारी से अपमानित होकर राजकोट जाकर वकालत करना करीमे नाम मित्र के आग्रह पर अफ्रीका जाना, अफ्रीका में एक अधिकारी द्वारा कहने से पगड़ी एवं माता द्वारा प्रदत्त कण्डी कान उतारना, अफ्रीका प्रवास में रंगभेद नीति का अध्ययन, ट्रान्सबाल तथा अरिज नगरों से भारतीयों को हटाये जाने पर गान्धी जी को कष्ट तथा दक्षिण अफ्रीका में भातरीयों की दशा सुधारना, संघर्ष कोष की स्थापना एवं अधिकारों हेतु प्रार्थना पत्र की प्रतियों का वितरण, दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों द्वारा गान्धी जी को ही अपना बैरिस्टर मानना, नेटाल कांग्रेस की स्थापना, बालसुन्दरम्, भारतीय को उसके अंग्रेज स्वामी से छुड़ाना, गोरों द्वारा भारतीों के निष्कासन हेतु अधिक कर भार लगाना एवं आन्दोलन द्वारा कर हटवाना तथा गान्धी जी की स्वदेश वापसी वर्णित है। काव्य में गान्धी का धर्म शास्त्राध्यन "हरी पुस्तिका में अफ्रीका वृत लेखन" भारत हितैषिणी महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती में सम्मिलित होकर उनकी प्रशंसा, राजकोट में फिरोजशाह, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, श्री रामकृष्ण भण्डारकर से भेंट, नेटाल से तार प्राप्त होने पर पुनः नेटाल गमन वर्णित है।

तृतीय सर्ग –

गान्धीजी की जलयान द्वारा नेटाल यात्रा, ईश्वर प्रार्थना द्वारा, भयंकर तुफान आने पर रक्षा, गान्धीजी को "छूत" के रोग के बहाने से अंग्रेजों द्वारा "डरबन" में ही रोक देना, एक अंग्रेज मित्र की सहायता से पैदल जा रहे गान्धीजी पर अंग्रेज बालकों द्वारा ढेलों का प्रहार एवं कार्यवाही के दौरान उन्हें क्षमा करना, वकालत छोड़कर समाजसेवी होना, पूर्ण ब्रम्हचर्य व्रत धारण करने पर छः वर्षों तक फल खाना, स्वयं वस्त्र धोना एवं बाल काटना, अंग्रेज बर्बर युद्ध में घायल व्यक्तियों की सेवा करना, नेटाल सेवा के पश्चात् भारत लोटने एवं वहां की जनता द्वारा उन्हें हीरे जवाहरात भेंट करना तथा पत्नी की इच्छा के विपरीत सम्पूर्ण धनराशि नेटाल कांग्रेस कोष में जमा करना आदि वर्णित है। तत्पश्चात् भारत में रहकर कांग्रेस की दशा को सुधारना, गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा देश को शीघ्र स्वतन्त्र कराने की मन्त्रणा हेतु उन्हें अपने घर ले जाना, बहन निवेदिता से साक्षात्कार, लार्ड कर्जन द्वारा आयोजित सभा में राज्यहरण के भय से उपस्थित भारतीय राजाओं की उपस्थिति देखकर गान्धीजी का दुखी होना, कलकत्ता यात्रान्तर

काली मन्दिर में पशु हिंसा देखकर दुखी हुए कानून द्वारा इसे रोकने के प्रयास, कार्शा, आगरा, जयपुर, राजकोट, बम्बई आदि की यात्रा, अपने पुत्र मणि लाल के अस्वस्थ हो जाने पर डॉक्टरों की सलाह पर ही उसे अण्डे, मुर्गे एवं सोरवा देने की अनुमति ने देना एवं "कटि स्नान" की प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उसे स्वास्थ्य लाभ करना एवं तार आने पर पुनः दक्षिण अफ्रीका चले जाने का सरस काव्यात्मक वर्णन किया गया है।

चतुर्थ सर्ग –

गान्धीजी का पुनः डरबन पहुंचना "चैम्बरलैन" से शिष्टमण्डल सहित साक्षात्कार किन्तु उनकी बात न मानना, "रोची" नामक एक मित्र के सहयोग से "ट्रान्सबॉल" में ही मकान लेकर वकालत की इच्छा से निवास एवं पेशे में यशोपार्जन मुनिवृत्ति से फलासन करते हुए निवास अपने जीवन बीमा को भी बन्द कना, जनता की सेवा, हरिजनों और मुसलमानों की बस्ती में जाकर सफाई कार्य करना उनकी दिनचर्या बन जाने का वर्णन किया गया है। गान्धी पर "रस्किन" कृत "सर्वोदय" (अपटू दिस लास्ट) नामक ग्रन्थ का प्रभाव। डरबन में फीनिक्स नामक आश्रम की स्थापना एवं उसमें रहकर कार्य करना वर्णित है। कुछ समयोपरान्ता भारत वापसी एवं पूना में गोखले जी से भेंट, कुम्भ मेला हरिद्वार एवं लक्ष्मणझूला सपरिवार जाना, वहां पर झूले के हिलने पर वहीं से आन्दोलन के प्रचार–प्रसार करने का वर्णन है।

पंचम सर्ग –

गुरू चरणें की वन्दना से प्रारम्भ इस सर्ग में गान्धी जी द्वारा समस्त जातियों को एकत्र कर सत्याग्रह प्रारम्भ करना, 25 शिष्यों सहित 25 मई 1915 ई. को काठियावाड़ में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना एवं "इदा" नामक हरिजन "मेहतर" को रखना, चम्पारन के किसानों की कठिनाईयों को दूर करना, जे.बी. कृपलानी आदि मित्रों सहित किसानों की समस्याएं सुनकर किसान विरोधी नील सम्बन्धी कानून तुड़वाकर मालिकों की अभद्रता के कारण मजदूरों को हड़ताल की आज्ञा देकर स्वयं अनशन करना, यूरोपीय प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीय रगरूटों की भर्ती का समर्थन, रौलट एक्ट का विरोध, हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल, 6 अप्रैल 1921 को स्वतन्त्रता प्राप्ति का संकल्प लेना, स्वामी श्रद्धानन्द का जामा मस्जिद दिल्ली पर ओजस्वी भाषण, "सर्वोदय" एवं स्वराज्य नामक पत्रिकाओं का वितरण करके प्राप्त मूल्य के सुराज्य कोष में जमा करना, पंजाब में शासकीय दमन नीति का समाचार प्राप्त होने पर पंजाब जाना, एवं मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय एवं अब्बास तय्यब के साथ समिति गठित करके जलियां वाले काण्ड की दमनात्मक नीति की रिपोर्ट लिखकर अंग्रेजों की धृष्टता का पता चलना, श्री मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन, जलियावाला काण्ड के स्मारकार्थ एवं 5 लाख का चन्दा इकठ्ठा करके कांग्रेस का गति देना, चरखे से बुनी खादी निर्माण, छात्रों द्वारा आन्दोलन के समर्थन में पढ़ाई एवं सरकारी नौकरी छोड़ना आदि वर्णित है। "अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए", "हमें पूर्ण स्वराज प्राप्त करना है" आदि शब्दों के साथ गान्धी सहित अन्य नेताओं का स्वराज्य प्राप्ति हेतु संकल्प वर्णित है।

षष्ठ सर्ग –

सन् 1930 में कांग्रेस के अनेक प्रतिनिधियों के होने पर नमक आन्दोलन का प्रारम्भ, वायसराय के विपरीत आचरण के कारण गान्धी जी द्वारा सत्याग्रह की घोषणा, गान्धी जी के दर्शनार्थ अपार जनसमूह का उमड़ पड़ना, "मेरे बन्दी हो जाने पर भी आप धैर्य रखें, जिधर हम चलें ऊधर धरती कंपा दे आदि ऐसी घोषणाएं, दण्डी नगर से नमक लूट की आज्ञा, नमक कर समाप्त कराने हेतु दृढ़ संकल्प, प्राध्यापक, स्नातक एवं युवतियों को इस महान् यज्ञ में आहुति के अर्थ आह्वाहन भड़ौच, मुहम्मदपुर, उतर प्रदेश, बिहार आदि की दरिद्रता का दर्शन करते हुए, गान्धी जी का ताजी, कराडी एवं पुनः दण्डी पहुचंना, समुंद्र में स्नान कर हे भगवान्। उच्चारण के साथ ही नमक हाथ में लेकर नमक कानून को तोड़ने, अंग्रेज शासकों का दमन चक्र अनेक भारतीय सेनानियों को नमक कानून को तोड़ने के अपराध में बन्दी बनाना, अब्बास तैय्यब, कस्तूरबा एवं सरोजनी नायडू द्वारा सत्याग्रही जत्थों का नेतृत्व, स्वराज्य प्राप्ति हेतु उत्साहित सेनानियों को दृष्टिगत करके वायसराय लार्ड इरविन द्वारा सत्याग्रहियों को रिहा करना एवं गोलमेज परिषद् का वर्णन है।

सप्तम् सर्ग –

लन्दन के गोलमेज सम्मेलन में गान्धीजी का भाग लेने एवं उसमें कांग्रेस की प्रशंसा करना, परिषद् द्वारा भारत की उपेक्षा के कारण गान्धी जी द्वारा बहिष्कार, अंग्रेजों द्वारा हरिजनों के पृथक निर्वाचन के प्रस्ताव का गान्धीजी द्वारा घोर विरोध, नेहरू जी एवं अब्दुल गफ्फार खां के बम्बई पहुंचने पर जेल में सुनकर युद्ध की धमकी एवं सोते हुए गान्धी जी एक अधिकारी द्वारा गिरफ्तारी, हरिजन पार्थक्य की अंग्रेजी नीति से दुखी होकर आम्र वृक्ष के नीचे अनशन करना, चतुर्वर्ण पृथक् निर्वाचन की प्रथा को समाप्त कराना, सेवाग्राम निवास, आंशिक शासन प्राप्ति पर श्री नेहरू जी द्वारा कुशल संचालन, गान्धीजी द्वारा काशी, पूना, अहमदाबाद में विद्यापीठों की स्थापना, "अंग्रेजों भारत छोड़ो" का आह्वन, कस्तूरबा का देहावसान एवं गान्धी जी के वर्धा आश्रम में निवास का वर्णन है।

अष्टम सर्ग –

महाकाव्य के अन्तिम एवं अष्टम सर्ग में बिहार एवं बंगाल में हुए हिन्दु–मुस्लिम संघर्ष एवं गान्धी जी का उन्हें शान्त कराना, जिन्ना की नीति का विरोध करने के साथ ही साथ पाकिस्तान की पृथकता का वचन, 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान जिन्ना को सौंप कर स्वराज्य की घोषणा, हिंसक व्याघ्र रूप नाथूराम गोंडसे द्वारा उनकी हत्या, नेहरू, पटेल, पन्त आदि का विलाप, गान्धी जी के अस्थि कलश का त्रिवेधी में विसर्जन एवं गान्धी जी की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन है।

अस्तु, आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रणीत महाकाव्य में गान्धी जी के सांगोपांग जीवन चरित की मन्दाकिनी का वर्णन किया गया है।

नायक एवं प्रतिनायक –

पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी के इस महाकाव्य में नायक तो निःसन्देह महात्मा गान्धी हैं। वह धीरोदात्त एवं विचारपूर्णकार्य करने वाले हैं। वह महात्मा उपाधि से विभूषित सत्य अहिंसा के पुजारी, सेवा परायण, आत्म सपर्मण, त्याग तपस्या, समानता की भावना से अनुप्राणित विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता, दृढ़ सकंल्पी, संस्कृति संरक्षक, सफल बैरिष्टर आदि अनेक उदात्त मानवीय गुणों से अभिमण्डित हैं। वह सत्य अहिंसा सत्याग्रह के बल पर ब्रिटिश शासन पर विजय प्राप्त करते हैं। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रताड़ित किये जाने पर भी अपने कार्यक्रमों में डटे रहते हैं तथापि उत्तरोत्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर अग्रसर हो जाते हैं। साथ ही व्यक्ति विशेष महात्मा गान्धी के प्रतिपक्षी अथवा खलनायक के रूप में कोई चित्रित नहीं है। वह न तो अंग्रेज ब्रिटिश शासन के विरोधी हैं, उन्हें तो केवल उनकी दुष्ट बुद्धि एवं घृणास्पद दुराचरण से आपत्ति है। वह भारतीय जनमुक्ति चाहते हैं। इस तरह अंग्रेज शासक वर्ग को प्रतिनायक माना जा सकता है।

रस निष्पत्ति –

युग पुरूष महात्मा गान्धी के शान्त एवं अहिंसक जीवन पर आधृत यह महाकाव्य प्रमुखतः शान्त रस से ओत–प्रोत है। महाकाव्य में यत्र–तत्र करूण, भयानक एवं वीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति हुयी है। कवि की प्रतिभा का स्फुरण शान्त एवं करूण रस के प्रयोग में हुआ है। शान्त रस की अभिव्यंजना विदेशी मित्रों द्वारा गान्धी जी को ईसाई बनने की प्रेरणा देने पर उनके उत्तर से होती है –

"ईशोस्तु पुत्रो यदि तारणे क्षमः।
हरेस्तु सर्वे वयमेव सूनवः।।
विचार्य चित्ते कथितैव गान्धिना।
स्वान्तर्निनादः क्रियतेमया सदा।।" (2/51)

बिहार में हिन्दू–मुस्लिम विद्रोह के समय पहुंचकर दोनों धर्मों में एक्य भावना स्थापना हेतु शान्त भाव से वेद सम्मत शिक्षा ग्रहण करने एवं भेदभाव दूर करने का आग्रह शान्त रस की अमन्द धारा प्रवाहित करता है उनके आग्रह पर उभयपक्षीय लोग परस्पर द्वेष त्यागने का संकल्प लेते हैं।

"एको हि रामौ च मुहम्मदौ वा,
द्वावैव नित्यम् हृदि संजयामः।
परस्परं भेदकरा न मान्याः,
गृहणन्तु शिक्षां श्रुतिसम्मताताम्।।" (8/22)

महाराज जनक के वास्तव्य बिहार को तो वे अशान्ति निषिद्ध स्थान घोषित कर शान्तिधाम मानते थे यहां शान्त रस ऐसा प्रतीत होता है। मानो स्वयं मूर्तिमान हो गया है –

"अय विहारो जनकस्य राज्ञः,
सतीहदेहै विदितोविदोहः।
अग्रापि हिसा यदि जागृतास्ति,
कुत्रापि तिष्ठेत्किमु शान्तिराया।।" (8/30)

इस प्रकार काव्य शान्त रस प्रधान है। प्राणत्यागती कस्तूरबा के मुख से निःसृत वचन एवं उनका विछोह सभी को शोकभिभूत कर देने वाला है। इस श्लोक में करूण रस की अभिव्यंजना हुयी है –

"याग्यो लोकस्तत्र यास्यन्ति सर्वे,
शोको मोहो नवकार्यं भवद्भिः।
हे! हे! बापू! निर्गतष्वक्षरेषु,
प्राणास्तस्या ब्रह्मशक्तेर्विलीनाः।" (7/47)

शोक को अर्न्तभूत करके गान्धी जी द्वारा वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते समय सम्पूर्ण जनसमूह शोकभिभूत हो जाता है। शोक से धैर्यवान गान्धी जी भी द्रवित हो जाते हैं। नावाखाली (नोआखाली) स्थान पर मुसलमानों द्वारा मारे गये स्तनन्धम शिशुओं की दशा पर करूण रस की अभिव्यंजना व्यक्त होती है।

"स्तनन्धया जघ्नुरनै कशश्चतै,
पलायितास्त्यक्तधनाममहाजनाः।
सनातन स्वीयमत विहायते,
कुराण पाठ निरतानिरागसः।।" (8/5)

गान्धीजी की मृत्यु पर सम्पूर्ण संसार शोकाभिभूत हो गया है –

"सता पिता राष्ट्रपिता जात्याः,
विमानमारूह्य दिवगतो भूत।
"जवाहरो" वल्लभ, पन्तयुक्तो,
वक्षोविनिघन्श्च भृशं रुरोद।।" (8/52)

अन्य श्लोक में भी करूण इस दृष्ट्व्य हैं –

"निकटे मृत कौर वल्लभौ,
हितकृत पन्तमहोदयोपि सः।
जनता हृदि शोकवारिधौ,
ज्वरधारा वहित स्म सर्वतः।।"

(गा. गौ. 8/54)

गान्धीजी की मृत्यु पर जनमानस के ह्रदय रूपी शोकसागर ज्वार ऐसे उठ रहे थे। अत्यन्त कारुणिक दृश्य था। वीभत्स एवं भयानक रस भी कुछ स्थलों पर मिलने से कविवर के रस पक्ष को पूर्णतः सफल करता है। कवि के अनुसार बिहार जैसे शान्त प्रदेश में साम्प्रदायिक दंगो के कारण युद्ध चण्डी के द्वारा हिन्दू मुस्लिमों के बीच हाथ में कपाल धारण कर नृत्य करने लगना –

"विहारिणा तत्सुखदं विहार,
मुच्छेदुकामा रणचण्डिका सा।
ननर्त जात्यो नभयोस्तु मध्ये,
हस्तेगृहीत्वा ललितं कपालम्।।"

(गा.गौ. 8/17)

दिल्ली के लोग अत्यन्त भयानक रूप से हथियारों से सुसज्जित होकर प्रमुख मार्गों में उस समय करने लगे जब उन्हें पेशावर में हिन्दुओं के नृसंहार की सूचना मिली। जिसका सजीव और सरस वर्णन प्रस्तुत पद्य में किया गया है –

"श्रुत्वा जनास्ता रुरुदुश्च दिल्या,
सस्फूर्जयन्तो निजहस्तपादान्।
तदैवमेला बहुमार्ग याताः,
शस्त्रास्त्रसज्जा च जयाय घोरम्।।"

(गा.गौ. 8/38)

एवं

"प्रग्यत्र धर्मस्य सुतो युधिष्ठिरो,
जिगाय नीत्या रणचण्डकौरवान्।
तत्रैव चण्डी रणकौशलेरना,
बभर पात्रं जनतास्थिशोर्णितः।।"

(गा.गौ. 8/40)

वीभत्स रस की अभिव्यक्त गान्धीजी द्वारा देखे गए विद्रोह स्थलों पर क्षत–विक्षत पशु–पक्षी, जलते हुए मकान, हाथ–पैरों और मस्तकों को नौंचते लुड़काते हुए तथा मांस खाते हुए गिद्ध तथा श्रृंगाल वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ –

"कुत्रापि हस्तान् वितताश्च पादान्,
शिरांसि ग्रघैः परिलुण्ठितानि।
गोमायुमिर्भक्षितमांसकानि,
ददर्श चागानि शमी महात्मा।।"

(गा.गौ. 8/13)

गान्धीजी के शान्त एवं गम्भीर व्यक्तित्व सम्पन्न होने के कारण रसराज श्रृंगार कुछ स्थलों पर ही उभर सका है तथापि पूर्ण अभिव्यक्त होने में समर्थ नहीं हो सका है। इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य की रस योजना सफल रही है जो कि सर्वथा प्रशंसनीय एवं आस्वादनीय है।

अलंकार –

कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य में उपमा, श्लेश, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त रूपक, स्वाभावोक्ति, विशेषोक्ति, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों का संक्षिप्त

किन्तु सुन्दर प्रयोग किया है। महाकाव्य के द्वितीय सर्ग के श्लोक संख्या 1, 3, 8, 81 तथा तृतीय सर्ग के 1, 2, प्रथम सर्ग के श्लोक संख्या 4, 25, 26, 44, सर्ग संख्या पांच में 140, सर्ग संख्या सप्तम में 17, 46, सर्ग संख्या अष्टम में 39 उपरोक्त अलंकार प्रयोग हुए हैं।

कुछ उदाहरण बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं । अनुप्रास अलंकार का निम्न उदाहरण उल्लेखनीय है –

"गृहीत्वैनं गतौ गेह श्वेतं हस्तिस्वरूपणिम्।
वेलावत्य व वन्वाह मेने स्वहृदये तदा।।"

(गा.गौ. 2/28)

अनुप्रास अलंकार की अलौकिक छटा अनेक स्थलों पर बिखरी पड़ी है। पुनरुक्ति अलंकार का प्रयोग काव्य में निम्न स्थल पर प्रयुक्त है –

"इद छन्दः कवेरास्ये नितरा शोभते हृदि।
त्राव त्राव स्वयं गान्धिस्तस्य भक्तो वभूव ह।।"

(गा.गौ. 2/14)

यहाँ "त्राव" शब्द का पुनः प्रयोग मुक्तानन्द स्वामी के सुनाये गये छन्द की और भी अधिक मनोज्ञता को पुष्ट करता है। पुनरुक्ति अन्यत्र भी प्रयुक्त है। अर्थालंकारों के प्रयोग में कवि निष्णात् है। उपमायें इतनी सार्थक हैं कि अनायास ही किसी भी वस्तु या स्थान की तुलना पाठक को हृदयंगम हो जाती है। महात्मा गान्धी द्वारा शूद्रों के पार्थक्य को अंग्रेजों के सूचना पत्रक में पढ़कर उनका हृदय अश्वत्थ पत्र की भांति प्रकम्पित हो गया–

"गौरस्य सूचना पत्रेघीत मन्त्यजभजनम्।
चकम्प हृदयन्तस्य यथाश्वत्थस्य पत्रकम्।।"

(गा.गौ. 7/16)

कम्पन की बेमिसाल उपमा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती। उत्प्रेक्षा के प्रयोग से विषय वस्तु और भी अधिक चमत्कारिक बन गयी है। उदाहरणार्थ –

"प्रबलबलसमेतो मातरिश्वा चचाल,
जलकलकलशब्दा वारिधौ सम्बभूवुः।
गहनगत मनुष्यान् कम्पयामास चैत्थं,
क्षिपति पवनमूर्तिः प्रेतभूतो ह्यरातिः।।"

(गा.गौ. 3/1)

काव्य में अन्यत्र भी उचित स्थानों पर उत्प्रेक्षाएं सुन्दर ढंग से योजित हैं। अर्थान्तरन्यास अलंकार का विधान सूक्तिपरक होने के कारण काव्य सौन्दर्य एवं भावबोध में वृद्धि करता है। उदाहरणार्थ –

"छात्रस्य गान्धेरियमेव वांछा,
सिद्वा स्वयं सा भगवत्कृपातः।
भविष्णुवृक्षस्य तु पर्णपूतः,
सुचिव्कणः स्यान्नपि कापि शंका।।"

(गा.गौ. 1/20)

अर्थान्तरन्यास अलंकार महाकाव्य में 2/38, 70 तथा 7/6 में भी विषय का स्पष्ट करता हुआ काव्य सौन्दर्य की श्री वृद्धि करता है। दृष्टान्त अलंकार भी यत्र तत्र अपना चमत्कार प्रदर्शित करता दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ –

"यथा स्वदेशे स्वपचादिजात्यै,
स्वर्णवस्तो नहि वस्तुमाक्ष।
तथैव हिन्दूयवनादि जातेः,
दूरे निवासः परिकल्पितस्तेः।।"

अर्थात् विवेच्य महाकाव्य में कवि का अलंकारों के प्रति विशेष रूचि न हाने पर भी अलंकार विधान प्रशंसनीय एवं सराहनीय है।

छन्दोयोजना –

प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने सभी प्रमुख छन्दों का प्रयोग किया है। छन्द प्रयोगों में शास्त्रीय नियमों का पालन किया गया है। काव्य में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वंशस्थ, बसंततिलका, विद्युत माला, वियोगिनी, शशिवदना, शार्दूल विक्रीडितम्, शालिनी, शिखरिणी, स्रग्धरा तथा स्वागता आदि छन्दों का प्रयोग सफलतापूवक किया गया है।

महाकाव्य के सर्गानुसार छन्दों का प्रयोग इस प्रकार है। प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्दों के प्रयोग का उदाहरण निम्न है। यथा –

"आवोस्मरामि गुरुपादरजांसि चित्तै,
स्थित्वा पुरः स्वकरकम्पिततप्तमार्गः।।"

एवं अनुष्टुप छन्द का प्रयोग निम्न में है –

"प्राणम्य भारती देवीं शम्भुरत्न स्वकं गुरुम्।" आदि

"श्रीगुर्जरे पोरयुत्तेथ बन्धे नाम्न सुदाम्नः सुहृदश्च पुर्याम् में "उपजाति" एवं "सम्प्राप्य नन्दनमयी बुधसत्यनिष्ठो" आदि में बसन्ततिलका छन्दों का योजना है।"

"तत्रैव चासीदश प्रीतिभोजो" में इन्द्रवज्रा एवं सर्गान्त में मालिनी छन्द प्रयुक्त हुये हैं।

द्वितीय सर्ग में –

कविवर ने इन्द्रवज्रा 2/8, अनुष्टुप 2/4, मालिनी 2/23 तथा बसन्ततिलका 2/54 छन्दों के अतिरिक्त "गतोजजीवारे बहुदिन कृते वासकरणे" 2/25 में शिखरिणी, "ज्ञान तत्र च गान्धिना ब्रिटिश–जाच्छीराजदूतात्तदा" 2/41 में "शार्दूलविक्रीडितम्", "इशायीभवैस्तवम्" 2/50–51 में इन्द्रवज्रा प्रयुक्त किये हैं। "तस्य स्वामी गुरुण्डः शपथदल हमन्यगौरस्य नाम्नि" 2/63 में स्रग्धराछन्द "यदाच्युदग्रहिस्वामि हस्तेसवद्वस्तदा गान्धिन वरुदन्नाजगाम" 2/65 में भुजगंप्रयात, "नेटाले य सकल नियमान् धर्मशास्त्रे निमग्नान्" 2/70 में मन्दाक्रान्ता एवं "अफ्रीकाताप्याव्रजन् गान्धिवर्यः, पोते भाषा तामिली यावनीच" 2/63 में शालिनी छन्द का आयोजन कलात्मक ढंग से किया गया है।

तृतीय सर्ग में –

मालिनी, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, अनुष्टुप, शिखरिणी, शालिनी, उपेन्द्रवज्रा, बसंततिलका, भुजगप्रयात, शार्दूलविक्रीडितम्, दीपक आदि छन्दों का यथोचित प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ दीपक छन्द दृष्टव्य है –

"परिमिति गान्धी वचनमसोऽवा,
पुनरपि योध्यं कृतमतिरासीत्।।"

इत्यादि (गा.गौ. 3/82)

चतुर्थ सर्ग में –

उपरोक्त छन्दों के अतिरिक्त द्रुतविलम्बित, स्रग्धरा, शशिवदना, वियोगिनी तथा मन्दाक्रान्ता छन्दों का प्रभूत प्रयोग हुआ है।

पंचम, षष्ठ एवं सप्तम सर्ग में –

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त "स्वागता" छन्द का भी प्रयोग हुआ है। षष्ठ एवं सप्तम सर्ग में अनुष्टुप एवं सर्गान्त में स्रग्धरा प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुआ है।

अष्टम सर्ग में –

अन्य छन्दों के अतिरिक्त कस्तूरबा के वियोग के समय कवि द्वारा प्रयुक्त "वियोगिनी" छन्द प्रसंगानुकूल बन पड़ा है। अर्थात् कवि की छन्दों योजना प्रसंगानुकूल एवं छन्द शास्त्रीय नियमों के अनुरूप है। विविध छन्दों के प्रयोग से महाकाव्य रूचिकर एवं पठनीय हो गया है। छन्दों योजना में कवि की सफलता दृष्टिगोचर होती है।

सन्धि संगठन –

अफ्रीका में गौरान्गो द्वारा सताये गए भारतीयों की दुर्दमनीय दशा में सुधार करने के लिये वहां जाना मुख सन्धि का उदाहरण है। महाकाव्य के 2/39 में इसे देखा जा सकता है। गान्धीजी द्वारा भारत देश की रक्षा के लिये साबरमती आश्रम की स्थापना के द्वारा कृषक समुदाय को तिनकठिया से प्रथा से मुक्ति दिलाने के कारण फल प्राप्ति के प्रति कुछ आशा बनती है। किन्तु रॉलेट एक्ट के लागू हो जाने से निश्चित फल प्राप्ति असम्भव प्रतीत होती है। अतः यहां पर प्रति मुख सन्धि कही जा सकती है।

अन्ततः भारत विभाजन के साथ स्वतन्त्रता की प्राप्ति होना निर्वहण सन्धि का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त कवि ने गर्भ विमर्श आदि सन्धियों का प्रयोग भी यथास्थान किया है।

भाषा शैली –

प्रस्तुत महाकाव्य में काव्यकार पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी की भाषा शैली सहज सरल सर्वथा बोधगम्य, प्रसाद गुणमयी, ललित पदावली से युक्त व्याकरण नियमबद्ध, मंजू व सामासिक है। भाषा में नूतन, उर्दू के प्रचलित शब्द एवं नाम, अंग्रेजी के शब्द एवं नाम यथावत एवं परवर्तित रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अतः कवि ने संस्कृत भाषा

को जन प्रिय बनाने के साथ–साथ प्रसारित एवं प्रचारित करने के उद्देश्य से क्लिष्ट सन्धियों एवं समस्त पदों को प्रश्रय नहीं दिया है। भाषा में परम्परागत संस्कृत साहित्यकारों से हटकर उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का कथा क्रमानुसार प्रयोग सर्वथा अभिनव प्रयोग है।

संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के अनुसार काव्य में प्रसाद गुण है, भाषा इसकी प्रांजल एवं मनोहर है। कविवर द्वारा लिखित निम्न श्लोक में भाषा की सरलता द्रष्टव्य है –

"हे राम ! हे कृष्ण ! हरे ! मुरारे !
हे अल्ल ! हे देवि ! खुदा ! पुरारे ।
हे गाड़ ! ईशो ! शिवदेव ! अर्हन,
कृपाकटाक्ष मयिधेयि धामन्।।"

(गा. गौ. 3/4)

लार्ड कर्जन की सभा में राज सत्ता लोलुप भारतीय राजाओं के वर्णन में भी भाषा की प्राजंलता दर्शनीय है –

"कौशेय शाटक वृता घृत नारिवेशाः,
मुक्ताप्रवालमयहीरकहारधारा।
उष्णीशलम्बिता चमत्कृत्मौलिमाला,
केयूरककणसुशोभितबाहुदेशाः।।"

अन्य भाषाओं के शब्द प्रयोग करने में काव्यकार को संकोच नहीं है। उर्दू, अंग्रेजी एवं हिन्दी के शब्दों का यथावत प्रयोग संस्कृत भाषा में समाविष्ट सा प्रतीत होता है –

"हाजीगृहेऽभून्महती सभेका।।" (गा.गौ. 2/53)
"तस्यास्ति मित्रं सतु "रुस्तमो" यो।।" (गा.गौ. 2/64)

उर्दू का संस्कृतीकरण करके उर्दू शब्दों का प्रयोग दर्शनीय है –

"यौत्स्यामहे दृश्यमनेन सार्थम्।। " (गा.गौ. 6/24)
"श्चुकोप चितेऽपसरं जगाद।।" (गा.गौ. 7/13)

हिन्दी शब्दों के तद्भव रूपों में भी काव्य में यत्र तत्र दर्शन होते हैं। अछूत के लिए "अक्षुप" पंजाब के लिए "पंचाम्बु" शब्द का प्रयोग कितना समीचीन है। उदाहरणार्थ –

"अक्षुपे इति नाम्ना योहि जातो चतुर्थयाम्।" (गा.गौ. 8/78)
"पंचाम्बुमध्येदमनीयनीतिः।" (गा.गौ. 5/114)

अंग्रेजी के यथावत एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है –

"अलेक्जेण्डरनाम्नी धवलमुखेलादी परिचित।" (गा.गौ. 3/9)
"दिल्लीश्वरो लादमहोदयानाम्।" (गा.गौ. 6/5)

बैरिस्टर, तुफान, जज, कलेक्टर, अखबार, चम्पारन, डॉक्टर, दीवान, मूंगफली, स्टेशन, हड़ताल आदि उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी शब्दों के साथ–साथ इनका संस्कृतिकरण करके क्रमशः वाचिस्तर, तूर्णफाणः, यत्रः, कलत्वरः, चम्पारण्यम्, द्राक्तरः, श्रीमान्, मूमिफली,

स्येटशनम्, हरिताल के रूप में प्रयोग किया है। संस्कृत के एक प्रमुख विद्वान् श्री लक्ष्मीनाथ जोशी ने संस्कृतीकरण की इस कला पर मुग्ध होकर निम्न शब्दों में कवि की प्रशंसा की है – "काव्य में उर्दू एवं अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों एवं नामों का यथावत् विभिन्न छन्दों में सफलता के साथ समावेश किया गया है। उनकी व्युत्पत्ति संस्कृत धातुओं एवं शब्दों से करने का भी सफलता के साथ प्रयास किया गया है, जो व्याकरण के विद्वानों के कठिन विनोद का हेतु हैं।" कहीं–कहीं शब्दों का संस्कृतीकरण कवि के पाण्डित्य को व्यक्त करता है, तथापि काव्य में स्वाभाविकता की वृद्धि होती है–

"कथयति जनवर्गो राजनीतौ न धर्मो,
भ्रमपतितमनुष्या नैव जानन्ति धर्मम्।
जनहितलग्ना गान्धिन राजनीतौ,
तमिह सपदित स्या सत्यपूजा चकर्ष।।"

(गा.गौ. 8/71)

इस प्रकार काव्यकार ने संस्कृत भाषा के सरल स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिससे संस्कृत के सामान्य पाठकों को कठिनता का सामना न करना पड़े। दीर्घ समासों से भी कवि ने स्वयं को बचाकर लोक प्रचलित देशी–विदेशी पदों को ही यथासम्भव प्रयोग किया है। काव्य में संस्कृतिकृत शब्दों का चयन करना कवि का मुख्य उद्देश्य प्रतीत नहीं होता अपितु उन जिज्ञासु अध्येताओं के दिल और मस्तिष्क को गान्धी दर्शन को अनुभूति करने के लिये तैयार करना है। अन्य भाषाओं के जन सामान्य में प्रचलित शब्दों को आवश्यकता अनुरूप संस्कृत व्याकरण से परिमार्जित कर लेने में कवि पूर्ण दक्ष दिखाई पड़ा है। भाषा की सुन्दरता में वृद्धि भी प्रचलित मुहावरों का संस्कृत स्वरूप प्रयोग करने से परिलक्षित होती है। आशय यह है कि भाषा शैली की दृष्टि से भी प्रस्तुत महाकाव्य का भाषा वैज्ञानिक महत्व भी प्रतिपादित होता है।

प्रकृति चित्रण –

गान्धिगौरवम् महाकाव्य का प्रकृति चित्रण परम वैशिष्ट्य पूर्ण हैं। जिस पर पूर्ववर्ती महाकवियों की प्रतिछाया परिलक्षित होती है। यह प्रकृति चित्रण प्रायः मानवीकृत अथवा सचेतन रूप में तो कहीं आलम्बन और उद्दीपन रूप में दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य में गंगा यमुना संगम का स्वाभाविक चित्रण अत्यन्त मनोरम है। इस चित्रण में महाकवि कालिदास के रघुवंश त्रयोदश सर्ग का गंगा यमुना संगम दृश्य पाठकों को स्मरण होने लगता है। यद्यपि गान्धिगौरवम् चरितचित्रण प्रधान महाकाव्य है किन्तु अनेक स्थलों पर स्वाभाविक प्रकृति चित्रण करते हुए पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी ने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। यहां गंगा यमुना संगम का स्वाभाविक चित्रण दृष्टव्य है। यथा –

"दृष्टा गंगा श्वेतवर्णा वहन्ती,
कालिन्दी च श्यामवर्णा मिलन्ती।

अन्तारूपा शरदेषा तृतीया,
जातास्त्वेयं संगमोऽय त्रिवेण्याः।।"

(गा.गौ. 2/74)

अर्थात् श्वेतवर्णा गंगा श्यामवर्णा यमुना तथा अर्न्तलीन सरस्वती का संगम स्थल कितना पावन एवं सुखद है। उच्च शिखर से नीचे गिरती हुई एवं तीर्थ स्थलों के पण्डों को स्वर्णराशि प्रदान करती हुई, पतित पावनी गंगा सभी को पवित्र करती है। महाकवि का यह विचार अत्यन्त सहृदय सवेंद्य प्रतीत होता है –

"उच्चात् स्रवन्ती जननी तु गंगा,
सर्वान् पुनाना निज सेवकेभ्यः।
पाण्डाभ्य देशस्य विशेषपुण्यः,
प्रादापयत् सा कलधौतराशीन्।।"

(गा.गौ. 4/101)

इसी प्रकार अन्तरिक्ष के अनेक गृह नक्षत्रों का एवं आकाश में वायु के स्वाभाविक प्रवाह का कवि ने हृदायग्राही चित्रण इस पद्य में प्रस्तुत किया है। यथा –

"इत्थं समादिश्य सहिन्दुसिक्तान्,
षष्ठे दिने सो कृतपारणोभूत्।
शान्तेन धर्मेण रराज सूर्यो,
ववौ च लोके त्रिविधः समीरः।।"

(गा.गौ. 8/47)

अर्थात् उपर्युक्त पद्य के आलोक में सूर्य का आकाश में आलोकित होना एवं त्रिविध समीर का प्रवाहित होना और संगम के पावन परिवेश की अनुभूति वस्तुतः सहृदय संवेद्य है। इस प्रकार महाकवि शिव गोविन्द त्रिपाठी इस महाकाव्य में प्रकृतिचित्रण प्रस्तुत करने में अत्यन्त प्रवीण परिलक्षित होते हैं।

सूक्तियों का प्रयोग –

महाकवि शिव गोविन्द त्रिपाठी ने लोक जीवन के विभिन्न पक्षों के स्वाभाविक अनुभवों के आधार पर जनसामान्य में प्रचलित अवधारणाओं के अनुसार अनेक सूक्तियां भी इस महाकाव्य में वर्ण विषय के साथ अर्थान्तर न्यास अलंकार के माध्यम से प्रस्तुत किए हैं। जिनसे वर्ण्य विषय की गम्भीरता में असाधारण वृद्धि पायी जाती है। यहां कतिपय उल्लेखनीय सूक्तियां प्रस्तुत की जा रहीं हैं, जिनसे रचनाकार का विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रकट होता है। यथा –

"भविष्यवृक्षस्य तु पर्णपुन्जः सुचिक्वणः स्यान्न हि कापि शंका"

(गा.गौ. 1/27)

"सत्यवादी सदा सुखी।" (गा.गौ. 2/66,

"ग्राह्या सुविधा लघुतोऽपि नीतिः।" (गा.गौ. 1/25)

"पर शुभेकर्मणि विघ्नरेखा आयान्त्यवश्यं प्रकृति : पुराणी।" (गा.गौ. 6/2)

"कृत्यशोध्यकारको नैवशोध्यः।" (गा.गौ. 4/18)

समीक्षा –

विवेच्य महाकाव्य का भाव पक्ष एवं कला पक्ष विशेषताओं का अद्भुत मणिकांचन संयोग परिलक्षित होता है। वर्तमान युग के निर्माण में कोटि–कोटि जनों को अग्रसर करने वाले महात्मा गान्धी अग्रेसरों में भी अग्रेसर हैं। जिन महात्मा गान्धी ने सत्य अहिंसा और सत्याग्रह की सुन्दर त्रिधारा प्रवाहित की। जिस त्रिधारा से, जिन महात्मा गान्धी से स्वातन्त्र्य संग्राम, सामाजिक क्रान्ति, एकता और राष्ट्रीय चेतना, महारत्न, धर्म, शिक्षा, राजनीति और व्यावहारिक आर्थिक चिन्तन प्रकिया जैसे मौलिक अमूल्य सच्चे मोती उत्पन्न हुये और जिस सन्ततुल्य गान्धी ने वर्तमान को अतीत से सम्बद्ध कर भविष्योन्मुख भारत को भव्यतम बनाया, उन्हीं पुण्यात्मा गान्धी के जीवन के समस्त कियाकलापों का चित्रण इस अष्टसर्गीय महाकाव्य "श्रीगान्धिगौरवम्" में सरल सत्भाव भूषित संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं।

महाकवि का महात्मा गान्धी के जीवन एवं व्यक्तित्व और कृतित्व के सुमधुर प्रेरणादायक सन्दर्भों में जीवन सन्देश अन्वेषित करने का प्रयास और चरित नायक पर लेखनी उठानी से पूर्व शिक्षया शास्त्राभ्यास सिद्धान्त को अपने काव्य श्रीगन्धिगौरवम् में यह कवि ने यह कहकर ठीक ही स्वीकार किया है कि –

आलोक्यात्मकथां शुभां लिखितां गान्धिनस्ततः।
अन्यच्च गान्धिसाहित्यं लिख्यते गान्धिगौरवम्।।

(गा.गौ. 1/3)

इसी कम में अपने काव्य के पाठ की चर्चा चलाते हुए रचनाकार ने यह सत्य ही कहा है कि –

"पठन्तो भारतीयास्तु तपस्यन्ते गौरवम् स्वकम्।
महद्भ्यो लभ्यते ज्ञानं श्रेयोऽनुकरणं मतम्।।"

(गा.गौ. 1/4)

इस प्रकार अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यों में गान्धिगौरवम् महाकाव्य अपने उत्कृष्ट काव्य सौष्ठव, वर्णना निपुणता, प्रकृति चित्रण, छन्दोलंकार योजना, रस निष्पत्ति आदि विभिन्न विशेषताओं के कारण राष्ट्रवादी रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका आद्योपान्त अनुसंधानात्मक, अनुशीलन अवश्य करना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

श्री निवास ताड़पत्रीकर एवं 'गान्धिगीता' का साहित्यिक मूल्यांकन

चतुर्थ अध्याय
श्री निवास ताड़पत्रीकर एवं 'गान्धिगीता' का साहित्यिक मूल्यांकन

संस्कृत साहित्य में महाभारत के अन्तर्गत भीष्म पर्व में श्रीमद्भगवत् गीता एक अप्रतिम कोटि की दार्शनिक काव्य रचना है। जिसका विश्व भर में व्यापक प्रभाव लोक जीवन पर पड़ा है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के रचनाकार भी इससे पर्याप्त प्रभावित हुये हैं और इसकी रचना शैली, भाव भाषा एवं वर्ण विषय को ग्रहण करते हुए गीता काव्य की रचना करने में प्रवृत्त हुये हैं। इस दृष्टि से पण्डिता क्षमाराव की सत्याग्रह गीता और उत्तर सत्याग्रह गीता जैसी कृतियां उल्लेखनीय हैं।

श्रीनिवास ताड़पत्रीकर द्वारा विरचित 'गान्धी गीता' भी पूववर्ती गीता काव्यों की अनुच्छाया का श्रेष्ठ निदर्शन है। यहां इस रचना का साहित्यिक मूल्यांकन रचनाकार के जीवन परिचय के साथ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीनिवास ताडपत्रीकर तथा गान्धी गीता –

पुना के भण्डार कर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के महाभारत अनुभाग के अध्यक्ष श्री निवास ताडपत्रीकर संस्कृत साहित्य के सम्वर्धकों में सर्वश्रेष्ठ है। आप दक्षिणात्य महाकवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आपने महाभारत के मूल वैशिष्ट्य को आत्मसात् करते हुए श्रीमद्भगवत् गीता के अनुहरण पर गान्धी गीता जैसी उत्तम कृति की रचना की जिसका अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।
कवि का अपनी कृति के सन्दर्भ में यह कथन वास्तव में उनकी कवि चेतना का सत्य परिचय देता है – "आशासे च स्वतन्त्रेऽस्मिन् भारतवर्षे सर्वभाषाणां मातृभूतेयं गीर्वाणीवाग् चिरादेव सर्वैरपि भारतीयैः परमादरेण नियतं सेव्यमाना सर्वत्र चिरकालमग्रेसर पदमनुभूयं नवनवोन्मेषशालिनां विविधग्रन्थानां च निर्माणाय राष्ट्रधुरीणान्प्रज्ञावतः सततं प्रेरयेदिति।"

महाभारत अनुसन्धान विधायक श्री निवास ताडपत्रीकर ने गान्धी गीता महाकाव्य को 1932 ई. में ही पूर्ण कर लिया था लेकिन उस समय उसमें केवल 18 अध्याय ही थे। सन् 1940 ई. में ओरियण्टल बुक एजेन्सी से इसका प्रकाशन भी हो गया। लेकिन 1948 में महात्मा गान्धी का स्वर्गवास हो जाने पर दादा साहब का सुझाव मानकर उसमें छः अध्याय और जोड़ दिये। इस प्रकार काव्यकार ने गायत्री मंत्र के अक्षरों की भांति ही 24 अध्याय में काव्य का समापन किया तथापि सन् 1949 ई. में पुनः प्रकाशित गान्धी गीता में 24 अध्याय तथा 500 श्लोक हैं। उन्होंने प्रस्तुत महाकाव्य को देश भक्तों के नाम अर्पित करते हुए गान्धी गीता महाकाव्य के समर्पण में लिखा है –

"सर्वेभ्यो राष्ट्रभक्तेभ्यो मया गीतेयमर्प्यते।
प्रीयतां च सदा तेन महात्मा परलोकगः।।"

(श्री निवास ताड़पत्रीकर गान्धी गीता समर्पण से उद्धृत)

महाकवि का कार्य क्षेत्र पूना ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट रहा था। जहां वे आजीवन अपनी रचना धर्मिता का निर्वाह करते हुए निरन्तर संस्कृत काव्यों के प्रणयन में तल्लीन रहे।

महाकवि का देहावसान –

गान्धी गीता के काव्यकार तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ इस कवि का देहान्त सन् 1954 ई. में हुआ था।

गान्धी गीता का नामकरण एवं कथानक –

प्रस्तुत महाकाव्य में भारत की मूक्ति के संदर्भ में भारतवासियों को उपदेशात्मक शैली में गान्धी जी द्वारा प्रेरणा दी गई है। उनके समक्ष राष्ट्रीय नेताओं के बलिदान तथा अंग्रेज शासन वर्ग के अत्याचारों को सहन न करने और अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा प्रभावी रूप में दी गई है। जिस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश श्रीमद्भगवद् गीता में दिया था, वैसे ही उपदेशात्मक शैली का अनुसरण करने के कारण महाकाव्यकार श्री निवास ताड़पत्रीकर ने इस महाकाव्य का नाम गान्धी गीता रखा है। जो सर्वथा सटीक प्रतीत होता है। इतना ही नहीं उन्होंने प्रत्येक अध्याय का नामकरण उसकी कथावस्तु के आधार पर रखा है। उदाहरणार्थ प्रथम अध्याय में नमक कर लगाया जाना तथापि उससे दुखी होकर गान्धीजी का उस कर को तोड़ने के लिये तैयार हो जाने का वर्णन किया गया है। अतः इस अध्याय का नाम "भारतीय विषादयोग" रखा गया है। द्वितीय अध्याय का नाम पारतन्त्र योग रखा गया है। क्योंकि इस अध्याय में पराधीनता से उत्पन्न दोशों पर प्रकाश डाला गया है। इसी तरह में 23वें व 24वें अध्याय में क्रमशः का गान्धीजी का स्वर्गवास तथा राष्ट्र कल्याण की कामना की गई है। अतः इनके नाम क्रमशः "आपद्योग और सर्वमंगलयोग" रखे गए हैं।

इस प्रकार महाकवि द्वारा अपनाई गई नामकरण योजना सर्वथा समीचीन प्रतीत होती है।

गान्धी गीता का कथानक स्वतन्त्रता संग्राम पर आधारित है। इसमें गान्धीजी द्वारा किए गए दाण्डी मार्च से लेकर उनके जीवन पर्यन्त की घटनाओं का विवरण है। परतन्त्रता के क्या–क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। इसका विश्लेषण करते हुए शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये किये जाने वाले प्रयासों की विवेचना की गई है। अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत महाकाव्य का कथानक महात्मा गान्धी के राजनैतिक विचारों पर आधारित है। सम्पूर्ण महाकाव्य के कथानक को अध्यायानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है –

प्रथम अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "विषादयोग" रखा गया है। महात्मा गान्धी ने भारतभूमि को परतन्त्रता से मुक्त करवाने की इच्छा से तत्कालीन शासक वर्ग द्वारा निर्मित नमक कानून के विरोध के लिए समस्त भारतीयों का आह्वान किया और नमक निर्माण के लिए डॉडी मार्च का आयोजन किया। उनके कुछ साथी शस्त्र–विहीन होकर किये जाने वाले युद्ध की सफलता पर सन्देह करते हैं किन्तु गान्धी पूर्णरूपेण आश्वस्त हैं कि निःशस्त्र होकर किये युद्ध में सफलता अवश्यम्भावी है।

द्वितीय अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "पारतन्त्रयोग" रखा गया है। उनका कहना है कि हमारे लिए परतन्त्रता अभिशाप है। अतः उससे मुक्ति पाने के लिए हमें अपने प्राणों की आहुति देने को भी तत्पर रहना चाहिए, देशद्रोह नहीं करना चाहिए। इसके साथ उन्होंने देशवासियों से उत्साह भरने का भी प्रयास किया।

तृतीय अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "पुरावृत्तयोग" रखा गया है। उन्होंने प्रेम एवं सेवा भाव को राष्ट्रधर्म बताते हुए राष्ट्र के प्रति आदर भाव जागरित करने का प्रयास किया और राष्ट्रोद्धार हेतु भ्रातृत्व भाव का संचार भी किया।

चतुर्थ अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "गुणत्रयविभागयोग" रखा गया है। उन्होंने कार्य को प्रकृति के आधार पर सतोगुण, तमोगुण एवं रजोगुण आदि तीन भागों में विभक्त करके सतोगुण की प्रधानता पर बल देते हुए निष्काम कर्म करने पर बल दिया।

पंचम अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "ऐक्ययोग" रखा गया है। सतोगुण पर आश्रित मनुष्यों के संगठन पर तमोगुण एवं रजोगुण युक्त सैनिक बल भी विजय प्राप्त नहीं कर सकता है।

षष्ठ अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "राजतन्त्रयोग" रखा गया है। ब्रिटिश साम्राज्य के दुश्शासन के परिणाम स्वरूप भारतीय प्रजा को महती हानि हुई।

सप्तम अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "बहिष्कारयोग" रखा गया है। महात्मा गान्धी ने अंग्रेज सरकार के साथ असहयोग करने एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार हेतु समस्त भारतीयों का आह्वान किया।

अष्टम अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "अनुकरणयोग" रखा गया है। गान्धी जी का कहना है कि अंग्रेजी शासन के साथ हम अपनी वेष भूषा और भाषा के विषय में भी सचेत नहीं रहते है। हम अपनी संस्कृति को भूलकर उन्हीं की संस्कृति के अनुसार जवीन या।पन करते हुए सुख का अनुभव रते हैं और आपस मे भेदभाव रखते हैं। अगर हम अपने देश

की उन्नति चाहते हैं तो भेदभाव को भूलकर एकजुट होकर कार्य करना चाहिए और जहां तक हो सके अपनी संस्कृति के अनुसार ही जवीन यापन करना चाहिए।

नवम अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "सेवाधर्मयोग" रखा गया है। हमें अपने परिवार, बन्धु–बान्धवों और राष्ट्र की सेवा करनी चाहिए। ऐसा कार्य कदापि नहीं करना चाहिए जो कि राष्ट्र विरोधी हो।

दशम अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "राष्ट्रधर्मयोग" रखा गया है। साथ ही हमें राष्ट्र धर्म का पालन करना चाहिए। आज जितने भी राष्ट्र उन्नति के उच्च शिखर पर हैं वह राष्ट्र धर्म के बल पर ही। समस्त वर्ण के लोगों को समान मानना चाहिए, व्यक्तिगत स्वार्थ का परित्याग कर देना चाहिए और शत्रुपक्ष को सलाह देने वाले राष्ट्र रिपु को ही समाप्त कर देना चाहिए तभी हमें परतन्त्रता से मुक्ति मिल सकती है और स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो सकती है।

एकादश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "स्वराज्ययोग" रखा गया है। अंग्रेज भारत में व्यापार करने के लिए आए थे, किन्तु भारतीयों के आपसी कलह का लाभ उठाकर उन पर शासन करने लगे। फलतः भारतीयों के लिए उनके शासन में रहना अतीव कष्टप्रद होने लगा। उनके शासन से छुटकारा दिलवाने के लिए और राष्ट्र के कल्याण को दृष्टिपथ पर रखते हुए ह्यूम नामक राजपुरूष के साथ मिलकर भारतीय नेताओं ने समिति का गठन किया। विवेकानन्द जैसे महान् नेता ने एकता, राष्ट्रीय भावना और धर्म के प्रति लोगों में आस्था जताई।

द्वादश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "ईश्वराधिष्ठानयोग" रखा गया है। गान्धी जी का विचार था कि सभी धर्मों के लोग ईश्वर के प्रति समान रूप से श्रद्धा रखते हैं भले ही उनके नाम पृथक्–पृथक् हों।

अतः सब धर्मों का समान रूप से आद करते हुए अपने धर्म के प्रति आस्था रखते हुए ईश्वर के द्वारा प्रेरित कार्य को स्वयं को उसका निमित्त मानते हुए प्रसन्नता पूर्वक करना चाहिए क्योंकि उसकी अनुकम्पा से ही कार्य सम्पनन होता है। साथ ही उनका कहना था कि स्व धर्म का पालन करते हुए राष्ट्र धर्म का पालन भी करना चाहिए। ईश्वर अधिष्ठान लोक कल्याण के लिए होना चाहिए। उसमें भेद करने से अनवस्था हो सकती हैं परधर्म के प्रति असहिष्णु नहीं होना चाहिए। सुख शान्ति की कामना हो तो द्रोह से बचना चाहिए और अपना एवं दूसरों का कल्याण करने के लिए ईश्वर के प्रति श्रद्धा बनाए रखनी चाहिए।

त्रयोदश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "लोकसंग्रहयोग" रखा गया है। जो अपने सुख की

परवाह नहीं करता है, जिसे न तो धनार्जन की चिन्ता है और जो केवल राष्ट्र एवं प्रजा के हित में ही संलग्न रहता है, परोपकार में ही प्रसन्नता का अनुभव करता है वह निश्चय ही स्तुत्य है।

चतुर्दश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "विभूतियोग" रखा गया है। महात्मा गान्धी का कहना है कि परतन्त्रता के कारण भारत की जो वैभवशालिता नष्ट प्राय हो गई थी उसे पुनर्जागरित करने के लिए महान् कवि रवीन्द्रनाथ एवं प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश आदि तन मन से प्रयत्नशील हैं। उनके सत्यप्रयास से ही राष्ट्र में सुख का वास होगा, शास्त्र एवं कला का विकास होगा और समस्त प्रजा उन्नत होगी। अतः वह सभी नेतृ वर्ग प्रशंसा के पात्र हैं जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से देश को अपनी सेवा प्रदान की हैं।

पंचदश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "पुरूषोत्तमयोग" रखा गया है। महान् पुरुष फल की प्राप्ति होने तक अपना कार्य जारी रखते हैं और इसके लिए किसी से सहायता की अपेक्षा नहीं रखते हैं। वह सदैव दूसरों के उपकारार्थ कार्य करते हैं। निश्चय ही ऐसे पुरुष ईश्वर के पूर्णांश से ही निर्मित होते हैं।

षोडश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "देवासुरसम्पद्भागयोग" रखा गया है। राष्ट्र के हित के लिए कर्म फल के प्रति अनासक्ति होनी चाहिए। उसका कल्याण तभी होगा जबकि हम मृत्यु, क्लेश, निन्दा, राजदण्ड आदि के भय से मुक्त होकर स्थिर बुद्धि से कार्य करेंगे। क्षमा, शान्ति और द्रोह न करने से सुख समृद्धि प्राप्त होती है। परोपकार में रत रहने वाला अपनी चिन्ता नहीं करता है। वह केवल दैवीय वृत्ति में ही प्रवृत्त होता है जिससे मातृभूमि का कल्याण हो।

सप्तदश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "मातृदर्शनयोग" रखा गया है। स्वयं भारतमाता ने मानव रूप में उपस्थित होकर भारतभूमि के दासता की जंजीरों मे जकड़े होने पर खेद प्रकट किया है। आशा की है कि लोकमान्य तिलक, लाजपतराय, बिपिन चन्द्र पाल आदि के प्रयासों से भारतीयों की विजय होगी और भारत देश परतन्त्रता की जंजीरों से अवश्य ही मुक्त हो जायेगा।

अष्टदश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "मात्रादेशयोग" रखा गया है। भारतमाता स्वार्थ सिद्ध में तत्पर भारतीयों की कटु आलोचना करते हुए उन्हें राष्ट्रकल्याण के लिए गान्धी के मार्ग का अनुकरण करने की प्रेरणा देती है। जिससे प्रेरित होकर वह अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी तैयार हो जाता है।

नवदश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "मुस्लिमाभिरोधयोग" रखा गया है। अंग्रेज शासक

भारतीयों के आपसी कलह को देखकर विचार करता है कि महात्मा गान्धी का प्रयास निष्फल हो जायेगा और हम ही चिरकाल तक भारतीयों पर शासन करेंगे।

विंश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "बन्धनयोग" रखा गया है। द्वितीय युद्ध के पश्चात् महात्मा गान्धी भारत छोड़ो आन्दोलन के सन्दर्भ में करेंगे या मरेंगे का नारा लगाते हुए बन्दी बना लिए गये। इतना होना ही पर्याप्त नहीं था। कारागृह में रहते हुए उनकी सहगामिनी की मृत्यु हो गई जिससे वह व्यथित हो गए।

एकविंश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "मुस्लिमाभियोग" रखा गया है। कारागृह से मुक्त होकर वह पुनः राष्ट्र कार्य में प्रवृत्त हो गए लेकिन जिन्ना गान्धी जी से सहमत नहीं थे वह मुसलमानों का हित पाकिस्तान बनाने में ही समझते थे। इसी भावना से हिन्दू–मुस्लिम झगड़े होने लगें और वेवल के स्थान पर माउण्टबेटन वायसराय का पद संभालने के लिए भारत आए।

द्वाविंश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "राष्ट्रखण्डनयोग" रखा गया है। भारतीय नेताओं के काफी प्रयत्न के बावजूद जिन्ना के दुराग्रह एवं अंग्रेजों की फूट डालो शासन करो की नीति के दुष्परिणाम स्वरूप भारत अनेक टुकड़ों में विभक्त हो गया। यह अतीव दुख का विषय है।

त्रयोविंश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "आपद्योग" रखा गया है। भारत विभाजन के सिलसिले में साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। साम्प्रदायिक दंगो से विक्षुब्ध होकर गान्धी जी ने लोगों को समझाया कि प्रेम एवं अहिंसा के बल पर शत्रु पर विजय प्राप्त की जा सकती है और साथ ही उन्होंने साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने की आकांक्षा से अनशन प्रारम्भ कर दिया। इसी सन्दर्भ में आप नित्य प्रार्थना सभाएं किया करते थे। तभी किसी दुरात्मा ने उन पर बम फेंककर मारने का प्रयास किया किन्तु असफल रहा। उसके कुछ दिन पश्चात् नाथूराम गोड्से नामक एक हिन्दू ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। यह बात अतीव कष्टदायिनी है। आशा है कि समस्त मानव जाति का कल्याण करने वाले का नाम सदैव अमर रहेगा।

चतुर्विंश अध्याय –

इस अध्याय का नामकरण "सर्वमंगलयोग" रखा गया है। अन्त में कवि ने गान्धी जी की मृत्यु पर गहरा शोक व्यक्त किया है और भारत–पाक विभाजन के देश के लिए अतीव हानिकारक स्वीकार किया है। साथ ही यह कामना की है कि हम सभी आपसी भेदभाव का परित्याग करके एक ऐसे समाज की स्थापना करें जिससे समस्त मानव जाति का कल्याण हो एवं उनके मार्ग का अनुकरण करके हमारा भारत राष्ट्र उन्नति के पथ पर बढ़ता हुआ सदा विजय प्राप्त करे।

भाषा शैली –

गान्धी गीता की भाषा शैली श्रीमद्भगवत् गीता से बहुत कुछ मिलती जुलती दृष्टिगत होती है। श्री ताड़पत्रीकर की भाषा अतिशय सरल और सुबोध है। जिसमें प्रासादिकता प्रायः परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिये गान्धी गीता का अनुकरण योग में विद्यमान अधोलिखित श्लोक दृष्टव्य है।

"अथान्यत्संप्रवक्यामि फलं यत्पारतन्त्रजम्,
तीक्ष्णं विषमयेनजीवित भारते कृतम्।
श्रेष्ठानुकरणे वृत्तिर्निराशा हितमावहेत्,
यत् श्रेष्ठस्य विषयत्वेषा तत्स्यादनुकृतं यदि।।"
"बहुधैषा प्रवृतिस्तु क्षुद्रानुकरणेरता,
श्रेष्ठेष्वपि च यत्रीन तदनुक्रियते जनैः।
तेन हीनत्वमेवैषामधिकं दृश्यते स्फुटम्,
तदैव बहु मन्वाना न जानन्ति परं हितम्।।"

(गा.गी. अनुकरण योग)

विविध विचारपूर्ण वर्णन –

गान्धी गीता में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सामायिक विचारव्ययी सम्यक रूप से व्यक्त किए गए हैं। जिनकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता आज भी अनुभव की जाती है। वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में महाकवि ताड़पत्रीकर की अवधारणा अधोलिखित श्लोक में इस प्रकार अभिव्यक्त होती है –

"ब्राह्मण क्षत्रिय विशः शूद्राश्चैवापि भारत,
चत्वार एते वर्णाः सदा राष्ट्रे सुनिश्चिताः।
चातुर्वर्ण्यमिदं पश्य गुणकर्मविभागशः,
निश्चीयते सदा सूत्रैर्जन्म नैवात्र कारणम्।।

(गा.गी. 10/5–6)

अर्थात् गान्धीजी के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार वर्ण भारत में सदैव रहे हैं। परन्तु इन वर्णों का गुण कर्म के अनुसार दृष्टिगत करना समीचीन है। निश्चित रूप से जन्म से कोई शूद्र नहीं होता है।

महात्मा गान्धीजी के अनुसार व्यक्ति धर्म एवं जाति से "सर्वोपरि राष्ट्र धर्म" है। यथा –

"व्यक्ति धर्माज्जातिधर्मो राष्ट्रधर्मस्ततो महान्,
माहात्म्यं तारतम्येन जानाति स्वकृतौ सुधीः।"

(गा.गी. 10/4)

महाकवि ताड़पत्रीकर त्याग की महिमा से पूर्णतया परिचित हैं। अतः उन्होंने गान्धी गीता में गान्धीजी के द्वारा त्यागवृत्ति अपनाने का भी प्रभावी वर्णन प्रस्तुत किया है। यथा –

"निरीहा लोककल्याणे स्वयं स्फूर्तिस्तथाज्वला,
त्यागवृत्तिः श्रेष्ठतमा यत्र ते ब्राह्मणा विदुः।
सत्त्वस्य यत्र चोत्कर्षो निर्भयत्वममानिता,
भोगेष्वसक्तिः स सदा वन्धो ब्राह्मणसत्तमः।।"

(गा.गी. 10/7–8)

महाकवि ताड़पत्रीकर राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना और कर्त्तव्य परायणता को प्रमुख रूप से स्वीकार करते हुए गान्धी गीता में स्पष्ट रूप से अपने मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करते हैं। यथा –

"उपेक्षा नैव कर्त्तव्यो राष्ट्रे शत्रोरणोरपि,
नो चेत्स प्रबलो भूत्वा कालेन व्यथयेज्जनान्।
यः स्वार्थवशगो भूत्वा शत्रुपक्षं परामृशेत्,
सः सर्वैरपि हन्तव्यः शत्रुणा सह यत्नतः।
प्रत्यहं चिन्तयित्वैव उपायान्नाष्ट्रवर्धनान्,
सर्वैः संभूय कर्त्तव्यः सदोद्योगस्तया दिशा।।"

(गा.गी. 10/34–36)

भारत राष्ट्र के उत्थान में स्वतन्त्रता का महत्व प्रतिपादित करते हुए इस काव्य में यह उद्भाषित किया गया है कि राष्ट्र का शील एवं चरित्र परतन्त्रता में सर्वथा समूल नष्ट हो जाता है। अतः राष्ट्र की स्वतन्त्रता की सुरक्षा करना परम् आवश्यक प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में कवि की अवधारणा निम्न प्रकार से अभिव्यक्त हुई है –

"परिणामोऽयमेतस्य पारतन्त्रस्य मा शुचः,
पारतन्त्रये ह्यनर्थानां जायते हि परंपरा।"

(गा.गी. 2/20)

राष्ट्र धर्म के सन्दर्भ में राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा करना श्रेयस्कर है, यथा –

"सत्यं यदुक्तं भवतानूनमेव भविष्यति,
राष्ट्रधर्मस्तु नैतेन लोपं गच्छेत्कदाचन।
मरणे गताभर्लोको व्यथितो राजशासनात्,
स पुनर्मुक्तये यत्नं निश्चयेन करिष्यति।।
एवं प्रवर्तितं राष्ट्रधर्मचक्रं सुखाय नः,
अन्ते सिद्धिकरं पश्य लोकस्यापि हिताय च।"

(गा.गी. 3/3, 4, 5)

राष्ट्र क्या है ? अर्थात् राष्ट्र की परिभाषा वर्णित है –

"यत्र जन्मास्य भवति यत्र संवर्धनं तथा,
स्वकीया यत्र चैवास्य तस्य तद्राष्ट्रमुच्यते।
यत्रास्य पितरावास्तां यत्रांसश्च पितामहाः,
स्वीयापरंपरा यत्र तस्य तद्राष्ट्रमुच्यते। "

(गा.गी. 3/11, 12)

राष्ट्र की अवनति का मूल कारण कलह को बतलाया है।

"कलहं वै स्वकीयेषु नैव कुर्यात्कदाचन,
कलहो राष्ट्रनाशाय भवतीति सुनिश्चितम्।
राष्ट्रच्छिदं हि कलहो मूले प्रशमनं नयेत,
परकीयानि राष्ट्राणिछिद्राण्यन्वेषयन्ति हि।
परकीया भेदनीतिमवलम्बयाचरस्येवं,
कलहं कारणं कृत्वा अस्मासु जयमाप्नुवन्।"

(गा.गी. 3/18, 19, 20)

कर्मयोग के सन्दर्भ में निम्न श्लोक दृष्टव्य हैं –

"गतानुगतिको लोको न लोकः परमार्थिकः,
धुरीणान् ननु सृत्वैव लोकः कर्म सुवर्तते।"

(गा.गी. 1/14)

अंग्रेजों के भारतवर्ष में शासक बन जाने पर गान्धीजी के भाव दृष्टव्य हैं –

"विस्तीर्ण भारतंवर्षं नानाजनपदैर्युतम्,
हिमालयादिशैलैश्च सरिद्भिर्बहुभिस्तथावा।
आसेतु तदिदं सर्वं ह्याग्लैः स्ववशम्कृतम,
स्थापिताश्चाधिकारेषु स्वकीयस्तत्र तत्र हि।।"

(गा.गी. 1/22, 23)

गान्धी का जविन दर्शन निम्न में दृष्टव्य है –

"अहिंसा ब्रह्मचर्य च सत्य चैवत याताम्,
प्राणात्यजेऽपि न त्याज्यं न स्मदीयैरिदं वयम्।"

(गा.गी. 1/38)

लोभ भाव से प्रेरित होने पर क्लेश की उत्पत्ति होती है –

"दृष्ट्वा परेषां सुखसाधनानि,
रम्याणि चान्यानि हि वैभवानि।
तान्येव नित्यं मनसा विचिन्त्य,
लोभातुरः क्लिश्यति जीव एषः।।"

(गा.गी. 4/5)

अंग्रेजों को व्यापारी बतलाते हुए उनकी कार्य शैली का वर्णन किया है –

"आंग्ला हि वणिजः सर्वे राजनीतिविशारदाः,
एतैः स्वकीयलाभश्च साधितो बहुशः किल।"

विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, आत्मनिर्भरता एवं स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुसार उपर्युक्त उनके द्वारा बतलाया गया है –

"बहिष्कारे यथाहानिपरेषां जायते ध्रुवा,
तथा लाभः स्वकीयेना सहजः स्यादनेकधा।

कृषिप्रधाने देशऽस्मिन्जातो लोकः सुदुर्बलः,
न चैषा जीवनोपायो दृश्यते यत्नतोऽपि हि।।
एतैः कार्पासवस्त्राणि निर्मितानि निरालसेः,
उदरभरणार्थाय प्रभवेषु सुखाय च।।"

(गा.गी. 7/29, 30, 31)

सेवाभाव कितना कष्ट कारक है। नौकरों आदि के सन्दर्भ में परतन्त्रता के अनुभवों की झलक प्रस्तुत करता है।

"किं तु जीवनमेतेषा सेवाये विद्यते यदि,
सेवा धर्मे परित्यक्ते कष्टं स्याद्देह पोषणम्।"

(गा.गी. 7/16)

अन्त में लेखक ने राष्ट्र के अभ्युदय के लिए त्याग, शील और धीरता को आवश्यक बताते हुए कहा है –

"यत्र लोको गुणीर्धीरो लोकोऽपि त्यागशीलवान्,
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्भवेद्राष्ट्र समुन्नतम्।।"

(गा.गी. 24/70)

रस निष्पत्ति –

महाकवि ताड़पत्रीकर गान्धी गीता में स्वाभाविक रूप से शान्त रस की अभिव्यक्ति में पूर्णतया पारंगत प्रतीत होते हैं। आध्योपान्त विवेच्य कृति में गीता के अनुहरण पर गान्धी गीता में भी शान्त रस का सुन्दर परिपाक प्राप्त होता है। यथा –

"निरीहा लोककल्याणे स्वयंस्फूर्तिस्तथोज्ज्वला।
त्यागवृत्तिः श्रेष्ठतमा यत्र तं ब्राह्मणं विदुः।।
सत्त्वस्य यत्र चोत्कर्षो निर्भयत्वममानिता।
भोगेष्वसक्तिः स सदा वन्द्यो ब्राह्मणसत्तमः।।"

(गा.गी. 10/7, 8)

इसी प्रकार महात्मा गान्धी के मरण पर शान्त रस के अतिरिक्त करूणरस की भी मार्मिक निष्पत्ति गान्धी गीता में प्राप्त होती है। यथा –

"महात्मा निर्ममः सर्वाशान्तिमेव समादिशत्।
तस्येदं मरणं श्रुत्वा बहु शोचामि संजय।।
ततः परं किमभवत्किमकुर्वश्र्च मन्त्रिणः।
आक्रान्तं हिन्दुराष्ट्रं वा मुस्लीमैस्तद्वदाधुना।।
महात्मनो हि मरणे राष्ट्रे सर्वत्र विप्लवः।
स मुस्लीमहितायैव भवेदिति सुनिश्चितम्।।" (गा.गी. 24/1–3)

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि श्री ताड़पत्रीकर भाव पक्ष को स्वाभाविक रस निष्पत्ति से प्रभावी बनाने में सर्वथा प्रवीण प्रतीत होते हैं।

छन्दोलंकार योजना–

गान्धी गीता में श्रीमद्भगवत् गीता की अनुच्छाया में स्वाभाविक रूप से छन्दोलंकार योजना का प्रयोग परिलक्षित होता है। छन्दों में प्रायः समस्त रचना अनुष्टुप छन्द में ही विरचित है तथापि कहीं–कहीं पर कुछ अन्य वर्णिक छन्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। जिनमें इन्द्रवज्रा, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी आदि छन्द उल्लेखनीय हैं। अधोलिखित इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है –

"दृष्टवापरेषां सुखसाधनानि,
रम्याणि चान्यानि हि वैभवानि।
तान्येव नित्य मनसा विचिन्त्य,
लोभातुरः क्लिश्यति जीव एषः।"

(गा.गी. 4/5)

इन्द्रवज्रा व उपेन्द्रवज्रा से मिलकर निर्मित होने वाले उपजाति छन्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है –

"प्रायः प्रजा हिन्दव एव तस्य,
तथापि राज्ये बहवस्तदीयाः।
महत्पदे शासनकार्य युक्ताः,
कुर्वीत् पीड़ा विविधः प्रजासु।।"

(गा.गी. 23/47)

इसी प्रकार उपेन्द्रवज्रा का यह छन्द भी द्रष्टव्य है –

"पुरा यथा रावणरामयुद्धे,
मया दृष्टा विविधा राक्षसस्य।
क्षेत्रं हि तदवर्णपूर्णमासी,
त्तया तैषामपि युद्धनीतिः।।"

(गा.गी. 2/21)

पुराप्रसंगे युधि कौरवाणां,
पाण्डोः सुतास्तुल्यवलास्तथासन्।
समेत्य शत्रूंस्तरसा विजित्य,
राज्यं स्वकीयं पुनराप्तवन्तः।।

(गा.गी. 2/24)

इसी कम में अधोलिखित उपेन्द्रवज्रा छन्द की रमणीयता एवं प्रभावशालिता भी द्रष्ट्व्य है –

"अस्मिन्विचित्रे तु रणप्रसंगे,
अस्मास्विदं वैपरीत्यं समेतम्।
कारागृहे श्रृंखलया निबद्धा,
रणेहताः स्याम च सेवकै वर्णं।।"

(गा.गी. 2/35)

इसी प्रकार शालिनी छन्द का यह प्रयोग भी अवलोकनीय हे –

"चातुर्वर्ण्यं यत्र संस्थापित स,
त्सर्वेषां वै सौख्यहेतुर्बभूव।
सर्वे तुष्टा ऋद्धिमन्तो जनाश्च,
स्वस्मिन्कर्मण्येव संतोषभाजः।।"

(गा.गी. 17/22)

एक अन्य शालिनी छन्द का सुन्दर प्रयोग भी यहां दृष्टव्य है –

"यत्राभूर्वश्चन्द्रगुप्तादय वै,
विजिग्युराजावपरान्नृपालान्।
येषां कीर्तिः प्रसूता दूरदेशे,
तत्र तैर्या वर्णिता चेहितहासे।।"

(गा.गी. 17/26)

अलंकार विधान –

महाकवि ने अर्थ सौष्ठव को प्रकट करने के लिये प्रायः स्वाभाविक रूप से गान्धी गीता में शब्दालंकारों के साथ ही अर्थालंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य में अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि के साथ उपमा, रूपक, उत्प्रेरक्षा, अर्थान्तरन्यास, स्मरण आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। वैसे महाकवि की अभिरूचि अलंकारों के अतिशय प्रयोग के प्रति प्रकट नहीं होती है तथापि प्रसंगानुसार कतिपय अनुप्रास आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग दृष्टव्य है। यथा –

"परिणामोऽयतेमस्य पारतन्त्रास्य मा शुचः,
पारतन्त्र्ये ह्यनार्थानां जायते हि परम्परा।
सशस्त्रैः शस्त्रहीनानामपूर्व युद्धमीदृशम्,
शरीरबलमेतेषामस्माकं मानसं बलम्।।"

(गा.गी. 2/20, 33)

इसी प्रकार अन्य छन्द में अनुप्रास एवं स्मरण अलंकार साथ–साथ प्रयुक्त हुए हैं। यथा –

"पुरा प्रसंगं युधि कौरवाणां,
पाण्डोः सुतास्तुल्यलास्तथासन्।
समेत्य शंत्रूस्तरसा विजित्य,
राज्यं स्वकीयं पुनराप्तवन्तः।।" (गा.गी. 2/24)

अर्थालंकारों में उपमा अलंकार का महाकवि ने स्वाभाविक रूप से सुन्दर प्रयोग किया है। यथा –

"सागरः प्रजगर्जाथ बीचीभिश्च तथोच्छ्रितम्।
यथा मिलितमेव स्यान्नभसः सागरस्य च।।"

(गा.गी. 7/4)

उपर्युक्त उद्धरणों के आलोक से यह सिद्ध होता है कि महाकवि ताड़पत्रीकर न गान्धी गीता में छन्दोंलंकार का सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है। जिससे इस काव्य की महत्ता और उपादेयता स्वतः सम्वर्धित होती है।

प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति प्रणीत 'गान्धिगीता' से तुलना –

श्री निवासताड़पत्रीकर के द्वारा विरचित गान्धिगीता का रचनाविधान इन्द्र विद्या वाचस्पति कृत गान्धिगीता के रचना विधान से सर्वथा समान संलक्षित होता है। इन दोनों काव्य ग्रन्थों की भाषा शैली, काव्य रीति, छन्दोलंकार योजना तथा वर्ण विषय बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इन दोनों काव्य ग्रन्थों पर श्रीमद् भगवत् गीता के रचना विधान की अनुच्छाया पूर्णतया पड़ती परिलक्षित होती है। इसे इनके अनेक उद्धरणों से सम्पुष्ट किया जा सकता है।

श्रीमद् भगवत् गीता एवं गान्धिगीता में समानता –

श्रीमद् भगवत् गीता के प्रथम अध्याय में श्री धृतराष्ट्र उवाच का निम्नलिखित रूप से प्रयोग किया गया है। यथा –

"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।"

(गा. गी. 1/1)

इसी प्रकार इस श्लोक के अनुहरण में श्रीताड़पत्रीकर ने भी गान्धी गीता में धृतराष्ट्र रूपी अंग्रेजी शासक का सम्वाद इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

"धर्मक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र समवेता युयुत्सवः,
मामका भारतीयाश्च किम कुर्वत संजय।"

(गा.गी. 1/1)

जिस प्रकार श्रीमद् भगवत गीता में संजय उवाच का प्रयोग इस प्रकार हुआ है।

"दृष्टवा तु पाण्वानीकं व्यूढ़ दुर्योधनस्तदा,
आचार्यमिपु सगम्य राजा वचनम्ब्रवीत्।।
पश्यैतां पाण्डु पुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्,
व्यूढ़ा द्रुपद पुत्रेण तवशिष्येण धीमता।।
अत्र शूरामहेष्वासा भीमार्जुन समायुधि,
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।।
धृष्टकेतुश्चे कितानः काशिराजश्च वीर्यवान्,
पुरुजित्कुन्ति भोजश्चशैब्यश्च नरपुंगवः।।
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्मौजाश्च वीर्यवान्,
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।।" (गा.गी. 1/2–6)

इसी प्रकार गान्धी गीता में गीता का अनुहरण करते हुए संजय उवाच का प्रयोग

इस प्रकार संवाद रूप से प्रस्तुत किया गया है। यथा –

दृष्टवा तु भारतानीकं व्यूढं सत्याग्रहाय वै,
मन्त्रिणः स्वान्समाहूय राजा वचनमब्रवीत्।
पश्चतैता भारतानां सर्वत्र महती चमूम्,
प्रसृतामत्र वैराष्ट्रे व्यूढ़ामपि महात्मना।।
अत्रशूरा हि नेतारः शिक्षिता राजकारणे,
काश्मीरो यौ पिता पुत्रौ मोतीलालजवाहरौ।।
सुभाषसेन गुप्तादि बंगीया लोकविश्रुता,
धुरीणाः परमोदारा युक्तायुक्त विचक्षणाः।।
आन्ध्राश्च दाक्षिणात्याश्च द्राविडाश्चापि सर्वशः,
पन्जावीयाः सैन्धवाश्च वैदर्भीयाः समन्ततः।।

(गा.गी. 1/2–6)

इसी प्रकार समानता की दृष्टि से भगवत् गीता में जिस प्रकार प्रथम अध्याय का नामकरण विषादयोग दिया गया है। उसी प्रकार गान्धी गीता में भी प्रथम अध्याय को विषादयोग नाम से अभिनीत किया गया है। निम्नलिखित श्लोकों में भी श्रीमद् भागवत् गीता से समानता संलक्षित होती है। यथा –

"कलासक्तिं परित्यज्य कार्यं कर्म समाचर,
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

(गा.गी. ध्यानम् श्लोक 6)

"सुखदुखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ,
ततः कर्माणि युज्यस्व नैवं खेदमवाप्स्यसि।"

(गा.गी. ध्यानम् श्लोक 8)

"कोधद्वेषा हि विकृतिं हीनमानन्यसंयुतम्,
बलये नाजितं लोके सकायेऽस्मिन्न शक्यते।।"

(गा.गी. 2/13)

इसी प्रकार श्रीमद् भगवत् गीता के श्लोकों के अनेक सूक्तमय पद्यों को गान्धी गीता में यथावत् किन्चित परिवर्तन के साथ प्रयोग किया गया है। जिससे इसकी गम्भीरता में स्वाभाविक वृद्धि परिलक्षित होती है।

समीक्षा –

सम्पूर्ण गान्धी गीता प्रायः विचार प्रधान एवं दर्शन प्रधान काव्य ग्रन्थ है। इसमें महात्मा गान्धी के जीवन चरित्र के मूल्यांकन के साथ उनके विचारों का भी सम्यक् रूप से प्रस्तुतीकरण इस काव्य में प्राप्त होता है। वस्तुतः महात्मा गान्धी के चरित्र का मूल्यांकन काव्य में प्रायः प्रस्तुत किया गया है। यथा निम्नलिखित पंक्तियां उनके चरित्र की महत्ता को इस प्रकार व्यक्त करती हैं –

"यत्र लोकाग्रणीर्धीरो लोकोऽपि त्यागशीलवान्,
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्भवेद्राष्ट्रं समुन्नतम्।।"

महाकवि ने अपनी काव्यकृति का मूल्यांकन भी भूमिका में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

"But before this done, the Author would crave indulgence of the reader and express a few words about the way in which he came to conceive the idea of the Gandhi Gita, in Sanskrit. While the Whole nation was astir with the C.D. movement started by the Mahatma, and newspapers with full of daily reports of Lathi Charges agaist non-violent followers of the movement, it was impossible, even for the Author, a man in a corner to keep in different to these important developments in the political thought of the country. In fact, it would not be to much to say that every literate man took a keen interest in the movement and the prosand cons of the same were freely discussed, even by persons, most distant from the movement itself.

गान्धी गीता में महात्मा गान्धी के जीवन दर्शन सत्य अहिंसा की अभिव्यक्ति के साथ ही उनकी पत्रकारिता में प्रवीणता का भी यथास्थान समीचीन वर्णन किया गया है। जिसको रचनाकार निम्न पंक्तियों में स्वीकार करते हुए इसकी समीचीनता इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं –

The main point at issue was the success of non-violence against violence and old files of 'Young India' would provide numerious instances of discussion of this nature. This led the present Author to think of a new political Gita, on the lines of the Bhagavadgita, and he set himself to work in the idea. Though there might really have been serious doubts even in the minds of the followers of the movement, let it be stated here, as an honest truth, that the present dialouge, based on these doubts, between the Bhartiya and the Mahatma, is of a purely imginary nature. The back ground selected, namely the C.D. meeting at Dandi, in Gujrat, was, of course, true."

गान्धी गीता के गौरव और वैशिष्ट्य को सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीहरिसूनुर्माधव शर्मा अणे ने काव्य की भूमिका में इन शब्दों के साथ व्यक्त किया है –

"येयमस्माकं मातृभूमिः पुरा वैभवस्य परां कोटिमाप्रोत् सैदेदानीं परदास्यनिगडबद्धा कथं मोचिता स्यान्मुक्तायाः पुनरपि विभव प्राप्तिः कथं वा भवेदित्यादिविषयाः प्रसंगतः अस्यां गान्धिगीतायां चर्चिताः। तेन मन्ये इयं गीता न केवलं धार्मिकैः अर्पितु राजकीय सामाजिकादिविविधविषयविवेचकैरपि सर्वैरेव भारतीयैः सभ्यगधीता, आचरिता च राष्ट्रस्य समुन्नतये प्रभवेदिति।"

गान्धिगीता का रचना विधान प्रोफेसर इन्द्रविद्या वाचस्पति विरचित गान्धिगीता से सर्वथा मिलता जुलता सलंक्षित होता है। इनमें परस्पर समान पदावली, भाव–भाषा, छन्दोलंकार योजना, समान रूप से पायी जाती है। ये दोनों काव्य कृतियां श्री मदभगवत्गीता

से पूर्णतया प्रभावित होकर उसकी प्रतिच्छाया से आभासित हैं।

श्रीमदभगवत् गीता की अनुच्छाया में गान्धी गीता की गुणवत्ता स्वीकार करते हुए श्री अणे ने इसके वैशिष्ट्य को इन शब्दों में रेखांकित किया है –

"किं बहुना! यथा श्रीमद्भगवत् गीता महाभारते समावेशिता, अन्याश्च गीतास्तेषु तेषु पुराणेषु प्रवेशितः तथैवेयं गान्धीगीता संक्षेपतो राष्ट्रस्वातन्त्र्यसंपादनेतिहासं विवृण्वती महत्यां स्वतन्त्र्य संहितायां परिणमितुमर्हति। आशासे च कविरपि इदं महत्कार्य संपादितुं आवश्यकं द्रव्यसाहाय्यादि लब्ध्वा यथोचितं यशः प्राप्नुयादिति। अलमति विस्तरेण।"

उपर्युक्त सारगर्भित समालोचना के आधार पर कहा जा सकता है कि राष्ट्रवादी अर्वाचीन महाकाव्यों में गान्धी गीता अपने वर्ण्य विषय की गम्भीरता, भाव–भाषा शैली की उत्कृष्टता तथा कलात्मकता की दृष्टि से सर्वथा स्तरीय काव्य रचना है। जिसका महत्व और स्तर किसी अन्य अर्वाचीन रचना से किसी प्रकार भी कम नहीं है।

अतः राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के प्रामाणिक जीवन परिचय तथा उनके व्यवाहारिक जीवन दर्शन दृष्टि की प्रामाणिक प्रस्तुति के आधार पर गान्धी गीता एक प्रामाणिक महाकाव्य है। जिसका आद्योपान्त अनुशीलन अनुसंधान की दृष्टि से करना सर्वथा समीचीन और प्रासंगिक प्रतीत होता है।

पंचम अध्याय

पण्डिता क्षमाराव का जीवन परिचय एवं 'सत्याग्रहगीता' का साहित्यिक मूल्यांकन

पंचम अध्याय

पण्डिता क्षमाराव का जीवन परिचय एवं "सत्याग्रहगीता" का साहित्यिक मूल्यांकन

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में विशिष्ट योगदान प्रदायिका पण्डिता क्षमाराव ने संस्कृत भाषा में अनेक काव्यों की रचना की है। जन्मस्थली महाराष्ट्र राज्य होने से इन पर सन्त ज्ञानेश्वर एवं सन्त तुकाराम आदि मराठी सन्तों की स्पष्ट होती है एवं भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रभाव से राष्ट्रीय चेतना एवं प्रेरणा का भाव भी इनके हृदय में विद्यमान दृष्टि गोचर होता है। साथ ही अपनी स्वाभाविक रूचि एवं आकर्शण के कारण क्षमाराव ने कथा–साहित्य का भी सृजन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक लघु यात्रा वर्णन भी लिखा है। इन कृतियों के द्वारा हमें क्षमाराव की काव्यमयी प्रतिभा का सूक्ष्म परिचय मिल जाता है।

जीवन परिचय –

कवयित्री पण्डिता क्षमराव की जन्म 4 जुलाई 1890 ई. में पूना में हुआ था। उनके पिता स्वर्गीय षंकर पाण्डूरंग पण्डित, संस्कृत के महान् विश्रुत विद्वान्, भाषाशास्त्री एवम् पूर्वीय अनुवादक थे। अनेक वर्षों तक उन्होंने पोरबन्दर और बड़ौदा में शासन कार्य भी वहन किया। कवेल 52 वर्ष की अवस्था में ही अपने अनुजों को शिक्षित बनाकर तथा अपनी पत्नी तथा आठ सन्तानों को छोड़कर, वे स्वर्गवासी हो गये।

शैशव समय बालिका क्षमा, क्षमादि गुणों के साथ शारीरिक सौन्दर्य से पूर्ण थीं साथ ही उन्हें अपनी माता के उच्च्व विचार एवं पिता का मस्तिष्ठ पैतृक दायनिधि के रूप में प्राप्ति हुआ। उनका बाल्यकाल दुःख्पूर्ण था तथा उनकी अभिलाषायें भी कुठित हो गयीं थीं। पहले तो पिता की दीर्घकालीन अस्वस्थता, उसके बाद उनकी मृत्यु, फिर ध ानी किन्तु निष्करूण सम्बन्धियों के साथ निवास इन्हीं सब कारणों ने क्षमा के प्रारम्भिक जीवन को विषादयुक्त बना दिया। उनके चाचा स्वर्गीय सीताराम जी पण्डित, विदेश से कानून की कक्षा उत्तीर्ण करने वाले नियम वेत्ता थे, वे क्षमा तथा उनके बन्धु एवं भगिनीवर्ग के साथ अत्यधिक आत्मीयतापूर्ण स्नेह रखते थे। उनके दूसरे चाचा घनश्याम पण्डित भी उनकी शिक्षा के पति दयालु एवं सहायता की दृष्टि रखते थे किन्तु निष्कृति में अतिकठोर थे। यही कारण था कि कन्यायें कठिनतापूर्वक अपनी पुस्तक लेने या शिक्षक रखने में समर्थ होती थी।

सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति भाइयों के लिए सुरक्षित थी। उनकी सर्वाधिक आकांक्षा पहले स्नातक बनने तथा उसके पश्चात् उच्च्व शिक्षा हेतु ऑक्सफोर्ड जाने की थी।[1] अपने भाइयों की अपेक्षा वे अधिक बुद्धिमती, चचंल एवं प्रवीण थीं। अपने भाइयों से

विद्यालय सम्बन्धी पुस्तकें लेकर वे अध्ययन करतीं और वे उनके साथ घर पर शिक्षक से पढ़तीं थीं। उन्होंने भाषा एवं निबन्ध के क्षेत्र में भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का प्रदर्शन किया। वह विभिन्न क्रीड़ाओं में भी 10 या 12 वर्ष की आयु से ही भाग लेतीं थीं। उन्होंने विद्यालय की अन्तिम परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त किये तथा अंग्रेजी एवं संस्कृत के लिए उन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए तथा अपनी समस्त छात्रवृत्ति को वे अपने बाबा को देती थीं, जिनके साथ वे निवास करती थीं।

क्षमाराव ने विल्सन कॉलेज में प्रवेश किया, किन्तु वह अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर सकीं क्योंकि इसी बीच उनका विवाह देश के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. राघवेन्द्र राव के साथ सम्पन्न हो गया। अब उनके जीवन में परिवर्तन आ गया। पुनः वैभव प्राप्त करने वाली क्षमराव के ऊपर गृहस्थी का वृहत् भारत पड़ गया। उनके परिवार के प्रति अत्यन्त करूणाशील उदारमना डॉ. राव ने क्षमा के परिवार के सभी सदस्यों को राजकोट से अपने गृह में बुला कर अत्यन्त सुख पूर्वक रखा। किन्तु बहुत व्यस्त होने के कारण डॉ. राव अपनी नवोढ़ा एवं युवा पत्नी को अध्कि समय नहीं दे पाते थे और न ही इनकी साहित्यिक अभिलाषा की प्रशंसा ही कर पाते थे।[2] अतः अपनी रचनात्मक इच्छा को शान्त करने के लिए क्षमाराव ने अंग्रेजी में प्रारम्भिक रूप से कविता एवं कहानियां लिखना प्रारम्भ कर दिया।

फलतः 1920–1930 ई. के बीच में क्षमाराव द्वारा लिखीं गयी अनेक कथाएं तथा भारतीय जीवन से सम्बन्धित नाटक आंग्ल भाषा में लिखे गये। बहुत से पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए तथा कुछ का मराठी अनुवाद भी हुआ। उनके 5 अंकाकी नाटक 1930 में रचे गये।

आकास्मिक सामयिक परिस्थितिवश 1939 ई. में ही उन्होंने जब अंग्रेजों द्वारा महिलाओं के ऊपर बर्बर लाठी प्रहार करते देखा, तभी उनको संस्कृत भाषा में सत्याग्रह–गीता लिखने की प्रेरणा भगवत्गीता तथा महात्मागान्धी से मिली, चूंकि कोई भी भारतीय प्रकाशक ऐसी रचना का प्रकाशन करने का साहस नहीं कर सका। अतः 1932 ई. में पेरिस में सत्याग्रहगीता को प्रकाशित कराया। यह भगवत्गीता की भांति 18 सर्गों की एक कृति है जिसमें प्रत्येक सर्ग में स्वतन्त्रता संग्राम के समय महात्मा गान्धी जी के प्रारम्भिक जीवन से लेकर गान्धी इरविन समझौते तक का वर्णन किया है।[3]

उसके बाद उन्होंने सौराष्ट्र–गुजरात प्रान्त के विभिन्न स्थलों का पर्यटन किया और ग्रामीण जनों की देशभक्तिपूर्ण कहानियां सुनीं। उन्होंने उनके साथ प्रेमपूर्वक वार्ता की क्योंकि उन्हें मराठी एवं अंगेजी जैसा ही गुजराती भाषा का भी गम्भीर ज्ञान था। सन् 1926 ई. में उन्होंने महात्मा गान्धी के साबरमती आश्रम में जाकर उनके कार्य की प्रार्थना की। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने ग्रामीण जनों की वीरता की तीन कहानियां अनुष्टुप् छन्द में लिखीं जो कि 'ग्रामज्योति' नाम से प्रकाशित हुईं।

सन् 1933 ई. में उन्होनें सुन्दर लघु कथायें लिखीं, उनका संग्रह 'कथापंचक' कहलाया।[4]

सन् 1938 ई. में उन्होंने अपने पिता का जीवन–चरित लिखा, जो कि 'शंकरजीवनाख्यानम्'[5] शीर्षक के नाम से प्रकाशित हुआ। 1940 ई. में उन्होंने 'मीरालहरी' की रचना की। सन् 1944 ई. में तिरूवेल्लनूर में गान्धी आश्रम में महात्मा गान्धी के जीवन चरित को लिखने के लिए सम्पूर्ण भारत के संस्कृत ज्ञाताओं को निमंत्रित किया। चूंकि सत्याग्रहगीता, गान्धी इरविन समझौते के बाद समाप्त हो गया था, अतः तब से लेकर 1944 ई. तक अनेक घटनाये घटित हो चुकीं थीं, किन्तु बिना हतोत्साहित हुए उन्होंने 'उत्तरसत्याग्रहगीता' की रचना पांच मास में की, यह पुस्तक पण्डिता की समस्त रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी।

सन् 1946 ई. में उन्होंने अपनी उल्लेखनीय रचना श्री तुलारामचरितम् को गुलमार्ग में लिखा, किन्तु 1950 ई. में प्रकाशित की गई।

सन् 1952 ई. में रघुवंश की भांति ही उन्होंने श्रीरामदासचरितम् की रचना की, जिसकी आलोचकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की। 1951 ई. में उन्होंने पांच गद्य में 15 कथाएं लिखीं, जिनमें से आठ का प्रकाशन विविध पत्रिकाओं में हो चुका था। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पुत्री लीला यादव ने 'कथामुक्तावली' नाम से उस संग्रह को प्रकाशित किया। उनकी अन्तिम एवं सर्वोच्च रचना 'श्रीज्ञानेश्वरचरतिम्' हैं, जिनको उन्होंने 1953 ई. में प्रारम्भ किया था और जो कि उनकी मृत्यु (मंगलवार 22 अप्रैल 1954) के ठीक एक सप्ताह पहले पूर्ण हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है मानों महान् सन्त ज्ञानेश्वर उन्हें अपने प्रिय पति के समीप, जो कि उनसे पांच महीने पहले दिवंगत हुए थे, ले जाने के लिए ही आये थे।[6]

जीवन काल –

उपरिविवेचित जीवन परिचय के अनुसार कवयित्री क्षमाराव का जवीन–काल 4 जुलाई 1890 ई. से 22 अप्रैल 1954 तक अर्थात् 19वीं शती ईस्वी के अन्तिम भाग से लेकर 20वीं शती के मध्य भाग सर्वज्ञात है, जिसका प्रतिपादन श्रीमती गायत्री त्यागी[7] एवं डॉ. मालती अवस्थी[8] डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी[9] आदि ने किया है।

पण्डिता क्षमाराव का व्यक्तित्व –

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव सर्वाङ्गि सुन्दरी थीं। प्रत्येक कार्य में सुव्यवस्थितता उन्हें प्रिय थीं। वे न केवल सौन्दर्यवर्धक विषयों के प्रति सजग थीं अपितु अन्य जनों को भी इसी रूप में देखने की कामना करती थीं। इस विषय में लक्ष्मी शेरसिंह शास्त्री लिखित संस्मरण के कुछ पंक्तियां विचारणीय है – एकस्मिन् दिबसे क्षमा मम पृष्ठभागे स्थित्वा मदीय केशपाशं समालुलोके। दृष्ट्वा चाब्रवीत् 'त्वदीया केशास्त्वति–सुन्दरा वर्तन्ते परं त्व क्मिर्थमेतेषां सौन्दर्य सूत्रग्रन्थनेन विनाशयति।[10]

व्यक्तित्व पर बाल्यकाल तथा शिक्षा का प्रभाव –

कवयित्री क्षमाराव का बाल्यकाल कठिनाइयों तथा निर्धनता में व्यतीत हुआ। जब वे लगभग तीन वर्ष की ही थीं, तो पिता की छत्र–छाया से क्रूर नियति ने उन्हें वंचित कर दिया। पिता की दीर्घकालीन बीमारी तथा मृत्यु ने उनके विकासोन्मुख व्यक्तित्व को मुरझा दिया था। पिता के मरणोपरन्त उन्हें अपने चाचा का आश्रय लेना पड़ा। क्षमाराव बचपन में स्वाभिमानिनी एवं स्वच्छन्द प्रकृति की थीं। पिता शंकर को उनकी शिक्षा के विषय में बहुत चिन्ता रहती थी। क्षमाराव ने 'शंकरजीवनाख्यानम्' में अपनी इस प्रवृत्ति तथा पिता की चिन्ता का संकेत दिया है –

'क्षमात्वश्रुण्वती भूया बालखेला रुचिः सदा।
उद्याने हिण्डमानैका गृह्णाति एतं पतंगिकाः।।
क्षियमाणां वृथा कालं पर्यटन्तीमशिक्षिताम्।
न हि त्वां निर्धनादन्यः परिणेष्यति दुर्मते।।'[11]

इस प्रकार कवयित्री पण्डिता क्षमाराव को पिता की कटु आक्रोशपूर्ण प्रताड़ना को शिक्षा के लिए सहना पड़ा था। क्षमाराव की ग्रेज्युएट होकर आगे ऑक्सफोर्ड जाने की प्रबल इच्छा थी, परन्तु साधनों का अभाव था। उन्होंने सौराष्ट्र में मैट्रिक की परीक्षा उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा अंग्रेजी एवं संस्कृत में विशेष योग्यता प्राप्त कर 'चाटफील्ड' पारितोषिक प्राप्त किया।[12]

हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने विल्सन कॉलेज में प्रवेश किया। सन् 1902–1903 में श्री पी.वी. काणे, जो नेशनल कॉलेज ऑफ इण्डोलाजी है, की उस कॉलेज में छात्रा थीं।[13]

उनका जीवन बहुत ही कष्टमय था। निर्धनता के कारण उनके पास कभी भी अपनी पाठ्य पुस्तकें नहीं रहीं और न ही वे अच्छे वस्त्र पहन सकीं। पारसी लड़कियां प्रायः उनके कपड़ों का उपहास किया करती थीं। इस विषय में 'ग्रामज्योति' की प्रस्तावना में लिखित सम्पादक के विचार दर्शनीय हैं –

"She had only three saris for college. The rich Parsi girl's used to tease her, but was unmoved for she out - shone them in took and studies."[14]

परन्तु क्षमाराव हतोत्साहित नहीं हुई। उन्होंने अपने आत्मबल अपूर्व साहस तथा अद्वितीय पाण्डित्य से सदैव विजय प्राप्त की तथा संघर्षपूर्ण जीवन में सतत सारस्वत साधना दीप जलाये रखा और अनेक उत्कृष्ट काव्य कृतियां भारती के अचंल में अर्पित की।

कुशल गृहिणी के रूप में गृहस्थ–जीवन

क्षमाराव अभी द्वितीय वर्ष की छात्रा ही थीं कि उनका विवाह सारस्वत ब्राह्मण कुलोत्पन्न सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. राघवेन्द्र राव के साथ हो गया। वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने लन्दन से एम.डी. तथा डी.एस–सी. की उपाधि प्राप्त की थी। उनका विवाह

सिविल मैरिज ऐक्ट के अनुसार हुआ। विवाह के समय उनकी आयु 16 वर्ष तथा डॉ. राव की आयु 34 वर्ष थी;[15] किन्तु विद्वानों में किंचित् मतभेद भी मिलता है।[16]

यह विवाह सन् 1906 ई. में सम्पन्न हुआ था। यद्यपि क्षमाराव की इच्छा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से बी.ए. करने की थी परन्तु 'अन्यन्मानुक्षेण विभाव्येतेअन्यदेव च प्रस्तूयते दैवेन' इस न्याय से अध्ययन करते हुए ही उनका विवाह हो गया और उनकी यह इच्छा हृदय में ही रह गई।

संगीतप्रियता एवं संगीतज्ञान –

कवयित्री क्षमाराव संगीत की प्रेमी थीं। यद्यपि पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनों प्रकार के संगीत का उन्हें अच्छा ज्ञान था तथापि पाश्चात्य संगीत के प्रति उनका कुछ विषेश ही आकर्षण था, परन्तु वे गा नहीं सकतीं थीं। वाद्यों में पियानो उन्हें अत्यधिक प्रिय था। एक जर्मन महिला मिस यनूश्क, जो प्रथम विश्वयुद्ध में बन्दी बना लीं गई थीं, से उन्होंने पियानो की शिक्षा ली।[17]

संगीत के प्रति प्रेम उनकी रचनाओं मे सर्वत्र स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।[18] क्षमाराव एक सफल संगीतज्ञा एवं लेखक ही नहीं अपितु निपुण घुड़सवार तथा टेनिस की कुशल खिलाड़ी भी थीं। क्षमाराव का दाम्पत्य जीवन सुखी थ। उनके एक पु. तथा पुत्री थी। पुत्र का नाम मन्मथ तथा पुत्री का नाम लीला था।

उच्च–साहित्यिक जीवन –

क्षमाराव का विकासोन्मुख साहित्यिक जीवन दस वर्ष की अवस्था से डायरी लेखन के रूप में प्रारम्भ हुआ था और उसके चरमोत्कर्ष का अन्त महाकाव्य की रचना के साथ हुआ, जिसकी रचना समाप्ति के एक सप्ताह पश्चात् वे स्वयं इस लोक को त्याग स्वर्गवासी हो गयीं। प्रारम्भ में वे मुख्यतः अंगेजी में ही नाटक तथा कहानियां लिखतीं रहीं, जो बम्बई की भिन्न–भिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनकी सर्व प्रथम रचना अंग्रेजी भाषा में लिखी 'मृगपर' (on a deer) कविता है। जब वे अपने बच्चों के शिक्षार्थ विदेश (यूरोप) गई तब वहां लैटिन अथवा संस्कृत भाषा पढ़ना अनिवार्य था। अतः पाठशाला की प्रधानाचार्य की सम्मति से उन्होंने पुत्र को संस्कृत विषय ही ग्रहण कराया। तत्पश्चात् बच्चों की शिक्षा के समय विदेश में आवास की चिरावधि में वे अनेक संस्कृत विद्वानों के सम्पर्क में आई, जिसमें प्रो. सिल्वांलेवी प्रमुख थे। उनका संस्कृत भाषा के प्रति गहन आस्था और सम्मान ने उन्हें संस्कृत भाषा में लिखने की प्रेरणा दी, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिख है 'एकदा ग्राम–संवृत्तां राजकीयाधिकारिणां अत्याचारस्य वार्ता वर्णयन्ती सिलवानलेविनं सविस्तर संस्कृते पत्रं प्रेषितवत्यहम्। सुरभाषायाम् प्रत्युत्तरं लिखितमिमं लेखं प्राप्यातीव ते ममुदिरे चकिताश्च। सुरभाषायां प्रत्युत्तरं लिखितु–मत्राक्षमोऽहमिति लज्जितोऽस्मि फ्रेचभाषायावेमवालिखत् माम्। उत्तेजिताऽहं च नैकान् लेखान् विविध–श्लोकानलिखम्।[19]

लोकविश्रुत 'सत्याग्रहगीता' काव्य की रचना के पश्चात् उसके छन्द भंगादि सम्बन्धी दोषों को दूर करने के लिए उन्होंने श्री नागप्पस शास्त्री से सहायता ली। सोमरसेट माम तथा डॉ. राउस ने उन्हें अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। सन् 1937 ई. के पश्चात् क्षमाराव ने संस्कृत–भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में रचना नहीं की।

डॉ. मीरा द्विवेदी का विचार है कि महापण्डिता साहित्यिक चंद्रिका आदि विरूदों से विभूषित कवयित्री क्षमाराव के उच्च साहित्यिक जीवन का प्रभाव उनकी अगली पीढ़ी पर भी पड़ा। उनकी पुत्री लीला राव को अपनी माता से अपार स्नेह था। जिससे आज तक उनके नाम के साथ उनकी माता का उपनाम राव भी जुड़ा हुआ है। पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित होते हुए भी माता के संस्कार लीलाराव को सदैव आकृष्ट करते रहे हैं। अपनी माँ से प्रभावित पुत्री लीला राव ने क्षमाराव पर एक ग्रन्थ 'क्षमाचरितम्' भी लिखा है।[20]

भाषा ज्ञान –

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव अनेक भाषाओं की ज्ञाता थीं। मराठी तो उनकी मातृ भाषा थी, परन्तु गुजराती का भी उन्होंने पर्याप्त अध्ययन किया था, किन्तु संस्कृत भाषा के प्रति उनकी विशेष अभिरूचि थी। संस्कृत भाषा के प्रति अपने अगाध प्रेम एवं भक्ति भाव को अपने एक लेख में उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया है –

....................किं भाषणेन मादृश्याः अश्रुतायाः समाजनैः।।
................न पाण्डित्यं न मे कीर्तिः परभक्तिस्तु संस्कृते।।[21]

वे सामयिक साहित्यिक सम्मेलनों में अवश्य जातीं थीं तथा उन्हें आर्थिक अनुदान भी देती थीं, परन्तु वहां उन्हें उचित सम्मान नहीं प्राप्त होता था। अनन्तशयन में होने वाले अखिल प्राच्य भाषा सम्मेलन की स्मृति रूप में ही उन्होंने विचित्रपरिषद्यात्रां पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक में उन्होंने वहां प्राप्त होने वो अनादर की झांकी प्रस्तुत की है।

कृतित्व –

पण्डिता क्षमाराव आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य की सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवयित्री है। उन्होंने अपनी अद्वितीय लेखन–शक्ति का काव्य की सभी विधाओं में पुरातन और नूतन शैली पर कौशल प्रदर्शित किया था। प्रारम्भ में वे प्रमुखतः अंग्रेजी भाषा में लिखतीं थीं, किन्तु बाद में संस्कृत भाषा में रचना की और संस्कृत साहित्य को अनेक बहुमूल्य कृतियां भेंट कीं।

पण्डिता क्षमाराव की कृतियों का वर्गीकरण एवं सामान्य परिचय इस प्रकार है –

(1) चरित काव्य –

इनके अन्तर्गत दो प्रकार की रचनायें हैं प्रथम धार्मिक चरित काव्य, जिनमें श्री तुकारामचरितम्, श्री रामदासचरितम् तथा मीरालहरी है। द्वितीय में शङ्करजीवनाख्यानम् नामक प्रबन्ध काव्य को रखा जा सकता है।

(2) राष्ट्रीय भावनापूर्ण रचानयें –

ये सभी रचनायें भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का विस्तृत वर्णन करती है। इसमें सत्याग्रहगीता, उत्तर–सत्याग्रहगीता और ग्रामज्योति रखी जा सकती है।

(3) कथा साहित्य –

कथापंचक, कथामुक्तावली।

(4) यात्रा–वर्णन विचित्रापरिषद्यात्रा।

सभी कृतियों का सूक्ष्म परिचय इस प्रकार हैं –

1. तुकारामचिरतम् –

क्षमाराव द्वारा लिखित 'श्रीतुकारामचरितम्[22] नौ सर्गों का तक चरित्र काव्य है। चरित काव्य में वर्णन एवं घटनाओं की प्रधानता रहती है तथा अन्यवैशिष्ट्य अल्प रहता है। अतः इसमें तुकाराम जी के जीवन की प्रमुख परिस्थितियों एवं घटनाओं का ही वर्णन किया गया है।

2. श्रीरामदासचरितम् –

'श्रीरामदासचरितम्'[23] भी तत्रादेश सर्गों का एक काव्य है। इसमें अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं जैसे शिवाजी के साथ रामदास जी से भेंट आदि का वर्णन किया गया है।

3. श्रीज्ञानेश्वरचरितम् –

'श्रीज्ञानेश्वरचरितम्'[24] भी आठ सर्गों का एक चरित्र प्रधान आख्यान काव्य है। इसके अन्तर्गत प्रान्तीय मराठी भाषा में ज्ञानेश्वरी नामक ग्रन्थ की रचना करने वाले अद्भुत शक्ति से सम्पन्न सन्त ज्ञानेश्वर के कृत्यों का सुन्दर उल्लेख किया गया है।

4. मीरालहरी –

'मीरालहरी'[25] क्षमाराव ने श्रीकृष्ण की अनन्य उपासिका राजपूत राजकुमारी मीरा के जीवन का वर्णन किया है। यह अत्यन्त दुष्कर शार्दूलविक्रीडति छन्द में रचा गया है। प्रस्तुत काव्य–ग्रन्थ पूर्व खण्ड तथा उत्तर खण्ड इस प्रकार दो खण्डों में विभाजित है। सम्पूर्ण कृति में मीरा की भक्ति का ही विवेचन है।

5. शङ्करजीवनाख्यानम् –

'शङ्करजीवनाख्यानम्'[26] नामक प्रबन्ध काव्य भी क्षमाराव की लेखनी द्वारा प्रसूत है। यह सर्ग सप्तदश सर्गों या उल्लासों से पूर्ण है। इसमें क्षमाराव ने अपने पिता स्वर्गीय शंकर पाण्डुरंग पण्डित के जीवन की विविध बाँकी वर्णनात्मक झांकियां प्रस्तुत की हैं।

6. सत्याग्रहगीता –

क्षमाराव की कृतियों में राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत सर्व प्रथम महाकाव्य रचना 'शत्याग्रहगीता'[27] है। इसमें भगवद्गीता की भांति अठारह अध्याय है। इसमें महात्मा गान्धी जी के प्रभावोत्पादक राष्ट्रीय जीवन का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है किन्तु यह महाकाव्य कृति 'सत्याग्रहगीता' स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भिक दिनों में रची गयी थी। अतः इसमें गान्धी इरविन समझौते के बाद का इतिहास उपलब्ध नहीं होता है।

7. उत्तर–सत्याग्रहगीता –

चूंकि सत्याग्रहगीता में 1931 ई. तक का भारतीय इतिहास मिलता है। अतः क्षमाराव ने 'उत्तर–सत्याग्रह गीता' या 'स्वराज्यविजय' के नाम से ग्रन्थ लिखा। इसमें अध्यायों की संख्या 55 है। प्रत्येक अध्याय में कमशः प्रमुख भारतीय स्वतन्त्रता एवं सत्याग्रह से सम्बन्धित घटनाओं को चित्रित किया गया है।

8. ग्रामज्योति –

'ग्रामज्योति'[28] शीर्षक के अन्तर्गत क्षमाराव ने ग्रामीणजनों की देशभक्ति एवं वीरता को देखकर तीन कथाओं 'रेवा', 'कटुविपाक' एवं 'वीरभा' का संग्रह किया है। यह लोक कथायें ललित पद्य बद्ध होकर अनुष्टुप् छन्द में रखी गयी है। नारियों के ऊपर लाठीप्रहार एवं अबोध बालकों के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार देखकर नारी का हृदय करुणा से प्लावित है। जो यह स्वाभाविक है।

9. कथापंचक –

इन चरित प्रधान एवं कथानक प्रधान काव्यों के अतिरिक्त क्षमाराव ने कथा साहित्य का भी सृजन किया। 'कथापंचक'[29] नामक संग्रह में उनकी पांच कथाओं का संग्रह है। यह कथायें इस प्रकार हैं। (1) बालिकोद्वाह–सङ्कटम् (2) गिरिजायाः प्रतिज्ञा, (3) हरिसिंहः, (4) दन्तकेयूरम्, (5) असूयिनी। सभी कथाओं में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से सम्बन्धित तत्व को रखा गया है। ये कथायें पद्य में निबद्ध हैं।

10. कथामुक्तावली –

'कथामुक्तावली'[30] का संग्रह क्षमाराव की मृत्यु के बाद उनकी पुत्री लीलदयाल ने किया। इसमें पन्द्रह लघु–कथाओं का संग्रह है। ये सभी कथायें विभिन्न प्रान्तों से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक कथा में किसी न किसी नवीन तत्व का दिग्दर्शन कराया गया है। पंचदश (15) कथायें इस प्रकार हैं – (1) प्रेमरसोद्रेक, (2) तापस्य पारितोषिकम्, (3) परित्यक्ता, (4) मिथ्याग्रहणम् (5) वृत्त–शंसिच्छत्रम् (6) हैमसमाधिः (7) मायाजालम, (8) स्वाधिकाव्यामेहः (9) नजमदिलेलः (10) विधवोद्वाहसङ्कटम् (11) क्षणिकविभ्रमः (12) शरद्दलम् (13) निशीथावलिः (14) मत्स्यजीवीकेवलम् (15) आत्मनिर्वासनम् । सम्पूर्ण कथाओं का गद्य यत्र–तत्रदीर्घ समासमयी पदावली से परि पूर्ण हैं। कहीं–कहीं पर प्राचीन शैली का भी आश्रवण ग्रहण किया गया है।[31]

11. विचित्रपरिषद्यात्रा –

'विचित्रपरिषद्यात्रा'[32] में कवियित्री ने अखिलभारतीय राष्ट्रीय भाषा परिषद् के सम्मेलन में जाते हुए अपनी यात्रा का सरस एवं रोचकतापूर्ण वर्णन किया है। चूंकि इससे पूर्व वे किसी भी सम्मेलन में नहीं गई थीं, अतः उनके मन में व्याकुलता, चिन्ता एवं उत्कण्ठा होना स्वाभाविक था। सम्पूर्ण भारत के महान् विद्वान् एवं विभिन्न भाषाओं के विशेषज्ञ वहां पर विद्यमान थे। इस सम्मेलन में देने के लिए क्षमाराव ने एक भाषण भी तैयार किया था जो कि विचित्र परिषद् यात्रा नामक लघु पुस्तक के अन्त में प्रकाशित किया गया है।

लोकप्रिय संस्कृत भाषा में ही नहीं अपितु किसी भी भाषा मं सामान्यतः यह एद पद्य दोनों में ही रचना करने वाला कवि या लेखक दुर्लभ प्रतीत होता है, किन्तु क्षमाराव इसकी ज्वलंत उदाहरण है। उनकी 'कथापचंक' नामक रचना आधुनिक संस्कृत साहित्य को लोक कथा रचना विधाओं में एक नयी दिशा का संकेत देती है। इसमें आधुनिक भारतीय जीवन की ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं को कथारूप में प्रस्तुत किया गया है। अपनी इसी रचना पर इन्हें पण्डिता की उपाधि प्रदान की गयी और उन्होंने स्वयं यह अनुभव किया कि संस्कृत के अतिरिक्त किसी भी अन्य भाषा में वे भावाभिव्यक्ति करने में समर्थ न होतीं।

काव्य सौष्ठव –

संस्कृत कवयित्री पण्डिता क्षमाराव ने अपनी भावपूर्ण सरस नुभूतियों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। कवयित्री की काव्य रचना अतीत घटना के प्रति भावात्मक प्रतिक्रिया है। भावों के उन्मेष, भाषा की प्रांजलता, वाक्यों के सुष्ठु गुम्फन में प्रस्तुत कृति संस्कृत साहित्य में एक नूतन प्रणाली का सूत्रपात करती है, जो भावी संस्कृत कवियों के लिए आदर्श स्वरूप होगी।

सामान्यतः साहित्याचार्यों ने काव्य के मुख्य रूप से दो पक्ष माने हैं –भावपक्ष और कलापक्ष। इन दोनों पक्षों को क्रमशः अनुभूतिपक्ष और अभिव्यक्तिपक्ष भी कहते हैं।[33]

उपर्युक्त दोनों पक्षों का साहित्य में समानप से महत्व है। दोनों की आवश्यकता और अनिवार्यता के विषय में साहित्याचार्यों ने सविस्तार लिखा है। भावपक्ष का सम्बन्ध काव्य की वस्तु से होता है, अतः इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण वर्ण्य विषय आ जाता है। कलापक्ष का सम्बन्ध आकार या शैली से है। इससे कवि के वर्णन कौशल का ज्ञान होता है।

रसनिष्पत्ति एवं भावपक्ष –

क्षमाराव का भावपक्ष अत्यन्त ही व्यापक तथा समृद्ध है। जीवन मे जितनी भी भिन्न–भिन्न वैभिन्यपूर्ण परिस्थितियां तथा स्थितियाँ सम्भव हैं, उनमें से अधिकांश को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाने का प्रयास किया है। भावों का सम्बन्ध रसों से है। मम्मट आदि आचार्यों ने इनकी संख्या नो मानी हैं।[34]

कवयित्र पण्डिता क्षमाराव के काव्य में प्रायः सभी रसोंका सुन्दर परिपाक हुआ है। यद्यपि वे मुख्यरूप से शान्त एवं करूण रस की कवयित्री हैं। शान्त, करूण एवं भक्तिरस की शान्त, शीतल, मन्दाकिनी उनके सन्त काव्यों में, वीररस की ऐतिहासिक काव्य तथा राष्ट्रीय कहानियों में प्रवाहित हुई है। श्रृंगार की अभिव्यंजना मुख्य रूप से कहानियों में हुई हैं। यद्यपि गीतिकाव्य 'मीरालहरी' में भी श्रृंगार के संयोग वियोग दोनों पक्षों का उद्घाटन किया गया है।

श्रृंगार रस –

श्रृंगार को रसराज मानकर इसके दोनों ही पक्षों सम्भोग और विप्रलम्भ का कवियों ने तन्मयता से वर्णन किया है। क्षमाराव ने भी दोनों प्रकार के श्रृंगार रस चित्रण में कला कौशल का प्रदर्शन किया है। महाकाव्यों में, यदि वे चाहती, तो रूढ़िगत परम्परा का निर्वाह करते हुए श्रृंगार का विस्तार से चित्रण कर सकती थीं। परन्तु अपने काव्य नायकों की मुख्य शान्त प्रवृत्ति को देखकर उन्होंने उसे उपेक्षित ही रखा। श्रृंगार रस का चित्रण इसीलिए मुख्य रूप से उनकी कहानियों तथा गीतिकाव्यों 'मीरालहरी' में उपलब्ध है। क्षमाराव ने यद्यपि मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा है तथापि कहीं–कहीं उच्छृंखल एवं यथार्थ प्रेम से छींटे पड़ ही गये हैं। चुम्बन एवं आलिंगन तक का स्पष्ट वर्णन किया गया है। सम्भोग चित्रण पर गार्हस्थ्य जीवन का पावन आवरण झिलमिताता दृष्टिगोचर होता है। कहीं–कहीं युग भी अमर्यादित उच्छृंखलता के दर्शन भी होते हैं।[35]

'शरद्दलम्' कहानी में नायक तथा नायिक 'अमीना' तथा 'सुभान' इसी कोटि के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त 'परित्यक्ता', 'आत्मनिर्वासनम्', 'मायाजालम्' इत्यादि कहानियों में श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ हैं खण्डकाव्य 'मीरालहरी' में सम्भोग और वियोग दोनों प्रकार के रस के उदाहरण दर्शनीय है। सम्भोग श्रृंगार –

"तत्र स्थण्डिलशायिनीं नृपसुतां श्री–कृष्णभूतेः पुरः,
प्राणेशीमवलोक्य विस्मितमना मुग्धो बभूव क्षणम्।"

कृतित्व –

सेयं व्याजविनिद्रितेति कलय् प्रस्वेदकम्पाकुलो,
निःशब्दं स विनम्य चन्द्ररूचिरं तस्याश्चुचुंबाननम्।[36]

इस पद्य में मीरा आलम्बन है, कपटपूर्वक सोना यह उद्दीपन है, स्वेद, चुम्बनादि अनुभाव है, जड़ता संचारी है, प्रेम स्थायीभाव है।

वियोग श्रृंगार –

निर्यातेनिखिलेऽपि बन्धुनिवहे प्राप्ते निशीथे जगत्,
निःशेषसुखनद्रिया हृतमभूद्रेजे प्रशान्तिः परा।
शय्यागारमगात्रदा शशिकरैराभास्यमानं युवा,
सोत्कष्ठः परिकम्पमानहृदयः सर्वाङ्गरोमांचितः।।[37]

हास्य रस –

क्षमाराव के काव्य में हास्यरस का परिपाक अल्प हुआ है, परन्तु जो भी चित्रण हुआ है, वह श्लाघ्य है। मुख्य रूप से उनके काव्य में व्यंग्यपूर्ण शिष्ट हास्य के दर्शन होते हैं।

"गर्भाधानविधेर्महोत्सवदिने चित्रध्वजैर्मण्डितं,

रेजे रंजितलोचनं पुरवरं सानन्दसर्वपजम्।
भूरिद्रव्यसमर्चितद्विजवराशीर्भिः प्रकतिध्वानितं,
संगीतस्वरमाधुरीपरवशं निष्पन्दगोष्ठीशतम्।।"[38]

प्रस्तुत श्लोक में ब्राह्मणजन जितनी अधिक दक्षिण प्राप्त करते हैं, उतने ही उच्च स्वर से आर्शीवाद देते हैं। उनकी इस क्रिया से हास्यरस की सृष्टि होती है। यहां ब्राह्मण आलम्बन विभाव, जोर–जोर से निरन्तर बोलना उद्दीपन, श्रोताओं के हास्ययुक्त मुख, संकुचित आंख, अनुभाव तथा गौरव की रक्षा के लिए श्रोताओं के द्वारा अपनी मुखाकृति को छिपाना अवहित्था नामक संचारी भाव है।

'कथामुक्तावली' में संकलित कहानी 'हैम–समाधिः' मे नाक में घ्राणपात्र लेकर पान चबाती हुई वृद्धा की मूर्ति पाठक को हसने के लिए विवश कर देती है।[39]
सन्त काव्य 'तुकारामचरितम्' में 'ननुभ्रमररूपिणः पितर एव दृष्टा इमे।[40]

इससे स्पष्ट है कि हास्यरस जो मर्यादाबद्ध है, के छींटे पर्याप्त मात्रा में काव्य में छिटके हुये हैं।

करूणरस –

पण्डिता क्षमराव की अधिकांश रोचक कहानियों में करूण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा मे हुई है। इन जीवन्त कहानियों में करूणा की जो धारा अबाध गति से प्रवाहित हुई, वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रायः सारा कथानक करूणारस से ओत–प्रोत रहता है। कहानी के अवसान पर पाठक के हृदय में एक उदासीनता छा जाती है। 'परित्यक्ता– कहानी[41] पूर्णतः करूण रस प्रधान है। यों तो सभी कहानियों में करूण रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है तथापि प्रस्तुत कहानी आदि से अन्त तक करूण रस मय है।

'प्रेमरसोद्रेक'[42] कहानी में अस्मा के पिता के प्रति जहां पाठक को प्रारम्भ में क्षोभ होता है वहीं अन्त में उसकी दीन–हीन दशा पर करूणा का प्रसार भी सहज हो जाता है। 'दन्तेकेयूरम्' कहानी का नायक गणु मद्यपान के नशे में खो जाता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य के ज्ञान से रहित, एकमात्र सन्देह के वशीभूत हो वह अपनी पत्नी का वध कर देता है, परन्तु जब उसे चेतना आती है तो वह पश्चाताप करता हुआ विलाप करता है। उसकी इस अवस्था का ध्यान कर हृदय करूणा से आप्लावित हो जाता है –

"हा हतोऽस्मि धिगेनं मा नीचानामधमाधमम्।
इति पश्चाद्गणुस्तप्तः करूणं भर्यं देवयत्।।"[43]

कहानियों के अतिरिक्त महाकाव्यों, गीतिकाव्यों में भी करूण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। यथा – 'ज्ञानेश्वर–चरितम्' में सन्त ज्ञानेश्वर से समाधि लेने पत 'नामदेवादि' सभी सन्त विलाप कर रहे थे, जिससे स्वतः ही करूण रस रूपी निर्झरिणी प्रभावित हो उठती है।[44]

'स्वराज्यविजयः' महाकाव्य में गान्धीजी के निर्वाण का वर्णन तथा देश–विदेश के

नेताओं द्वारा भेजी गयी शोक श्रद्धांजलियां इस हृदय को द्रवीभूत कर करूण रस के प्रसार में सहायक हुई हैं, राम नाम लेते हुए गान्धी जी जब गोली के आघात से पौत्री की गोदी में सिर गिरा देते हैं, तो उनकी पौत्री के साथ ही काव्य का पाठक भी उस दृश्य की यथार्थपूर्ण कल्पनाकार करूण से ओत–प्रोत हो जाता है।

यथा –

"धातुको नाथूरामास्यः स्थितोऽयं निश्चलस्ततः।
घूर्णन्नेत्रान्तरे गान्धी रामरामेत्युदैरयत्।।"[45]

भक्तिरस प्रधान काव्य 'मीरालहरी' में भी कई स्थलों पर करूण रस की झांकी प्राप्त होती है।

"तत्रोपेत्य सवत्लभा सपदि मत्पुत्रीकृतं शावकं,
निष्पिष्टं तरूशाखया पतितयाद्राक्षं भुमूर्षाकुलम्।
मात्रा नेत्रजलमृता यमकरादाकृण्य वा रक्षितुं,
गाढ़ाश्लिष्टकलेव्र मृदुवपुर्लावण्य चेतो हरम्।।"[46]

प्रस्तुत पद्य में शावक आलम्बन, व्याकुलता उद्दीपन नेत्रों से जल बहना तथा आलिंगन करना अनुभाव, आवेग संचारी भाव है। स्थायीभाव शोक है।

रौद्र रस –

क्षमाराव के काव्य में रौद्र रस का चित्रण यद्यपि कम पाया गया है, तथापि कुछ उदाहरण प्राप्त हैं। रौद्ररस के साथ अद्भुत रस की भी पुष्टि की गयी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"ऊचे श्रोत्रनिपीतवाक्यगरलो मोह्यपमानो युवा,
धिक् तां धर्मपतिदुधामधमजां धिग् रत्नसिंह च तम्।
धिक् पुस्त्वं मम धिक् पितुः प्रभुपदं धिक् सार्वभौमाश्रय,
धूर्ताश्लिष्ट विदुष्ट दुर्वपुरदः खड्गो यमाश्लिष्यतु।।"[47]

प्रस्तुत (इस) पद्य में शत्रुभूता मीरा आलम्बन है। उसको धूर्तो के प्रति आसक्ति उद्दीपन है। सबको धिक्कार अनुभाव है। मोह, उग्रता संचारीभाव है। क्रोध स्थायीभाव परिपुष्ट होने से इसमें रौद्र रस है।

वीररस –

आलम्बन और उद्दीपन के भेद से वीररस के मुख्यतः चार भेद माने जाते हैं –

(1) दानवीर (2) धर्मवीर (3) युद्धवीर और
(4) दयावीर

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव के काव्यों में चारों प्रकार के रसों का परिपाक हुआ है। विशेषकर सत्याग्रहीता तथा राष्ट्रप्रेमयुक्त कहानियों में वीररस पाया जाता है। किन्तु इनका वीररस इतना ओजस्वी नहीं कि सुनते ही हृदय में आग लग जाये, इतना फड़कता

हुआ हीं कि कायर भी वीर बना जो। इनके युद्ध वर्णन में कोमलता है, ओज नहीं। कारण इनके समय में शान्त युद्धों का बोलबाला था, जिसका शास्त्रों की झनझनाहट से कोई सम्बन्ध नहीं था। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

अयि मो बान्धवा मा स्म भैष्यस्मिन् प्रस्तुते मनाक्।
प्राणेभ्योऽपिहि में प्रेयान मातृभूमेः सुखोदयः।।
खण्डनं स्वशरीस्य करिष्येऽहं महस्त्रशः,
न तु स्वप्नेऽपि विच्छेदं चिन्तयिष्ये जनुर्भुवः।।[48]

वीभत्स रस –

वीभत्स रस का वर्णन उनके काव्य में कम पाया जाता है तथापि यत्र–तत्र कुछ उदाहरण मिल ही जाते हैं। यथा –

'परपुरूष सुभान में आशक्त पति एवं बच्चों को छोड़कर जाने वाली अमीना के प्रति हृदय उसके नैतिक पतन पर घृणा से भर जाता है। यहां वीभत्स रस का हृदयावर्जक परिपाक हुआ है।[49]

अद्भुत रस –

पण्डिता क्षमाराव के काव्यों में अद्भुत रस की सुन्दर और पर्याप्त मात्रा में अभिव्यंजना हुई है। विशेष रूप से उनके सन्त काव्यो में इसकी पुष्टि हुई है। श्रीज्ञानेश्वरचरितम् काव्य में ज्ञानेश्वर अपने पितरों और देवताओं को भोजन के लिए आमंत्रित करते हैं। उनके आमन्त्रित करने पर पितृगण और देवता अपने आस पर सिथत हा भोजन कर चले जाते हैं। ज्ञानेश्वर की इस अलौकिक शक्ति से सभी जन स्तम्भित रह जाते है –

विस्मापितः सार्धमिहं स्ववंश्यैरागन्तुकैश्चाप्युपभुज्यसग्धिम्।
अन्तर्बभूवुर्निलयं विहाय जडीकृतांस्तांश्च विलुप्तवाचः।।[50]

शान्तरस –

मीरालहरी, श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, श्रीतुकारामचरितमानस काव्यों में नायक की मोक्ष प्राप्ति ही शान्तरस का परिपाक प्रकट करती है। सम्बन्धित काव्यों के नायक और घटनायें शान्ति का प्रतीक हैं। ज्ञानेश्वर के समाधिग्रहण करने तथ मीरा के सदेह स्वर्ग जाने पर विस्मय के साथ जो शान्ति प्राप्त होती है, वह शान्त रस की अभिव्यंजना में सहायक है।

तस्मिन् पुण्यमदे तथा हि हसितस्वराज्यसम्पन्मदे,
गन्धवैरूपवीणिता करतलन्यस्ताम्बुजोद्भासिनी
शुभ्राङ्गी विबुधेन्द्रसंस्तुतगुणा शीर्षप्रभामण्डला,
नृत्यन्ती बत मुक्तभूतलमसौ विष्णोः पदेऽन्तर्दधे।[51]

भक्ति एवं वात्सल्य रस –

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव के काव्य में इन दोनों रसों की सुन्दर परिपाक हुआ है। ज्ञानेश्वर और तुकाराम की प्रभु के प्रति अनन्य भक्ति तथा शिवाजी का गुरू रामदास के प्रति अडिंग विश्वास भक्तिरस का परिपका करते हैं।

विवेच्य कृति 'मीरालहरी' तो पूर्णतः भक्तिरसपूर्ण काव्य है। कृष्ण प्रेम की अनन्य साधिका मीरा को अपने आराध्य कृष्ण के प्रति अडिंग एवं अनन्य भक्ति है। कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख भाव–विभोर होकर मीरा मीरा जो प्रार्थना करती है, वह भक्तिरस पूर्ण है –

दीनान् पाहि विभो त्वमेव शरणं नान्यः शरण्योऽस्ति में,
प्रार्थ्यैवं विनता प्रजातपुलका प्रोदीक्ष्ण मूर्तेर्मुखम्।
ईषत्स्मेरमिव स्थितं परवशा वाष्पायमाणेक्षणा,
ब्रह्मानन्दमहार्णवे क्षणमहो भग्नेव राराजते।।[52]

'श्रीरामदासचरितम्' काव्य में मुनि एकनाथ प्रभु के अवतार 'रामदास' को ज्ञानचक्षु से जानकर शिशु रामदास को देखकर वत्सलभाव से आनन्द विभोर हो जाते हैं। आनन्दातिरेक में वे जिस प्रकार के भाव और क्रिया कलाप करते हैं, वे वात्सल्य रस की सुन्दर सृष्टि में सहायक हैं –

क्रमेण संभाव्य तपोधनस्तान् यथाविधि द्वादशमांसकल्पम्।
शिशुं गृहीत्वा च मुदोपगृह्यमुहुर्महुस्तच्चुबुकं चुचुम्ब।।[53]

कलापक्ष –

संस्कृत कवयित्री पण्डिता क्षमाराव का कलापक्ष सहृदय को चमत्कृत तथा आनन्दित कर देता है। इनके कलापक्ष के अन्तर्गत रीति, वृत्ति, गुण, छन्दोऽलंकारयोजना, भाषा–शैली आदि सभी अपरिहार्य अंग अत्यन्त सुन्दर पाये जाते हैं, जिनका संक्षेप में यहां विवेचन उनकी कृतियों के आधार पर किया जा रहा है।

रीति, वृत्ति एवं गुण –

लोकप्रिय कवयित्री क्षमाराव के काव्य में यद्यपि तीनों प्रकार की रीतियों का पालन किया गया है, तथापि मुख्य रूप से उन्होंने वैदर्भी रीति को अपनाया है। डॉ. गायत्री त्यागी[54] की मान्यता है कि उन्होंने महाकाव्यों में भी वैदर्भी रीति अपनायी है। ऐतिहासिक काव्यों तथा कहानियों में गौड़ी तथा पांचाली रीति के भी दर्शन होते हैं।

नायक के अनुकूल स्वभाव को वृत्ति कहते हैं । आचार्यों ने वृत्ति के चार भेद किये हैं 1 कैशिकी वृत्ति, 2 भारती वृत्ति, 3 सात्वती वृत्ति, 4 आरभटी वृत्ति ।

जिस प्रकार क्षमाराव ने मुख्य रूप से वैदर्भी रीति की अपनाया है, उसी प्रकार उन्होंने कैशिकी, भारती और सात्वती वृत्ति को मुख्यतः अपनाया है । अद्यपि आरभटी वृत्ती का भी सर्वत्र अभाव नहीं पाया जाता है । वस्तुतः ये शान्त, करूण वीर ओर

अद्‌भुत रस की कवयित्री है । अतः अपनी वृत्ति के अनुरूप ही । उन्होंने रीति और वृत्ति अपनायी है ।

मानवीय सद्‌गुणों का भी साहित्य में निजी महत्व और अस्तित्व है । गुणों की संख्या के विषय में आचार्यों में गहन मतभेद है । आ. भरत ने गुणों की संख्या 10 मानी है । दण्डी, वामनादि आचार्यों ने भी इसका समर्थन किया है । परन्तु परवर्ती आचार्यों ने इन सबको तीन गुणों में ही समाहित कर मुख्य रूप से तीन ही गुण माने हैं ।

कवयित्री क्षमाराव के काव्य में तीनों ही गुणों का समावेश हुआ है । तथापि माधुयं तथा प्रसाद गुण नके काव्यों की प्रमुखता है । गीतिकाव्य 'मीरालहरी' में क्षमाराव ने पांचाली रीति, कैशिकी वृत्ति तथा माधुयं और प्रसाद गुण को प्रधानता दी है ।

"स्नाता शीतसुगन्धिनिर्मलजले पीताम्बरंबिभ्रती,
धात्रीग्राहितगन्धवासरू चिरा सीमन्तभूषोज्वला ।
वासान्तः सुविविक्तमंजुलपदे विन्यस्त मूर्ति प्रभोः,
मीरा प्राकमत प्रशान्तमन सा श्रीकृष्णपूजाविधिम् ।।"[55]

ऐतिहासिक महाकाव्य सत्याग्रहगीता, उत्तर–सत्याग्रहगीता और स्वराज्य विजयः, जीवनी – शंकरजीवनाख्यानम् तथा ग्रामज्योति की रचना में भारती वृत्ति, वैदमी और गोड़ी रीति तथा प्रसाद और ओज गुण का प्राचुर्य है । इनका कथानक राष्ट्रीय भावना तथा देश प्रेम से सम्बन्धित है । यथा –

"सुखावासोचिताभ्यासः स्वभ्यासोचितसंस्कृतिः ।
संस्कृतेः सदृशारम्भः शंकर शङ्करोऽभवत् ।।"[56]

सात्वती वृत्ति का प्रयोग क्षमाराव ने एतिहासिक काव्य के साथ–साथ धार्मिक महाकाव्यों में भी किया है । यथा –

"यावद् द्विजैनासतघूर्ण प्रहारो दण्डेन चत्रे महिषस्यपृष्ठे ।
सुस्त्राव तावद् रूधिरप्रवाहो ज्ञानेश्वरस्य क्षतपृष्ठदेशात् ।।"[57]

आरभटी वृत्ति, ओजोगुण तथा गौड़ी रीति उनके ऐतिहासिक काव्यों, देश प्रेम युक्त प्रभावोत्पादक कहानियों तथा गीतिकाव्य मीरालहरी में भी उपलब्ध है ।

"ऊचे श्रोत्रनिपीतवाक्यगरलो मोमुह्यमानो युवा,
धिक्तां धर्मपतिदुघामधमजां धिग् रत्नसिंह च तम् ।
धिक् पुंस्त्वं ममधिक् पितुः प्रभुपदं धिक् सार्वभौमाश्रयं,
धूर्ताश्लिष्ट विदुष्ट दुर्वपुरदः खड्गोऽयमाश्लिष्यतु ।।"[58]

रौद्ररसयुक्त आरभटी वृत्ति ओजगुण तथा गोड़ी रीति का यह सुन्दर उदाहरण है ।

"एकादशे दिने चाहं मासस्य सुनिश्चितः,
राजशासनभंगाय प्रस्थास्ये सानुयात्रिकः ।
अधर्म्येषु विधानेषु पापिष्ठो लावणों सहानुगैः ।।"[59]

वह सीररस के साथ आरमटी वृत्ति ओजोगुण समन्वित है ।

शब्दशक्ति–अभिधा, लक्षणा, व्यंजना व ध्वनिकाव्य –

"तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा" अर्थात् प्रसिद्ध अर्थ का अवबोध कराने के कारण अभिधा शक्ति को अग्रिमा (मुख्य) शक्ति कहते हैं । यथा –

"अस्ति स्वर्णपुरं नाम बार्दोलिविषयान्तरे ।
ग्रामः सर्वजनैस्त्यक्तः कुटुम्ब द्रयमन्तरा ।।"[60]

प्रस्तुत श्लोक में कवयित्री बिना किसी कृत्रिमताके सरल, सहज शब्दों द्वारा अपने विषयों का प्रभावोत्पादक प्रतिपादन करती है । ज्ञानेश्वर–चरितम् में 'वद्राज सार्धम् गृहिणा तदीयं निकेतनं निर्झरिणी तटस्थ' में निर्झरणी तटस्थ का प्रयोग भी लाक्षणिक न होकर अभिधा–वृत्ति परक हैं ।

लक्षणा –

पण्डिता क्षमाराव ने अपने काव्यों में लक्षणा का भी प्रयोग किया है । उन्हें लक्षणा के प्रयोग में काफी सफलता भी मिली है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

"कुक्षेस्तवाविर्भविताऽऽत्मजो यस्तं त्वस्तुलोद्वारकमेव विद्धि ।
प्रकाशयेद्यो निविडान्धकारनिमग्नविश्वं निजतेजसैव ।।"[61]

यहां 'निबिड़ान्धकारनिमग्नविश्व', 'त्वत्कुलोद्वारकमेव' – पद लाक्षणिक है। अन्धकार में निमग्न होना सम्भव ही नहीं है। अतः मुख्यार्थ का बाध होने से लक्षण के द्वार अज्ञान अवृत्त संसार यह अन्यार्थ की कल्पना कर, अवरोध दूर किया जाता है।

व्यंजना शक्ति अथवा ध्वनिकाव्य –

अभिधा और लक्षणा के विराम लेने पर जो एक विशेष अर्थ निकलता है, अर्थात् प्रतीयमान रहता है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं और जिस वृत्ति या शक्ति के द्वारा यह अर्थ प्राप्त होता है। उसे व्यंजना वृत्ति कहते हैं। आचार्यें ने तीन प्रकार की ध्वनि मुख्य मानी है। शेष ध्वनियों का उसी में पर्यवासन कर दिया है। ये ध्वनियां हैं –

(1) रसध्वनि (2) वस्तुध्वनि (3) अलंकारध्वनि

क्षमाराव के काव्य में तीनों प्रकार की ध्वनियां प्राप्त हैं।

क्रमशः कतिपय उदाहरण दर्शनीय है।

रसध्वनि –

'मृष्टान्नं परिभुज्य बन्धुनिकारा यावत्प्रमोमुथते,
तावत्पंचशराग्निना नृपतुतस्तीव्रेण दन्दहृयते।
मीरा नन्दसुतं तदेक हृदयाऽऽनन्देन दाध्यायते,
वैषम्य रसयोरिदं सहचरी संचिन्त्य दोदूयते।।[52]

उपर्युक्त श्लोक में श्रंगार और शान्तरस की व्यंजना हुई है।

वस्तुध्वनि –

जब व्यांग्यार्थ केवल वस्तु रूप मे रह जाता है, वहां वस्तुध्वनि मानी जाती है। निम्न श्लोक पुष्टि के लिए पर्याप्त है –

"जीवन्तोऽपि न जीवन्ति परदास्यधुरन्धराः।
पारतंत्र्यमुदाराणां मरणादतिरिच्यते।।"[63]

प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि जीवित होते हुए भी हम जीवित नहीं है। ऐसा जीवन व्यतीत करने वालों को धिक्कार है, यही अर्थ व्यंजित होता है। 'मीरालहरी' का यह श्लोक भी द्रष्टव्य है –

"सर्वक्षत्रविडम्बनेयमहहा क्षत्राङ्गनामप्यसौ,
देवोपायनकैतवान्नरपशुः स्पृष्ट्वा पदे धर्षयेत्।
जीवन्तोऽपित वयं मृता हि यदयं भूयः स्वदेशं गती,
धिक् क्षत्रान् यदरिस्सुरार्चनगृहे दृष्टोऽपि यैर्नक्षतः।।"[64]

देवालय में प्रवेश करने पर भी हमारे द्वारा मारा नहीं गया, अत हमारे क्षत्रियत्व को धिक्कार है यह अर्थ व्यंजित हुआ। हम जीवित भी मृत ही हैं। इस विरोधाभास अलंकार के द्वारा वध्य शत्रु भी मुक्त हो गया है। अतः हमारा जीवन व्यर्थ है यह वस्तु रूप ध्वनि व्यंजित होती है।

अलंकार ध्वनि –

जिस स्थल पर व्यंग्यार्थ अलंकार मूलक होता है, उसे अलंकार ध्वनि कहते हैं। निम्नलिखित श्लोक अलंकार ध्वनि का उपयुक्त उदाहरण है –

आराद्भूरिमनोरमा वसुमती रेजे सपुष्पोद्गमा,
वल्गन्ति स्म विकासिमपद्मवदनाः श्रीपद्मिनीनां गणाः।
सौभाग्याङ्कपरागयुक् सुमनसस्तेनुः प्रियान्दोलनां,
संचेरु, प्रमदावनेषु मधुपाः पूर्वर्तुदिव्योत्सवे।।[65]

अलंकारयोजना –

सुधी साहित्याचार्यों ने साहित्यशास्त्र में अलंकारों को भी विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान दिया है। साहित्य को सौन्दर्य प्रदान करने वाले धर्मों के रूप में[66] प्राचीन काल से अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ आचार्यों (भामह, दण्डी, वामनादि) ने इन्हें काव्य का प्राणभूत तत्व माना है, तथापि उसका महत्व स्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि अलंकार शब्द और अर्थ की शोभा को बढ़ाने वाले अस्थिर धर्म है अर्थात् काव्य में उनकी स्थिति हो भी सकती है और नहीं भी।[67]

अतः जब तक अलंकार काव्य में रमणीयता की वृद्धि करते हुए भारत स्वरूप नहीं बनते तब तक सौन्दर्यवाहक ही है।

संस्कृत कवयित्री क्षमाराव यद्यपि अलंकारवादी कवयित्री नहीं है तथपि उनके

काव्यों में भिन्न–भिन्न अलंकारों की सुन्दर छटा देखते ही बनती है। उनका अलंकार विधान बिना किसी कृत्रिम प्रयास के सहज रूप में किया गया है। किसी चमत्कार प्रदर्शन की भावना से उन्होंने अलंकारों का प्रयोग नहीं किया, अपितु उचित अनुचित अलंकारों के प्रयोग से शैली को उदात्त एवं प्रभावपूर्ण बनाया है। उनके काव्य में प्रायः सभी अलंकारो–शब्दालंकारों और अर्थातलंकारों का समुचित प्रयोग हुआ है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, द्रष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, सहोक्ति आदि अलंकारो का प्रधानतः प्रयोग किया है, उपमा अनुपास तो प्रतपद लक्षितहै। उन्होंने अपनी उपमाओं के उपादान सब स्थानों से ग्रहण किए है। पौराणिक आख्यान, शास्त्र, इतिहा और प्रकृति के विस्तृत अंचल से अनेक सटीक उपमायें ग्रहण की गयी हैं। कालिदास के पश्चात् सम्भवतः वे प्रथम आधुनिक युगीन कवयित्री हैं। जिन्होंने उपमाओं का इतनी बहुलता एवं विविधता से प्रयोग किया है। जिस भाव तथा जिस विचार जिस उक्ति को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने उपमा का प्रयोग किया है, उनका संयोग सफल हुआ है। गद्य और पद्य दोनों अलंकारों की छटा समान रूप से दर्शनीय है। यथा कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

अनुप्रास –उपमा, अनुप्रास तो उनका बहुल प्रयोग अलंकार है, जो रचना मे विलक्षण, सरल, सुभग, माधुर्य का संचार करते हैं।

1. वैराग्यवृत्तिं विमलां विवेकजन्यां कुमारस्य युवा विलोक्य।[68]
2. गौरीगिरीशाविव शीलशैले।[69]
3. कुंचित कुंचितकचकलापः सम्प्रति कर्तितसरलकेशः।[70]
4. धवलसुधाकरसुधाधारा धवलिता विभावरी।[71]

वक्रोक्ति –

इत्त्युद्धुष्यगते पुनः स्ववनितां वादस्तयोरित्यभूद्,
वंशध्वंसकरी बत त्वमसि नः स्वामिन् मया किं कृतम्।
भ्रष्टाासि त्वमिह प्रभो कथमिदं म्लेच्छेन संभाषणाद्,
धर्मात्मा ह्ययमाः प्रशंससि शठं किं देवभक्तः शठः।।[72]

धूर्त की प्रशंसा करती हो कुमार के इस कथन में काकुवक्रोक्ति है –

प्रतीप –

दृष्टश्चेन्महिमा विभारेणुरिदं विश्वं विभात्यात्मनस्तत्,
नेत्रस्य सुचारुता यदि मद हा पुण्डरीक क्व ते।
तत्तेजो यदि का सहस्त्रकर ते तेजस्विताथाः कथा,
नित्यानन्दमयाननं यदि विधो कि शब्दसाम्येन ते।।[73]

प्रस्तुत श्लोक में श्री कृष्ण की महिमा वर्णन करते हुए अन्य लोक प्रसिद्ध उपभाओ कमलादि को निष्फ बताने के कारण प्रतीपालंकार है।

उपमा –

कहीं कहीं क्षमाराव ने युगानुरूप यथार्थ कल्पनाओं के द्वार उपमान ढूंढकर काव्य को अलंकृत किया है।

"अथ सज्जीकृते सम्यक् कार्यसंचालनक्रमे,
भल्लूकः शिवपूायमिवाङ्ग्लः कश्चितागतः।।"[74]

शुभकार्य में विघ्नकर्ता किसी आंग्ल की उपमा मल्लूक के साथ सार्थक एवं सारगर्भित हैं क्योकि शुभकार्य में मल्लूक का दर्शन अशुभ माना जाता है। जेलों बन्दी देशभक्तो को राज्यकर्मचारी विभिन्न प्रकार से पीड़ित करते हैं जिस प्रकार अशोक वन में राक्षसगण सीता को, उपमा सार्थक प्रभावोत्पादक है –

बन्दीजनः पुरा रक्षैस्तर्ज्यतेस्म मुहुर्मुहुः
यथाशोके वने सीता बहुधा रक्षसां गणैः।[75]

रूपक –

तद् ग्रन्थरूपं नवीनतभवनों विचाचाररूपे सुचिरं प्रताप्य।
सुस्वादु चामोदयुतं जनानां मयाकृतं ज्ञानघृतं सुपेयम्।[76]
हिंसाद्रुमं समुच्छिद्य तत्स्थाने प्रेमवल्लरीम्।
आरोपयेत्ततः सापि प्रशान्तिफलदा भवेत्।।[77]

उत्प्रेक्षा –

प्राक्षाल्य प्रतिमां स्वमानसपतेर्गोपालचूड़ामणः,
नेपथ्य तनुते सगन्धिनियैरालिप्य यत्नेन सा।
सौवर्णामबररत्नभूषणसुभस्त्रग्भिश्च तां,
श्रीकृष्णप्रभुकीर्तनामृतसरोगर्भान्तरे लीयते।।[78]

इस पद्य में कीर्तनामृतसरः में रूपक तथा लीयते में गम्योत्प्रेक्षा है।

उदाहरण –

'फणी यथा जांगलिकाद्विमुक्तोद्रुतं द्रवत्येव यथा च कीरः।
अपासृतः पंजरतो ऽयेत तथा च स त्यक्तगृहः प्रतस्थे।।[79]

अर्थान्तरन्यास –

प्रसूगिरां पारगतं कुमारकंक्षमो हमध्यापयितुं न सम्प्रति।
तनुप्रकोशोहि तनूनपात्कणो नमस्खरं द्योतयितुंक्षमेत् किम।।
स्वयं समस्तागमविद् भवेदयं किमस्त्यसाध्यं वद भद्र। धीमताम्।
न किं कपीन्द्रश्चतुरो विनोदुपं मरूत्सुतो लंघिताषान्महार्णपम्।।[80]

प्रस्तुत प्रथम श्लोक में रामदास को शिक्षा देने में गुरू की असमर्थता का समर्थन विशेष वाक्यों से अर्थात् क्य छोटी सी चिंगारी आकाश को दीप्त कर सकती है, इससे किया है। द्वितीय पद में विशेष का समर्थन सामान्य से किया गया है।

विशेषोक्ति –

स्वातन्त्र्य परमं प्रशस्तमनसा पत्या स्वयं प्रार्पिता,
सा निर्बाधतया चचार नियमैस्तावत्सुतीवतपः।।
यावज्जीवितसूत्रमैहिक पतेरत्रोटि दैवेच्छया।

सौभाग्यं समरक्षि दिव्यदरित व्यासङ्गतोऽस्थाः पुनः।।[81]

यहां सौभाग्य हानि अर्थात् पति मरण होने पर भी सौभाग्य की रक्षा हो गई, इस कथन से विशेषोक्ति है।

विभावना –

स्वगुणविभवाद्भद्रे साधुर्भवत्यति दुःखगम्।
वचनपटुतैवास्ते हेतुं शुकस्य हि बन्धने।।[82]

यहां विरोधी कारण गुण वैभव से होना दुःख होना कार्य कहने के कारण विभावना अलंकार है।

छन्दोऽलंकार–योजना –

संस्कृत कवयित्री पण्डिता क्षमाराव ने भावानुरूप छन्दों का सुन्दर प्रयोग किया है, जिसमें इनके पिंगलशास्त्र के गहन अध्ययन का पता चलता है। अधिकाशतः कवयित्री ने अनुष्टुप छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु अन्य अनेक वर्णिक छन्दों का भी भावानुकूल प्रयोग हुआ है। कतिपय छन्दों के उदाहरण यहां प्रस्तुत होते हैं –

अनुष्टुप् –

अस्ति स्वर्णपुरं नाम बार्दोलिविषयान्तरे।
ग्रामः सर्वजनैस्त्यक्तः कुटुम्ब द्वयमन्तरा।[83]

धार्मिक महाकाव्यों में उन्होंने समवृत्त तथा अर्द्धसमवृत्त छन्दों का प्रयोग किया है। प्रसंग की आवश्यकतानुसार उन्होंने एक ही सर्ग में बीच में भी छन्द परिवर्तित किया है। यथ तुकारामचरितम् के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में तथा अन्त में शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया गया है और मध्य में उपजाति छन्द का –

शिखरिणी –

महाराष्ट्रेषु प्रागजनि शरदां यस्त्रिशतकात्,
तुरीयो वर्णानापि तदितरैः पूजितगुणः।
तपस्वी निस्वोऽपि क्षितिपतिशिरोभ्यर्चितपदः,
तुकारामास्सोऽयं जयति श्रृणुतैतस्य चरितम्।।

उपजाति –

इदं हि राष्ट्रं महतां मुनीनामासीत्पुरा पावनजन्मभूमिः।
ज्ञानेश्वरायाः किल संयमीन्द्रास्तवदध्यवात्सुस्तपसां विभूत्यं।।[84]

श्रीरामदास चरितम् तथा श्रीज्ञानेश्वरचरितम् काव्यों में इन छन्दों के साथ साथ कुछ अन्य छन्दों का प्रयोग भी किया गया । कुछ उदाहरण दर्शनीय है –

प्रहर्षिणी –

विश्लिष्टः परभृतवत्स्व मातृपक्षाद्
बाल्याद्यः श्रुतिपठनैः सुभावितात्मा।

संशुद्धो दृढ़नियमैरूवास दया,
माजीवं सह मुनिना उद्धवारव्यः।।[85]

द्रुतविलम्बित –

अनुभवात्प्रवदन्ति पुराविदो यसदसकृतपुरतो ही महात्मनाम्।
निशि दिवाप्यथवाविरभूत्पुरा निगदितुं सह तैः कुलदेवता।।[86]

उपेन्द्रवज्रा –

दिने–दिने वृद्धिमियाय संख्या कलैव चान्द्री यतिवयमाजाम्।
द्विषोऽपि मित्राणि बभूवुरस्य क्षमेव जैत्री न गुणः क्षमायाः।।[87]

वंशस्थ –

ततो हि नारायण एष पंचषभास्वधीती शिशुशिक्षणालय।
न केवलं छात्रगणं स्वयाधिया लघूचकार स्वगुरूं विचक्षणं।।[88]

वसन्ततिलका –

कुल मिलाकर इन्हीं छन्दों का प्रयोग क्षमाराव ने किया है। इनमें उपजाति, वसन्ततिलका उनके मुख्य छन्द है। यथा –

विश्वम्भरस्य समभूदथ पौत्रपौत्रो,
वंशार्णवात्पुरुषरत्नमुदारकीर्तिः।
विप्रेतरोऽपि कुलमुन्नतिमागमय्य,
सिद्धोऽयमद्य धुरि तिष्ठति योगभाजान्।।[89]

भाषा शैली –

इस लोकप्रिय कवयित्री का भाषा पर असाधारण अधिकार था । इनकी भाषा–शैली इनके अद्‌भुत प्रतिभा चातुर्थ, गहन अध्यनशीलता, भावानुकूल घटना की योग्यता की परिचायक है, जो सतत साधन और तपस्या का फल है । उन्होंने आधुनिक युग में उपेक्षित भाषा को रचना का माध्यम बनाया । अपनी योग्यता, प्रतिभा और चातुर्य से आधुनिक रचना विधान के अनुरूप रचना करके अन्य भाषाओं के सम्मुख संस्कृत भाषा की सजीवता की पुष्टि की ।

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव ने अर्थ के अनुरूप ही शब्दों का समुचित चयन किया है । उनकी रचनाओं में शब्द और अथ भाव तथा भाषा का रूचिर सामंजस्य हुआ है । प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर नपा–तुला है । शब्दावली सुमधुर है । भवानुकूल सरल और क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया है । मार्मिक भावों के चित्रण में भाषा सरल तथा सीधी है । स्वतंत्रता आन्दोलन में पुलिस की मार से आहत एक स्त्री झण्डा न छोड़ने के कारण को बताती हुई कहती है ।

"सा च प्राह पताकेयं नासा ग्रामस्य कीर्तिता ।
कथं भद्रे त्यजेयं तां स्वयं ग्रामनिवासिनी ।।"[90]

ध्वजा गांव की पताका है । इस भाव और भाषा को लेखिका ने शब्दों के आडम्बर

के जंजाल में न फंसकर ज्यों का त्यों सीधे सरल शब्दों में व्यक्त किया जिससे पाठक पर मार्मिक प्रभाव पड़ता है ।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन से आन्दोलित होने वाली क्षमाराव की प्रथम रचना है । परन्तु प्रथम प्रयास में ही कितना अविच्छिन्न कवि–त्प्रवाह, कितने स्पष्ट और विशुद्ध विचार है, इसके प्रमाण के लिए सत्याग्रहगीता के प्रारम्भिक श्लोक दर्शनिक है –

"गम्भीरो विषयः क्वायं श्रेष्ठः सत्याग्रहात्मकः,
कृत्स्नं जगति विख्यातं क्व में लघुतमामतिः" ।

संस्कृत कवयित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व –

"शब्दगौरवहीनाहम् युद्धस्यैतस्य गौरवम्,
व्याख्यातुमसमर्थास्मि गुणैर्दिव्यैर्विभूषितम् ।।"
अक्षमापि कवेमर्गि श्रोतव्या वस्तुगौरवात् ।।[91]

अपनी काव्य–भाषा को सशक्त बनाने तथा उसी प्रकार का प्रभाव और वातावरण उत्पन्न करने के लिए ध्वन्यामक शब्दों का सफल प्रयोग किया गया है । जो वातावरण की सृष्टि में सहायक बन पड़ा है । चर्खे की गूंज के अनुरूप ही उनकी शब्दावली भी गूंजती है –

"तरूण्यस्तन्तुचक्स्यकर्णयन्त्य सुगुंजनम् ।"

जहां वर्ण्य–विषय से सम्बन्धित भावनाओं का उद्रेक कवयित्री को अभीष्ट है, वहां वाक्यावली संक्षिप्त एवं द्रुतगामिनी है । यथा – चोरों के भय से भयभीत निर्जन अटवी में अस्मा उनसे रक्षार्थ धीरे–धीरे कोटर में सरक जाती है । इस भाव को प्रकट करने के लिए शब्दावली भी मन्द भावानुकूल और अत्यन्त संक्षिप्त है ।

"निशब्दं च तस्मिन् कोटरे ससर्प"।।[92]

प्रकृति के भयंकर और प्रचण्ड दृश्यों, तूफान और मूसलाधार वर्षा, गरजते बादल, कड़कड़ाती बिजली, उसके विध्वंसात्मक रूप तथा देश, नगर, मन्दिरादि के वर्णन में क्लिण्ट ओजोगुण सजीव, स्वाभाविक और यर्थाथ बन पड़े है । कहीं भी उनमें शिथिलता नहीं है । अपितु पूर्ण प्रवाह और आकर्षण है, जो उसी वातावरण के लिए अनुकूल है प्रचण्ड तूफान के वर्णन में भाषा ओर शेली भी प्रचण्डता की प्रतीक है यथा –

"अकस्मादुत्थितो झंझावताः प्रचण्ड ।
मृदुल धवलवालुकापटलेनापह्नुतः सर्वतो दृष्टिगतप्रदेश :
। ——— उच्छवासं च प्रतयरूणत् ।"[93]

लोकविश्रुत संस्कृत कवयित्री क्षमाराव ने मुहावरे और लोकोक्तियों तथा सूक्तियों के प्रचुर प्रयोग से इतिवृत के वातावरण को प्रभावपूर्ण बनाया है । प्रतिदिन व्यवहार में आने वाला ज्ञान भी इन उक्तियों से भरा हुआ है । मानव की अपरिचर्तनीय प्रकृति के विषय में मीरा की उक्ति भग्न–कांचः सर्वथा भग्न एवं स्थास्यतीति"[94] नग्नसत्य का

उद्घाटन कर मन पर अमिट छाप छोड़ती हे ।

सामान्यतः गद्य एवं पद्य में क्षमाराव ने सम्वादात्मक शैली को अपनाया है । पाठक के हृदय पर यह शैली अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है । कहानियो मे तो यह शैली मुख्यतः अपनाई ही गई है । परन्तु मीरालहरी, श्रीज्ञानेश्वरचरितम् इत्यादि काव्यों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध[95] है । यथा –

"शुश्रूषा कथमम्ब पत्युरिह में कार्या सुते श्रद्वया,
किं तातस्य यथा करोषि विधिना तद्वद्विधेया त्वया ।
किं हि स्थाद्यदि सेव्यते प्रतिदिनं प्रीतः स ते जायते,
कान्तं चेन्न जहासि तद्भवति किं न त्वामसौ हास्यति ।।[96]

भाषा मर्मज्ञा पण्डिता क्षमाराव ने कुछ अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है । जिनका अर्थ तो सही है परन्तु लोक व्यवहार में उनका प्रयोग प्रायः नहीं होता । यथा –

रोलम्बा– भ्रमर
जैत्र – जय
नष्ट – शोभा
तल्पायिता – शयन[97]

कहीं–कहीं क्षमाराव ने पण्डित्यपूर्ण रूढ़िवादी शैली अपनाकर संख्या का वर्णन उनके संख्या वाचक शब्दों से किया है ।

"खवह्निगृहचन्द्रावदे मिलिता प्रथमेऽहनि ।"[98]
बाणब्धि ग्रहचन्द्रांके वत्सरे यदुमानमत् ।"[99]

कवयित्री क्षमाराव की भाषा में कहीं–कहीं मराठी का प्रभाव परिलक्षित होता है । मराठी उनकी मातृभाषा थी । यथा – शंख शब्द का मूर्ख अर्थ मराठी में ही आता है । संस्कृत में नहीं । इसी प्रकार के कुछ शब्द कठिन के स्थान पर कठिण, विनष्ट के स्थान पर वितष्ट, घडघड़ के स्थान पर घर्घर मराठी के सूचक है ।

पण्डिता क्षमाराव ने ण्मुल् प्रतययन्ति श्रांव श्रांव, दर्शम्, ध्यायं ध्यायं इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी बहुलता से किया है ।

कवयित्री क्षमाराव शब्दों की जौहरी तथा भाषा की कुशलशिल्पी थी । भाषा के क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण देन है । देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप जो भाषा नये–नये शब्दों को इस ढ़ंग से आत्मसाम् करे, कि वे उसकी निजि बन जाये वहीं भाषा जीवित कहलाती है । इस प्रकार के प्रयोगों से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में बल आता है ।

वस्तुतः उनकी भाषा की यह विशेषता है कि वोलचार की भाषा की लोकोक्ति, मुहावरों तक को भी संस्कृत की कोमल–कान्त पदावली में ढ़ालकर प्रयोग किया । इस प्रकार नवशब्द निर्माण के द्वारा उन्होंने स्वयं तो अनेक भाषाओं के शब्दों का संग्रह संस्कृत भाषा को भेंट किया ही, साथ ही अन्यों का मार्ग प्रदर्शन कर उन्हें संस्कृत में नव–शब्द निमार्ण की प्रेरणा दी । यथा –

संस्कृत	भाषा
नेरू	नेहरू
पाकिस्थान	पाकिस्तान
श्यामला	शिमला
लवपुरी	लाहौर
पूर्वरक्षी	सिपाही
तन्त्री संदेश	तार

यद्यपि पण्डिता क्षमाराव का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था, तथापि कुछ दोष भी अप्राप्त नहीं है । श्रीमती गायत्री त्यागी[100] के मतानुसार पुनरूक्ति दोष उनकी भाषा में प्रायः उपलब्ध है । क्षमाराव ने एक ही भाव को कई स्थलों पर एक ही प्रकार की शब्दावली से व्यक्त किया है, जो उनके यदि शब्द भण्डार दारिद्रय का नहीं तो उनके उपेक्षित दृष्टिकोण का अवश्य ही परिचायक है । यथा–उत्तर सत्याग्रहगीता में दोनों पद एक समान है ।

"न कोऽप्यस्पृश्यताख्यात्या लांछनीयः स्वदेशजः ।
चतुर्वर्ण्यव्यवस्थायामपि नेदं ही दृश्यते ।।[101]
न कोऽप्यस्पृश्यताख्यात्या लांछनीयः स्वदेशजः
चातुर्वर्ण्यव्यवस्थायमपि नेदं हि दृश्यते ।।[102]

पुनरुक्ति दोष के हाथ कहीं–कहीं अधिक पदत्व, क्लिष्टत्व, अप्रयुक्तत्व दोष भी पाये जाते हैं । एक ही श्लोक मे अपमान, अनादर दोनों समानार्थक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो सौन्दर्य के विनाशक है ।

परन्तु उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी क्षमाराव के काव्य उत्कर्ष के सम्मुख ये नगण्य है । कालिदास की यह उक्ति 'एकोहि दोषों गुणसन्निपाते निमज्जति इन्दोः किरणेषु इवाकंः' उनके साहित्य पर सत्य ही चरितार्थ होती है । इस कथन की पुष्टि के लिए उनकी काव्य प्रतिभा की प्रशंसा, में एस.जी. भट्ट[103] डा.पी.वी. काणे[104] प्रभृति अनेक विद्वानों की उक्तियां प्रमाण है । समीक्षक विद्वानों ने उनके काव्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है ।[105]

कृतियों का साहित्यिक वैशिष्ट्य एवं महत्व –

संस्कृत कवयित्री पण्डिता क्षमाराव आधुनिक संस्कृत–साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कवयित्री है । उन्होंने अनेक कृतियों की रचना की । ये रचनायें विविध श्रेणी में रखी जा सकती है । (1) चरित–काव्य–इसके भी दो भाग किये जा सकते हैं, प्रथम में सन्त चरित आते हैं – श्रीतुकारामचरितम, श्री ज्ञानेश्वरचरितम, श्रीरामदासचरितम मीरालहरी, द्वितीय शंकरजीवनाख्यानम् में कवयित्री ने अपने पिता शंकरपाण्डुरंग पण्डित के जीवन की घटनाओं का चित्रण किया है । (2) राष्ट्रीयता से प्रेरित रचनायें । इनके अन्तर्गत सत्याग्रहगीता, स्वराज्यविजय अथवा उत्तरसत्याग्रहगीता और ग्रामज्योति ।

(3) यात्रावर्णन – विचित्रपरिषद्यात्रा नामक लघु कृति में उन्होंने मद्रास में होने वाली अखिलप्राच्य राष्ट्रीय भाषा परिषद् की यात्रा का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है । (4) कथा–साहित्य इसके भी दो भाग करना उचित है क्योंकि यद्यपि उन्होंने कथापंचक तथा कथामुक्तावली दो पुस्तकों का सृजन किया है । किन्तु किन्तु प्रथम पुस्तक पद्यबद्ध है और द्वितीय पुस्तक गद्यात्मक शैली में रची गयी है ।

डा. मालती अवस्थी[106] की यह अवधारणा सर्वथा समीचीन प्रतीत होती है । कि कवयित्री पण्डिता क्षमाराव ने चरित–काव्यों की रचना करके समाज के सम्मुख प्राचीन आदर्शों को पुनः रखने का प्रयास किया । चूंकि कवयित्री का सम्बन्ध महाराष्ट्र प्रान्त से था, अतः अपनी लेखनी द्वारा उन्होंने महाराष्ट्र में उद्भूत सन्तों के जीवनचरितों को प्रधानता दी । जिस समय दक्षिण–भारत, राजनैतिक स्वतन्त्रता के अन्तिम तट पर आसीन था, उस समय भगवान कृष्ण के उपासक सन्त ज्ञानेश्वर ने उत्पन्न होकर जनता को आध्यत्मिक ज्ञान का उपदेश दिया । इसी प्रकार श्री रामदास ने भी शिवाजी जी भांति अपने भाषण ओर मनः स्थिति शक्ति द्वारा सर्वसाधारण के मन कायरता का भाव हटा कर उनमें शक्ति और स्फूर्ति का सचार किया इनके अतिरिक्त सन्त तुकाराम भी यद्यपि कृष्ण की अनन्य उपासिका मीराबाई के मनोज चरित को भी 'मीरालहरी' के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है । अभिजात्त वंश में उत्पन्न नृप की राजपुत्री तथा पत्नी सम्पूण्र ऐहिक सुखो से विमुख होकर, गिरिधर को भक्ति में तन्मय होकर रात्रि–दिन श्रीकृष्ण का संकीर्तन तथा भजन करती हुई समय व्यतीत करती है । कवयित्री ने अपने पिता जो संस्कृत–साहित्य के मर्मज्ञ और विविध संस्कृत रचनाओं के प्रकाशक भी थे, का जीवन–चरित अध्यायों में 'शङकरजीवनाख्यानम' में लिखा है ।

संस्कृत कवयित्री पण्डिता क्षमाराव ने तत्कालीन भारत की स्थिति में प्रेरित होकर प्रभावोत्पादक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किये गये 'सत्याग्रह आन्दोलन' का सजीव चित्र अंकित किया है । चूंकि इस कृति में श्रीमद्भगवद्गीता की भांति अष्टादश अध्याय में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों से लेकर गांधी–इरविन समझौते (सन् 1931 ई.) तक महात्मा गांधी के जीवन का वर्णन
किया गया है । महात्मा ने भारत के अभ्युदय की सिद्धि के लिए नो वृत बताये जो इस प्रकार थे – (1) अहिंसा (2) सत्य, (3) चोरी न करना, (4) ब्रह्मचर्य, (5) किसी भी वस्तु का संग्रह न करना, (6) स्वदेश में बनी वस्तु में श्रद्धा, (7) निर्भीक रहना, (8) रूचि में संयम और (9) हरिजनों का समुद्वार ।

अपनी लोकप्रियकृति 'संत्याग्रहगीता' को पूर्ण करने के विचार से क्षमाराव ने स्वराजविजय या उत्तर–सत्याग्रहगीता नामक एक अन्य कृति की रचना की, जिसमें उन्होंने देश के विभाजन के बाद भारत की स्थिति, महात्मा गांधी जी के उपदेशों–भारतीयों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति तथा गांधी जी के अन्तिम जीवन का चित्रण किया है । इस कृति में छोटे–छोटे 54 अध्याय है अतः प्रायः सभी घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है । पण्डिता क्षमाराव् को गुजरात प्रदेश के ग्रामीण–क्षेत्रों में यात्रा करने का भी सुअवसर

प्राप्त हुआ था, जहां दोनों ग्रमीणजनों की देश–भक्तिपूर्ण कथाओं को सुनकर प्ररणा प्राप्त की । वे महात्मा जी के साबरमती आश्रम की ओर भी गयी थी और वहां के रचनात्मक कार्यों को देखकर अनुष्टुप् छन्द में बद्ध, देशभक्ति से ओत–प्रोत तीन कथाओं की रचना की और उन्हें ग्रामज्योति शीर्षक के अन्तर्गत निबद्ध कर दिया । 'विचित्रपरिषद्यात्रा' नामक कृति के अन्त में लेखिका ने अखिलप्राच्यराष्ट्रीय भाषा परिषद् के सम्मेलन में किए गए अपने संस्कृत, भाषण के अंश को भी प्रस्तुत कर दिया है । चूंकि विद्वपरिषद् के सुम्मुख उनका यह प्रथम कारण वे उसमें सफल हो गयी । अपनी मद्रास–यात्रा को भी उन्होंने पद्यात्मक शैली में लिखा है जिसे देखकर सहृदय मानव–मन स्वयं उस और आकृष्ट हो उठता है ।

इसके साथ ही लेखिका ने कथा–साहित्य की ओर भी ध्यान दिया, उन्होंने संस्कृत साहित्य में विख्यात 'पंचतन्त्र' और 'कथासरित्सागर' आदि से प्राप्त कथाओं की धारा को अविच्छिन्न रखने का प्रयास किया । किन्तु जहां 'पंचतन्त्र' और 'कथासरित्सागर' में कथा का उद्देश्य उपदेश प्रदान करना था वहरां क्षमाराव की विभिन्न कथाओं में किसी समस्या को प्रस्तुत किया गया है ।

डॉ. मालती अवस्थी[107] के मातानुसार वर्तमान लधु कथासाहित्य बनाकर रखा है, उन्होंने देश के विभिन्न प्रदेशों काश्मीर, महाराष्ट्र, महाबलेश्वर, आबू आदि से एकत्रित किया है । क्षमाराव ने जहां एक और कथापंचकम् में (1) बालिकोद्वाहसङ्कटम्, (2) गिरिजायाः प्रतिज्ञा, (3) हरिसिंहः (4) दन्तकेयूरम्, (5) असूयिनी–पांच कहानियों को पद्यात्मक शैली में लिखा है वहां दूसरी और कथामुक्तावली में पन्द्रह कहानियों का संग्रह है । ये सभी गद्य शैली में है । कोई भी लेखक गद्य ओर पद्य दोनों ही शैलियो में निबद्ध किया ।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक जितनी भी संस्कृत–कवयित्रियां उपलब्ध होती है, उन सभी में पण्डिता क्षमाराव की रचनायें सर्वाधिक है । उनके द्वारा लिखित एकादश पुस्तकें होती है । वे सभी उच्चकोटि की और अत्यन्त उपदेय है । संस्कृत कवयित्री पण्डिता क्षमाराव आधुनिक संस्कृत साहित्य की सम्राज्ञी है । उन्होंने सर्वधारण के सम्मुख अपनी कृतियों द्वारा प्राचीन आदर्शों को प्रस्तुत किया । रान्त तुकाराम, ज्ञानेश्वर तथा रामदास ओर मीराबाई के द्वारा ग्रहण किये इनके उपदेशप्रद होते हुए भी रूचिकर हो गये । कवयित्री ने चरित–काव्यों का सृजन करके महाराष्ट्रीय सन्तों के प्रति तथा अपने पूज्य पिता के प्रति श्रद्धाभाव की व्यंजना की । प्रत्येक कवि अपने देश और काल की घटनाओं से प्रभावित होता है – इसी दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है । कि घटनाओं से प्रभावित संग्राम की भीषणता और उत्साह से प्रेरित होकर क्षमाराव ने महात्मा गांधी के सत्यागृह उपदेश को व्यक्त करने के उद्देश्य से 'सत्याग्रहगीता' और 'स्वराज्यविजय' नामक काव्यों की रचना की । इसका समर्थन अनेक अनुसन्धानकों[108] ने किया है । इसी प्रकार ग्रामज्योति नामक कथा संग्रह में भी उन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं की पोषक तथा देशभक्तिपूर्ण तीन कहानियों (कथाओं) का

विवेचन किया है । भारतीय स्वतरंत्रता के इस युद्ध में पुरूषों ने ही नहीं, अपितु नारियां ने भी पूर्ण सहयोग दिया, जिसका ज्वलन्त उदाहरण ग्रामज्योति के अन्तर्गत 'रेवा' और बीरभा की कथा है । संस्कृतसाहित्य में लघुकथा लिखने की प्रणाली प्रायः समाप्त हो गयी थी, किन्तु क्षमाराव ने 'कथापचक' नामक कृति में पांच लघु–कथाओं द्वारा प्राचीन परम्परा को प्रतिष्ठित रखने को प्रयास किया है । इसी प्रकार 'कथामुक्तावली' में पन्द्रह कथाओं को सङ्ग्रहीत किया गया है । उनकी सभी कथाओं के कथानक मर्यादा पोषक है, यद्यपि कहीं–कहीं पर ऐसा प्रतीत होता है । कि कथा सुसंगठित और शिष्ट है । प्रत्येक कथा में लेखिकों ने पात्र की चित्तवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, विशेष रूप से नारीजीवन की समस्याओं क्षौर नारी–भावनाओं के सूक्ष्म चित्रण में क्षमाराव अधिक सफल हुई है ।

लोकप्रिय कवयित्री पण्डिता क्षमाराव की रचनाओं में चरितकाव्यों की प्रधानता है । इनकी रचनाओं में घटनाओं का समावेश अधिक मात्रा में हुआ है । निक संस्कृत–साहित्य जगत् की कवयित्रियों में सम्राज्ञी के समान कवयित्री पण्डिता क्षमाराव की रचनाओं में अपनी मौलिक विशेषतायें हैं –

अन्य सभी संस्कृत कवयित्रीयों का साङ्गोपाङ्ग अवलोकन करते हुए, पण्डिता क्षमाराव ने सबसे अधिक कृतियों का सृजन किया । ये सभी विविध विषय से समबन्ध है । अन्य कृतियो की अपेक्षा मीरालहरी काव्यतत्व की दृष्टि से सर्वोत्तम है । उसमें उत्तम काव्य का ही आश्रय लिया गया है । अन्यत्र चरित्रकाव्यों का भी चयन किया गया है । चरित्र काव्यों की रचना करके, कवयित्री ने प्राचीन आदर्शों को पुनः सर्वधारण के सम्मुख रखने का सार्थक प्रयास किया है । जिस समय देश स्वतंत्रता की शांति से ग्रस्त था, ऐसे समय में उन्होंने 'सत्याग्रहगीता' का सृजन करके जनता में आत्मसम्मान और सम्बल की भावना उत्तेजित की । सत्याग्रहगीता द्वारा अंग्रेजी शासन सत्ता के अधीन भारतीयों की दशा, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उनके द्वारा किये गये प्रयत्नों तथा सत्याग्रहियों की वीरता का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है । पुनः देश प्रेम से प्रेरित होकर क्षमाराव ने सत्याग्रहगीता की पूर्ति के उद्देश्य से 'स्वराज्यविजय' (उत्तर–सत्याग्रहगीता) की रचना की इसमें उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सिद्धांतो–स्वराज्य प्राप्ति, स्वराज्योत्सव तथा गांधी जी के स्वर्गरोहण तक के कथानक को ग्रहण किया है ।

सुविख्यात महाराष्ट्रीय सन्तों के जीवनाख्यानों के द्वारा कवयित्री ने सन्त ज्ञानेश्वर के जीवन का परिचय देते हुए स्पष्ट किया है कि समाज का बन्धन यद्यपि उत्तम होता है, तथापि देशकाल और पात्र में कभी–कभी उसका अपवाद भी प्राप्त होता है । कवयित्री क्षमाराव ने देश और काल के अनुकूल रचनायें की है । शङ्करजीवनाख्यानम् द्वारा उन्होंने अपने पिता के विशिष्ट गुणों (देश–भक्ति, संस्कृत–भाषा, के प्रति प्रेम, परिश्रम, स्वाभिमान) का परिचय दिया है । आख्यानों के द्वारा कवयित्री ने अपनी दार्शनिक दृष्टि[109] की अभिव्यंजना करायी है ।

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव की कथायें उद्देश्य प्रधान है । कथा–साहित्य की प्राचीन परम्परा को उन्हेंने आधुनिक काल में अविच्छिन्न रखा । उन्होंने गद्य और पद्य दोनों ही शैलियों में रचना की – यह सर्वधा सराहनीय है । लघु कथाओं की संग्रह 'कथामुक्तावली' द्वारा कथाकर्त्री ने नारी जीवन की और विशेष ध्यान दिया है । कहीं वात्सल्य के लिये लालायिता, कीहं पति सुख से वंचिता, कहीं पारिवारिक यातनाओं में ग्रस्ता नारी की अन्तर्व्यथा को अवगत करने में अधिक सफल हुई है ।

इस विदुषी कवयित्री ने अलंकारों का समावेश भी प्रायः अपनी सभी कृतियों में किया है । कहीं भी अनौचित्यपूर्ण व्यर्थ में विस्तार किये जाने वाला चित्रण नहीं मिलता है । प्रकृति (पात्र एवं वस्तु) चित्रण में क्षमाराव को सफलता मिली है, जिसका समर्थन श्रीमती डा. गायत्री त्यागी[110] एव मालती अवस्थी[111] आदि विदुषियों ने भी किया है ।

सारगर्भित एवं भाव है समन्वय में क्षमाराव कुशल है । उन्होंने सूक्तियों का भी प्रयोग किया है, विशेषतः 'शङ्करजीवनाख्यानम्' को तो सूक्ति–भण्डार कहा जा सकता है । अतः शङ्करजीवनाख्यानम् की प्रस्तावना में सुवर्णनिधि से पूर्ण गीवणिवाणी में निपुण, रसान्विता लेखिका[112] कहना सर्वधा उचित ही है । उनकी भाषा की भी प्रशंसा की गयी है।[113]

कवयित्री पण्डिता क्षमाराव आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मानी गयी है । उनकी रचनाओं के सम्मान में अवध की संस्कृत एकेडमी ने सन् 1938 ई. में उन्हें 'पण्डित' तथा 1942 ईस्वीं में 'साहित्य चन्द्रिका' की उपाधि से सज्जित किया ।

वस्तुतः कवयित्री क्षमाराव की विशेषताओं को दृष्टि में रखकर, यदि उन्हें हम रामदास (समर्थ) की भांति उन्हीं के शब्दों में देखेतों अत्युक्ति न होगी ।

विद्वज्जनोऽस्य विमलोज्जवलबाक्यशैल्या,
विद्यार्थिनः श्रुतिरहस्यभिदाऽस्य बुद्धया ।
केचित्परे सहृदया रसभाव–दृष्ट्या,
मुग्धाः कथाभिरभवन्मुदितान्तरङ्गाः ।।[114]

संस्कृत साहित्य में कवयित्री क्षमाराव का स्थान –

समृद्ध संस्कृत भाषा के उच्च सर्जनात्मक साहित्य को विशाल परम्परा आठवीं, नवीं शती के पश्चात् से प्रायः ह्रासोन्मुख रही है । कुछ–पुट रचनाये अवश्य होती रही है । तथापि वाल्मीकि और कालिदास की परिपाटी में कोई महत्वपूर्ण रचना हई ही नहीं । इस रूप में संस्कृत भाषा और उसके साहित्य के प्रति प्रायः उपेक्षा ही मिलती है, यद्यपि प्रान्तीय भाषाओं के उच्चकोटिक विद्वानों ने भी संस्कृत साहित्य से प्रेरणा और भाव ग्रहण किये है परन्तु साधिकार वे संस्कृत–भाषा में नहीं लिख सके हैं ।

आंग्ल शासन कालीन भारत में जब पाश्चात्य विद्या और विचारों को प्रचरित किया जाने लगा, तो संस्कृत विद्वानों के दो पक्ष हो गये । कवयित्री क्षमाराव ने समन्वयात्मक रूप से एक पाश्चात्य साहित्य की देन को अपनाते हुए काव्य रचना करने

के पक्ष में, तो दूसरा रूढ़िवादी साहित्य की देन को अपनाते हुए काव्य रचना करने क पक्ष में ग्रहण किया । जिस समय क्षमाराव ने संस्कृत साहित्य में पदार्पण किया, उस समय उनके सम्मुख उक्त दोनों पक्षों का समन्वयात्मक मार्ग था । पण्डिता क्षमाराव दूसरे पक्ष की प्रमुख देन थी । राष्ट्रपिता महात्मां गांधी जी के जीवन, सत्यग्रह युद्ध और उनके कार्यों को ही क्षमाराव की कला को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है । गांधी जी द्वारा प्रचारित 'सत्याग्रहयुद्ध' के महत्व को जनता तक पहुंचाने की इच्छा ने उन्हें 'सत्यग्रहगीता' ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी ।[115] इस विषय में धर्मेन्द्र नाथ जी शास्त्री का यह कथन सर्वथा समीचीन एवं सत्य है –

"Kshama Row's art is essentially a creation of the Gandhian age."[116]

इस प्रकार कवयित्री पण्डित क्षमाराव यद्यपि दूसरे पक्ष की देन थी तथापि अपने साहित्यिक रचना कौशल एवं काव्य नैपुण्य से दोनों पक्षों के मध्य का मार्ग अपनाया । अतः वे समन्वयवादी कवयित्री के रूप में संस्कृत साहित्य में समादृत होकर मूर्धन्य स्थान रखती है ।

एक और उन्होंने जहां रूढ़िवादी परम्परा का आश्रय लेकर महाकाव्य, नीतिकाव्य लिखे तो दूसरी और वैविध्यपूर्ण पाश्चात्य विचार और शिल्प को अपनाकर कहानी, जीवनी, निबन्ध, सस्मरणादि की भी रचना की है ।[117]

विषय और विद्या की दृष्टि से क्षमाराव अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों से बहुत आगे हैं । उनकी रचनाओं और शिल्प नवीनता लिये हुए हैं । इस प्रकार लोक कल्याणकारी साहित्य का सर्जन कर उन्होंने निराश भारतीय संस्कृत साहित्यकारों को नवीन मार्ग दिखलाया । सब और से मृत और उपेक्षित कही जाने वाली भाषा को माध यम बनाकर क्षमाराव ने संस्कृत भाषा और साहित्य की अमूल्य सेवा की ।

समृद्ध संस्कृत साहित्य में जहां अधिकांश काव्य रचनायें रामायण तथा महाभारत के कथानकों पर आधारित है, वहां क्षमाराव की एक भी रचना नसे सम्बन्धित नहीं है । इस विषय मे नवीन मार्ग प्रस्तुत करके सर्वथा नवीन विषयों को अपना कर उन्होंने भावी लेखकों का भी मार्ग दर्शन किया तथा संस्कृत–साहित्य को राजतंत्र से मुक्त करके, प्रजातंत्र के युग में उसका भी प्रजातन्त्रीकरण किया ।

लोकप्रिय कवयित्रों क्षमाराव ने न केवल पाश्चातय और नवीन विचारों को अपितु कला की नवीन शैली को भी अपना कर संस्कृत साहित्य में उस अंग के अभाव की पूर्ति की है । 'कथापंचकम्' कहानी संग्रह की भूमिका में उन्होंने इस तथ्य् को स्पष्ट किया है ।[118]

समृद्ध संस्कृत भाषा का कथा साहित्य यद्यपि विश्व–विख्यात तथा प्राचीनतम है तथापि आज के सामाजिक समस्यापूर्ण लोक जीवन को चित्रित करने वाले कथा–साहित्य का उसमें सर्वथा अभाव है, जिसकी पूर्ति क्षमाराव ने गद्य–पद्य दोनों में, आधुनिक विषय तथा शिल्पानुसार लघु कथा संरचना कर की है । कथा–साहित्य ही नहीं, अपितु निबन्ध, संस्मरण, जीवनी इत्यादि लिखकर भी उन्होंने साहित्य में बहुमूल्य योगदान दिया ।

संस्कृत सवयित्री पण्डिता क्षमाराव अपनी अहुमुखी प्रतिमा के कारण न केवल सफल महाकाव्यकार तथा श्रेष्ठ गद्यकार ही है, अपितु निबन्धकार कथा तथा जीवनी लेखिका के रूप में भी आती है । इस रूप में न कोई प्राचीन और न अर्वाचीन कवि उनके विशाल क्षैत्र की समता कर सकता है । क्षमाराव ने संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना को चित्रित करने का भी प्रशंसनीय कार्य किया है ।

कवयित्री पं. क्षमाराव की साहित्यिक देन –

विपुलकाय साहित्य और नवीन चेतना संस्कृत में अपनाने के अतिरिक्त क्षमाराव की संस्कृत साहित्य को महत्ववपूर्ण एवं अद्भूत देन है नवीन शब्दावली की वर्ण्य–विषयानुसार उद्भावना, जिसके द्वारा उन्होंने संस्कृत साहित्य को अगणित नवीन शब्दों का संग्रह एवं संप्रयोग किया ही, अन्य लेखकों को नये शब्द रचने की प्रकिया देकर उनसे लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर उनका सुन्दर मार्ग दर्शन किया है ।

संस्कृत कवयित्री क्षमाराव ने संस्कृत–साहित्य की प्राचीन परम्परा की आधुनिक युग में अक्षुण्णा और जीवित रखने में सहयोग प्रदान किया है, वह अद्वितीय और अनुपन है । उन्होंने अपने रचना कौशल तथा विशाल साहित्य से संस्कृत भाषा की सजीवता की भी पुष्टि की है । आधुनिक युग में संस्कृत भाषा को मृत भाषा कहने वालों के लिए क्षमाराव का संस्कृत--साहित्य उसकी सजीवता का प्रत्यक्ष उत्तर है । जैसा कि कहा गया है आधुनिककाले संस्कृत भाषा मृता इति साधिक्षेपं निरर्गल जल्पतां दुबुंद्धीनां मुखभंगाय क्षमायाः नामोच्चारणं क्षमते ।[119]

कवयित्री पण्डित क्षमाराव संस्कृत भाषा के प्रति बहुत आशावादिनी था ।[120] उनकी इस भाषा के प्रति अडिग श्रद्धा और भक्ति ने ही उन्हें अंग्रेजी संस्कृत में लिखने को प्रेरित किया । भारतीय अन्य संस्कृतेतर विद्धानों के द्वारा असम्मानित किए जाने पर भी वे हतोत्साहित नहीं हुई । 'स्वान्तः सुखायः' की इस भावना से उन्होंने आजीवन संस्कृत भाषाा में ही लिखा । प्रस्तुतःउनके विषय में यह कथन सत्य है ।

"Kshama Row wrote her poetry in a language which is very neglected in India and which few feople understand in the coundtry today. If tshe had written her poetry in English, as may cthers have done, hor name would have been heard in all literary centres in India and would have been very famouns in other countries also. But a pet is great because of poetry and not because of any recognition and appreciation."[121]

समीक्षा –

वस्तुतः अनेक गम्भीर परिस्थितियों के होते हुए भी पण्डिता कवयित्री क्षमाराव ने संस्कृत –साहित्य की जो श्लाघनीय सेवा की, अपने अथक परिश्रम से साहित्य के भण्डार को जो श्रीसम्पन्न किया, वह अभूतपूर्व है, इस बीसवीं शताब्दी के युग में उन्होंने

संस्कृत भाषा की गौरव रक्षा स्वयं तो की ही है, अपितु अन्य लेखक एवं लेखिकाओं को भी प्रगति पथ पर होने की प्रेरणा देकर प्रोत्साहित किया है ।

अधुनातन साहित्य मान्यताओं के आधार पर समय–समय पर कवयित्री क्षमाराव की कृतियों का मूल्यांकन होता रहा है तथा उन्हें सम्मानित भी किया गया तथापि वह सब उनकी अमूल्य सेवाओं के सम्मुख नगण्य था । मंजूषा पत्रिका के सम्पादक श्री क्षितीश चन्द्र चटर्जी, विद्वान् एवं राजनीतिज्ञ के.एस.पाण्डिकर, श्री डी.एन.शास्त्री, श्री हीरा चन्द्र, डा.वी. राघवन् के अतिरिक्त सिल्वा कृतित्व की समीचीन प्रशंसा की है । वस्तुतः इनके अप्रतिम कृतित्व से संस्कृत साहित्य जीवनन्त एवं समृद्ध होकर गौरवान्वित हुआ है । जिसके लिए प्रत्येक अध्येता उनका सदैव ऋणि रहेगा ।

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणी –

1. ग्रामज्योति – परिचय, पृष्ठ 1, जे.सी. चटर्जी द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित।
2. ग्रामज्योति – परिचय, पृष्ठ 2
3. ग्रामज्योति – परिचय, पृष्ठ 3
4. ग्रामज्योति – परिचय, पृष्ठ 3
5. ग्रामज्योति – परिचय, पृष्ठ 4
6. ग्रामज्योति – परिचय, पृष्ठ 4
7. पण्डिता क्षमाराव की काव्यकला (आगरा वि.वि. शोध प्रबन्ध, 1968)
8. संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं की आलोचनात्मक अध्ययन (इलाहाबाद वि.वि. शोध प्रबन्ध, 1968), पृष्ठ 79
9. लेखांजलिः (संस्कृतस्य महिला रचनाकर्त्र्यः शीर्षक शोध लेख), कानपुर 1992, पृ. 154–163

   संस्कृत कवयित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, लखनऊ 1996
10. पण्डिताक्षमायाः सस्मरणानिः सुश्री लक्ष्मी शेरसिंह शास्त्री, दिव्यज्योतिः – जुलाई 1961, पृ. 26
11. शंकरजीवनाख्यानम् – क्षमाराव–षोडशोल्लास, पृ. 129
12. गजानन लक्षण रेगेः 'भारती' दिसम्बर 1965
13. श्री पी.वी. काणै का पत्र।
14. ग्रामज्योति : क्षमाराव, प्रस्तावना, सम्पादकीय, पृष्ठ 2
15. द्रष्टव्य लेखांजलि, डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी, कानुपर, 1992, पृ. 154–163
16. क्षमाराव की पुत्री लीलाराव के अनुसार जैसा कि उन्होंने लेखक को भेंट समय बताया, परन्तु सुधाकर राय के अनुसार क्षमाराव की आयु 16 वर्ष और डॉ. राव की आयु 40 वर्ष थी। – दिव्यज्योति–जुलाई 1961, पृ. 10

17. लीला राव से भेंट क आधार पर।
18. श्री सुधाकर राय–दिव्यज्योति–जुलाई 1961, पृ. 12
19. दिव्यज्योति जुलाई 1961, पृ. 2, 5
20. डॉ. मीरा द्विवेदी, आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार, दिल्ली 1996, पृ. 7, 8
21. विचित्रपरिषद्द्यात्राः – क्षमाराव, पृ.9, श्लोक 4, 5
22. श्रीतुकारामचरितम् प्रकाशक हिन्द किताब लि. बम्बई, सन् 1950 ई.
23. श्रीरामदासचरितम् प्रकाशक न.मा.त्रिपाठी, बम्बई, सन् 1953 ई.
24. श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, प्रकाशक, न.मा.त्रिपाठी, बम्बई, सन् 1588 ई.
25. मीरालहरी, प्रकाशक, न.मा.त्रिपाठी, बम्बई, सन् 1575 ई.
26. शंङ्करजीवनाख्यानम्, निर्णयसागर प्रेस, 1939 ई.
27. सत्याग्रहगीता, क्षमाराव, न.मा. त्रिपाठी प्रा.लि. बम्बई, 1953 ई.
28. ग्रामज्योति प्रकाशक, जे.सी. चटर्जी एण्ड कम्पनी, कलकत्ता।
29. कथापंचक श्रीमती लीलादयाल द्वारा, बम्बई से प्रकाशित।
30. कथामुक्तावली न.मा.त्रिपाठी प्रा.लि. बम्बई, सन् 1954 ई.
31. श्रीमती पण्डिता क्षमाराव की काव्यमाला, डॉ. गायत्री त्यागी, आगरा वि.वि. शोध, सन् 1968 ई. पृ. 309
32. विचित्रपरिषद्दयात्रा, मुद्रक व प्रकाशक रघुनाथ दियाजी देशाई, न्यू भारत प्रिटिंग प्रेस, बम्बई।
33. काव्य के रूप, डॉ. गुलाबराय, पृष्ठ 15
34. काव्य प्रकाशः – मम्मटः, चतुर्थ उल्लासः सू.47, का. 44
35. कथामुक्तावली क्षमाराव, पृष्ठ 49, 125
36. मीरालहरी, क्षमाराव, पूर्वखण्ड, श्लोक 63
37. मीरालहरी, क्षमाराव, पूर्वखण्ड, श्लोक 61
38. मीरालहरी, क्षमाराव, पूर्वखण्ड, श्लोक 57
39. कथामुक्तावली क्षमाराव, पृष्ठ 40
40. तुकारामचरितम् , क्षमाराव, सर्ग 6, श्लोक 6
41. कथामुक्तावली क्षमाराव, पृष्ठ 15
42. कथामुक्तावली क्षमाराव, पृष्ठ 1
43. कथापचकम् क्षमाराव, पृष्ठ 92, श्लोक 146
44. श्रीज्ञानेश्वरचरितम् सर्ग 4, 417
45. स्वराज्यविजयम् , अध्याय 53/10
46. मीरालहरी, उत्तरखण्ड, श्लोक 15
47. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 67
48. स्वराज्यविजयम् , अध्याय 187, 10
49. कथामुक्तावली शरद्दलम्, पृष्ठ 125

50. श्रीज्ञानेश्वरचरितम् सर्ग 5/8
51. मीरालहरी, उत्तरखण्ड, श्लोक 44 (अन्तिम)
52. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 19
53. रामदासचरितम् सर्ग 1/30, 31
54. श्रीमती पण्डिता क्षमाराव की काव्यकाला (आगरा वि.वि. पीएच.डी. शोधग्रन्थ, 1968, पृ. 313)
55. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 48
56. शंकरजीवनाख्यानाम्, तृतीय उल्लास, पृष्ठ 13, श्लोक 23
57. ज्ञानेश्वरचरितम्, क्षमाराव, सर्ग 4, श्लोक 42
58. मीरालहरी, क्षमाराव, पूर्वखण्ड, श्लोक 67
59. सत्याग्रहगीता, क्षमाराव, 10/3 , 40
60. ग्रामज्योतिः रैवायाः कथा, श्लोक 1
61. श्रीज्ञानेश्वरचरितम् सर्ग 1, श्लोक 48
62. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 60
63. सत्याग्रहगीता, 1/36 तथा उत्तर सत्याग्रहगीता 1/2, 3 और 3/32
64. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 86
65. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 53
66. काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते–आचार्य दन्डी, काव्यादर्श।
67. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृतौ पुनः क्वापि, काव्यप्रकाश, मम्मट, 1–1
68. श्री ज्ञानेश्वरचरितम्, प्रथम खण्ड, श्लोक 20
69. श्री ज्ञानेश्वरचरितम्, प्रथम खण्ड, श्लोक 3
70. कथामुक्तावली, पृ. 9
71. कथामुक्तावली, पृ. 76
72. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 57, संस्कृत टिप्पणी।
73. मीरालहरी, उत्तरखण्ड, श्लोक 41
74. शंकरजीवनाख्यानम्, पृ. 73, श्लोक 22
75. उत्तर सत्याग्रहगीता 4/32
76. श्रीज्ञानेश्वरचरितम् सर्ग, 6/20
77. उत्तर सत्याग्रहगीता, अध्याय 22/14
78. मीरालहरी, पूर्वखण्ड, श्लोक 17
79. श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, 2/14
80. श्रीरामदासचरितम्, 3/3, 4
81. मीरालहरी, उत्तरखण्ड, श्लोक 22
82. श्री तुकारामचरितम्, 5/48
83. ग्रामज्योति, क्षमाराव का प्रथम मयूख का 1

107. संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन, (इलाहाबाद वि.वि. पी.एच.डी. शोध ग्रन्थ, सन् 1968, पृ. 335)

108. श्रीमती पण्डिताः क्षमाराव की काव्यमाला, डॉ. गायत्री त्यागी (आगरा विश्वविद्यालय शोध ग्रन्थ, 1968) पृ. 309
संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन, (इलाहाबाद वि.वि. पी.एच.डी. शोध ग्रन्थ, सन् 1968, पृ. 336)

109. 'नास्ति कश्चिदपि भेद आवयोरात्मनोर्ध्रुवमिति ब्रवीमिवंः।। ज्ञानेश्वरचरितम् 4/37
आत्मनो वपुषि भासते प्रतिबिम्बनं दिनमर्णेघटे यथा।
चकपाणिरपि सर्वदोहिषु व्यापकः सकलविश्वगश्च सः।। ज्ञानेश्वरचरितमं 4/38
आकृतिस्तदपि तस्य वस्तुने ज्ञानिनो दृष्टिगोचरा।
कारणे स्थिरदृशो हि मानुसां बध्यते न खलु कार्यदर्शने।। ज्ञानेश्वरचरितम् 4/39
बिम्बं निदानं प्रतिबिम्बकस्य वनस्पतेबीजमिवाङ्गकुरस्य ।
यथा सुवर्णं च विभूषणानां यथा परस्यापि च तन्तुसङ्घः।। वही 4/40

110. श्रीमती पण्डिताः क्षमाराव की काव्यमाला, डॉ. गायत्री त्यागी (आगरा विश्वविद्यालय शोध ग्रन्थ, 1968) पृ. 307

111. संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन, (इलाहाबाद वि.वि. पी.एच.डी. शोध ग्रन्थ, सन् 1968, पृ. 400)

112. गीर्वाणवाणीनिपुणा लेखिकेयं रसान्विता।
सुवर्णनिधिसंयुक्ता क्षमेयं क्षमेव भाति से।। —शंकरजीवनाख्यानम्प्रस्तावः 4

113. प्रसन्ना सरसा वाणी क्षमादेव्या गुणान्विता।
सूक्तिभिर्मण्डिता नूनमलङ्कारविभूषिता।। —शंकरजीवनाख्यानप्प्रस्तावः 28

114. श्रीरामदासचरितम् 10/14

115. दिव्यज्योतिः जुलाई 1961 ई. सुरभाषायां लिखित् कथं प्रवृत्ताऽभवम्—क्षमारावः, पृ. 2

116. Pandita Kashama Row - A Sanskrit poetess of modern India, speech by Tarka Shiromani prof. Dharmendra Nath Shastri at Unveriling ceremony of her portrait by Sardar Pannikar at Meerut College Meerut on 8.12.55

117. लेखांजलि, डॉ. कै.ना.द्विवेदी, कानपुर, 1992 पृ. 154—163

118. कथापंचकम् — क्षमाराव, भूमिका।

119. संस्कृत भवितव्यम्—सम्पादकीयम्, 13—7—57, पृ. 2

120. विचित्रपरिषदयात्रा—1. 5

121. Pandita Kshama Row "The Kalidas of Today" लघु विज्ञापन पत्रिका, Printed by J.D. Desai, Rashtra Vaibhav Press, Bombay-4

षष्ठ अध्याय

श्री द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री एवं 'स्वराज्यविजयम्' का साहित्यिक मूल्यांकन

षष्ठ अध्याय
श्री द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री एवं 'स्वराज्यविजयम्' का साहित्यिक मूल्यांकन

अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री विरचित 'स्वराज्य विजयम्' महाकाव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इस महाकाव्य में भारतीय पुर्नजागरण काल से स्वराज्य प्राप्ति तक के समस्त इतिवृत्त को मनोहारी शैली में वर्णित किया गया है। विगत् शताब्दी में इस महान् देश में जो विराट् विभूतियां हमारे देश में प्रार्दुभूत हुईं हैं। उनमें महात्मा गान्धी मूर्धन्य है। उनके जीवन वृत्त एवं स्वाधीनता संग्राम में उनके सत्प्रयासों को चित्रित करने वाला 'स्वराज्य विजयम्' महाकाव्य निसंदेह एक राष्ट्रीय साहित्यिक निधि के रूप में समादृत है। यहां संक्षेप में इस महाकाव्य और इसके रचनाकार श्री द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री का अनुसंधानात्मक परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

जीवन परिचय –

पण्डित द्विजेन्द्र शास्त्री का जन्म मुजफ्फर नगर जनपथ के परसौली नामक ग्राम में एक गौड़ ब्राह्मण कुल में सन् 1892 ई. में हुआ था।[1] आपके पिता श्री पण्डित जानकीनाथ उच्च कोटि के वैध थे।[2] आपके पिता वैदिक धर्म एवं आर्य समाज के प्रति आस्थावान थे। इसी के चलते पण्डित द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री के समस्त संस्कार वैदिक रीति से ही सम्पन्न हुए। काव्यकार की माँ श्रीमती गंगा देवी एक विदुषी महिला तथा गंगा के समान ही पवित्र थीं।[3] 12 वर्ष की आयु में आपका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथापि वेद, वेदांग, व्याकरण काव्य आदि के अध्ययन के लिये पिताश्री ने वृन्दावन के गुरूकुल में प्रवेश कराया। गुरूकुल में आपने अपनी तीव्र बुद्धि एवं प्रतिभा के कारण मात्र चार वर्षों में ही सम्यक् अध्ययन कर विषयों में पर्याप्त प्रवीणता हांसिल कर ली।

शास्त्रार्थ में आपके सामने आपके समकालीन विधार्थी नहीं टिक पाते थे। जिसके फलस्वरूप आपको अनेक पुरस्कार एवं अनेक सम्मान प्राप्त हुए। व्याकरणाचार्य पण्डित देवदत्त शास्त्री जैसे मूर्धन्य विद्वानों से आपने शिक्षा ग्रहण की थी। आपकी प्रखर प्रतिभा न केवल सहपाठियों को अपितु गुरुजनों को भी आश्चर्य चकित कर देती थी। इसके साथ–साथ काव्यकार पण्डित द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री मल्ल विद्या में भी निश्लार्थ थे। गुरुकुल निवास कर आपने वंशानुगत आयुर्वेद का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। विद्या परिषद् के मंत्री पद को भी सुशोभित किया था। काव्य रचना करने में आप अपने छात्र जीवन से ही निपुण हो गए थे।

नव्य न्याय दर्शन में पारंगत काव्यकार की दर्शन शास्त्र में प्रगाढ़ रूचि थी। सन्

1921 में बम्बई वासी पण्डित बालकृष्ण शास्त्री की विदुषी पुत्री गार्गी देवी से आपका विवाह संस्कार वेदिक रीति से सम्पन्न हुआ। जिसके बाद आपने अपना कार्य क्षेत्र बम्बई बनाया, एवं आर्य समाज के महाउपदेशक के रूप में कार्य प्रारम्भ करते हुए आयुर्वेद को अपने जीवकोपार्जन का साधन बनाकर विपुल धन अर्जित किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत वेदभाष्यों को जन सुलभ बनाने हेतु गठित अनुवादक समिति के आप अध्यक्ष भी रहे। कालान्तर में आप माया नगरी बम्बई की प्रतिष्ठा एवं वैभव का परित्याग कर आर्य समाज के सेवार्थ सन् 1936 में वृन्दावन आकर वेद संस्थान के अध्यक्ष एवं महाभाष्य के प्रधान सम्पादक पद पर आसीन् हुए। इसी पद पर रहते हुए आपने सन् 1939 में कठिन परिश्रम करते हुए यजुर्वेद भाष्य प्रकाशित किया। इसी के साथ आपने मेरठ में अपना निवास स्थान बनाकर वहां सन् 1939 में ही वेद संस्थान की स्थापना कर आर्य समाज की जीवन प्रयन्त सेवा की। आप कई वर्षों तक वृन्दावन के गुरुकुल के उपकुलपति भी रहे।

दुर्भाग्यवश श्री द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री 31 मई 1963 को अकालकालकवलित हो गए तथा 8 वर्ष बाद स्वराज्य विजयम् महाकाव्य कृति को उनकी पत्नी श्रीमती गार्गी शर्मा ने भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय के आर्थिक अनुदान को पाकर भारतीय प्रतिष्ठानम् मेरठ से इसे प्रकाशित कराया। इस कृति को श्रीमती गार्गी ने अपने द्विवंगत पूज्य पति को समर्पित किया।

इस महाकाव्य पर भारत के विख्यात विद्वानों डॉ मण्डन मिश्र कुलपति, लाल बहादुर शास्त्री, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली, डॉ. सत्यव्रत शास्त्री पूर्व कुलपति, जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी, डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, बृहस्पति शास्त्री शर्मा, पूर्व कुलपति, गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन मथुरा एवं देवदत्त शास्त्री प्रयाग डॉ. विजयेन्द्र स्नातक दिल्ली विश्वविद्यालय आदि ने अपनी वैदुष्यपूर्ण समीक्षा लिखकर इसका महत्व प्रतिपादित किया है।

काव्यकार की प्रमुख कृतियाँ –

काव्यकार पण्डित द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री ने अधोलिखित रचनाएं प्रकाशित कर आधुनिक संस्कृत साहित्य को बहुविध विस्तृत करने में अपना अमूल्य योगदान दिया –

1. भूमिका प्रकाश
2. वेद तत्वालोचन
3. वैदिक वीणा
4. संस्कृत साहित्य विमर्श
5. द्वैतांद्वैतविमर्श
6. यजुर्वेद भाष्यभूमिका
7. स्वराज्य विजयम् महाकाव्य

स्वराज्य विजयम् महाकाव्य का मूल्यांकन –

"स्वराज्य विजयम्" महाकाव्य में भारतवर्ष का प्राचीन गौरव, देश की अधोगति, वैदेशिकों का आक्रमण, वैदेशिक शासन के अत्याचार, दुर्भिक्ष, दारिद्रय आदि कारणों का उल्लेख है। तिलक, रवीन्द्र, अरविन्द, बालगंगाधर, महात्मा गान्धी, सुभाष, सरोजनी नायडू, आयंकर, एनीवेसेन्ट प्रभृति का स्वराज्य प्राप्ति के लिये योगदान, महात्मा गान्धी का असहयोग आन्दोलन और भारत विभाजन आदि प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास के चित्रण का सफल प्रयत्न है।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने सच ही लिखा है कि बीस सर्गां और 914 (सही 945) श्लोकों में आबद्ध यह महाकाव्य भारतीय पुनर्जागरण काल से स्वराज्य प्राप्ति तक के समस्त इतिवृत्त को मनोहारी शैली में समेटे हुए हैं। विगत शताब्दी में इस महान् देश में जो विराट विभूतियां उत्पन्न हुई और ऐतिहासिक महत्व की घटनाये हुई, उन सबका वर्णन महाकवि ने इस महाकाव्य में किया है। वस्तुतः कवि का जीवनकाल इन ऐतिहासिक घटनाओं के मध्य रहा है अत केवल वृतान्त ही नहीं, वृतान्त की समीक्षा भी इस महाकाव्य में है।

स्वराज्य विजयम् महाकाव्य 20 सर्गों में निबद्ध एक संस्कृत महाकाव्य है। इसमें स्वातन्त्र्य संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में गान्धीजी की जीवन चरितात्मक झांकी प्रस्तुत की गई है। इस महाकाव्य में 945 श्लोक हैं। अन्त में उपसंहार के रूप में कवि ने एकादश (11) श्लोक लिखे हैं।

महाकाव्य का कथानक –

प्रकृत महाकाव्य में भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लेने वाले वीरों का चरित्र वर्णित हैं।

प्रथम सर्ग में प्रस्तावना एवं गन्थ की निर्विध्न समाप्ति के लिये त्रिदेव की नमस्कारात्मक स्तुति की गई है। सच्चिदानन्द स्वरूप महेश को प्रणाम कर प्रकृतकाव्य की रचना करने हेतु कवि उद्यत होता है। तत्पश्चात् कवि वाल्मिकि, व्यास एवं कालिदास आदि प्राचीन कवियों की वन्दना करता है।

द्वितीय सर्ग में कवि ने भारत का भौगोलिक वर्णन, भारत में निवास करने वाले चारों वर्णों आश्रम चतुष्ट्य, आश्रम में पाठ्यक्रम से सम्बद्ध विभिन्न विषयों का वर्णन, आश्रमों में प्राणि हिंसा का निषेध एवं ततकालीन वैज्ञानिक समृद्धि आदि विषयों का सन्दरतम् वर्णन किया है।

तृतीय सर्ग में भारत की अधोगति का वर्णन है। चारों वर्णों का धर्मच्युत होना, उन पर हूण, मुगल, यवन हूण एवं अफगानों द्वारा आक्रमण किया जाना, ऐसे संकट कालीन समय में दक्षिण भारत में एकदिव्य ज्योतिका प्रादुर्भाव होना। उस दिव्यज्योति अर्थात् बालक मूलशंकर द्वारा शिव की अशक्तता एवं देश की कारूणिक दशा देखकर घर बार छोड़कर चला जाना, मथुरा आकर गुरू विरजानन्द के चरणों में सभी विषयों में

पारंगत होना आदि वर्णित है।

चतुर्थ सर्ग में विदेशियों यथा सिकन्दर आदि के आक्रमणों के साथ यह स्मिथ सेल्यूकस की पुत्री हेलन का चन्द्रगुप्त से विवाह गुलाम वंश, खिली तथा तुगलक वंश एवं मुगल शासन तथा मुगल शासकों के अत्याचारों का वर्णन है। मुहम्मद गौरी का आक्रमण, पृथ्वीराज का शासनकाल आदि इसी सर्ग में वर्णित हैं। इसमें 45 श्लोक हैं।

पंचम सर्ग में ब्रिटिश शासन में प्रजा की दुर्दशा के परिणाम स्वरूप भारतीयों द्वारा किया गया विद्रोह, ब्रिटिश शासन की समाप्ति का प्रयास एवं सन् 1857 ई. स्वतन्त्रता क्रान्ति आदि का व्यापक दर्शन है। इसमें 30 श्लोक हैं। इसमें अंगेजों की दुरंगी नीति का वर्णन है।

षष्ठ सर्ग में बंगाल की क्रान्ति का वर्णन है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार, अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा घोषित करने, भारतीयों का अपमान, राज राम मोहन राय द्वारा मानव धर्म का प्रसार कुशाग्रबुद्धि पत्रकार हरिशचन्द्र मुखर्जी, केशव चन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि द्वारा भारतीय संस्कृति एवं धर्म रक्षार्थ विदेशों में प्रसार, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि समाज सुधारकों दीनबन्धु मधुसूदन सरस्वती, बंकिमचन्द्र चटर्जी आदि महारथियों द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन है। रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज की स्थापना देवेन्द्र नाथ, रवीन्द्र नाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण वानाडेभण्डारकर आदि द्वारा नवभारत के प्रादुर्भाव हेतु किये गये कार्यों का वर्णन है। कवीन्द्र रवीन्द्र एवं श्री अरविन्द घोष आदि का वर्णन हैं। इसमें 66 श्लोक हैं।

"राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि" नामक सप्तम सर्ग में स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। चाणक्य की उक्ति, देशवासियों में प्रज्ज्वलित घोर असन्तोष, विदेशी शासकों द्वारा देशवासियों पर किये गये अत्याचार ध्यासोफिकल सोसाइटी की स्थापना, विदेशियों यथा मोन्य विल्यिम राथ मेग्डानल, मेक्समूलर ग्रिफिथ आदि द्वारा भारतीय साहित्य का अध्ययन एवं अनुवाद, न्याय में भारतीयों के साथ पक्षपात, अरविन्द घोष, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी द्वारा आई.सी.एस. उत्तीर्ण करने पर पक्षपात एवं उनके द्वारा धर्म प्रचार, हिंसा रहित, सत्यपूर्ण मार्ग द्वारा साध्य के साधन रूप "कांग्रेस की स्थापना आदि विषयों का जीवन्त एवं प्रभावकारी वर्णन किया गया है।" इसमें 45 श्लोक हैं।

अष्टम सर्ग "क्रान्ति एवं तुमुल आन्दोलन" नामक है। इस सर्ग में 40 श्लोक वर्णित हैं एवं यह सर्ग अपूर्ण है। इसमें रचनाकार ने देशभक्तों द्वारा स्वातन्त्र्योपलब्धि हेतु किये गए संघर्षों का विशद वर्णन किया गया है। देशोद्धारहेतु आबालवृद्ध, स्त्री पुरूष का प्रयास एवं इसके फलस्वरूप विदेशी शासकों का भयाकान्त होना, तिरंगा झंडा लेकर समस्त राष्ट्र में जय जय घोष करके स्वतन्त्रता का विगुल बजाना, एवं क्रान्तिकारियों के द्वारा नहीं केवल भारतवर्ष बल्कि अन्यान्य राष्ट्रों की मुक्ति हेतु शुभ कामनायें करना वर्णित हैं।

नवम सर्ग "झांसी राज्य के विलयीकरण के उद्योग एवं विरोध" नामक है। इसमें कवि ने रानी लक्ष्मीबाई के पावन चरित्र, उनक वैद्यव्य दत्तक पुत्र दामोदर राव का गोद

लेना, अंग्रेजी शासकों द्वारा झांसी राज्य के ब्रिटिश राज्य में विलयीकरण का उद्योग एवं इसके फलस्वरूप झांसी एवं अन्य अन्यान्य स्थानों पर उत्पन्न उग्र विरोध प्रदर्शन का वर्णन है। इसमें 50 श्लोक हैं।

दशम सर्ग में अंग्रेजों एवं महारानी लक्ष्मीबाई के मध्य सम्पन्न युद्ध का वर्णन है। सगन्ति में वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई के कारूणिक अन्त का सांगोपांग वर्णन है। इसमें 44 श्लोक हैं।

एकादश सर्ग में काश्मीर की सुरम्य प्राकृति छटा, वनों, पर्वतों, शैलमालाओं, वृक्षों, लताओं, नदियों, सुरम्य उद्यानों का विशद वर्णन करके काश्मीर को कल्हण, विल्हण, जिल्हण, कालिदास, वाणभट्ट, सुबन्धु, भास, वागभट्ट, उव्वट, मम्मट, कय्यट आदि कवियों, गद्य लेखकों एवं अलंकार शास्त्रियों की प्रसव स्थली दर्शाया है। इसमें 35 श्लोक हैं।

द्वादश सर्ग में कवि ने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी, भारत कोकिला सेरोजनी नायडू, अयंगर एवं एनविसेण्ट आदि का पावन तथा सारग्राही चरित्र चित्रित किया है। इसमें 54 श्लोक हैं।

त्रयोदश सर्ग में 1905 ई. से 1946 ई. तक का भारत में विदेशी शासन को चित्रित किया है। इसमें वार्सा सन्धि, लीग ऑफ नेशन्स में भारत का सीन, मौण्ट फोर्ड की सुधारनीति, हिटलर का चरित्र चित्रण आदि का विशद वर्णन चित्रित किया है। इसमें 38 श्लोक हैं।

चतुर्दश सर्ग में दिसम्बर 1920 में नागपुर में हुये प्रथम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में चितरंजन दास एवं लाला लाजपतराय आदि के द्वारा असहयोग आन्दोलन का समर्थन, विदेशियों के दमनचक्र द्वारा गान्धी जी का चिन्तित होना, चोराचोरी गांव का विद्रोह एवं अंग्रेज शासकों द्वारा विद्रोहियों को दी गई विविध घोर यातनाओं, राउण्ड टेबुल (गोलमेज कांफ्रेंस) आदि का वर्णन किया गया है। इसमें 41 श्लोक हैं।

पंचदश सर्ग "साइमन गो बैक" अर्थात् "साइमन वापस जाओ" आदि नारों से भारतीयों द्वारा साइमन कमीशन का विरोध प्रदर्शन, "स्वराज्य बिना शान्ति नहीं लेंगे" ऐसी भावनाओं से ग्रस्त क्रान्तिकारी नेताजनों का "शान्ति" तथा "क्रान्ति" दो पक्षों में विभक्त हो जाना, लाहौर अधिवेशन के पूर्व गान्धी जी एवं मोतीलाल नेहरू आदि शान्ति पक्ष के नेताओं का दिल्ली वायसराय के पास जाना तत्पश्चात् अधिवेशन का अध्यक्ष पण्डित जवाहर लाल नेहरू को बनाना एवं अग्नि के समान इस क्रान्ति का समस्त राष्ट्र में फैल जाना वर्णित है। इसमें 41 श्लोक हैं।

षोडश सर्ग में सुभाष चन्द्र बोस द्वारा किये गये कृत्यों यथा त्रिपुरा अधिवेशन में सुभाष द्वारा की गई अधिवेशन की अध्यक्षता गान्धी जी द्वारा स्वीकृति, शान्ति के पक्ष के नेताओं द्वारा विरोध, महासभा में सुभाष चन्द्र द्वारा त्याग पत्र देना, आजाद हिन्द फौज का गठन, पठान के वेश में जाकर जर्मनी पहुंचकर हिटलर से मित्रता करना, उनकी

जापान यात्रा एवं उनके द्वारा की गई क्रान्ति का वर्णन है। इसमें 39 श्लोक हैं।

सप्तदश सर्ग में क्रान्ति एवं नेहरू उद्दीपन का वर्णन है। सरदार भगत सिंह का चरित्र चित्रण, अल्फ्रड पार्क इलाहाबाद के गोलीकाण्ड में आजाद की मृत्यु, चटगांव में क्रान्ति सेना का प्रवेश, देश के प्रत्येक गांव विद्रोह की चिंगारी का प्रज्ज्वलित होना, विदेशियों की दमन नीति, पंजाब के जलियांवाला बाग में हो रही सभा में जनरल डायर द्वारा कराये गये गोली काण्ड आदि का विशद वर्णन है। इसमें 53 श्लोक हैं।

अष्टादश सर्ग में लार्ड इरविन की दमन नीति, जवाहर एवं गान्धी का बन्दी बनाना, गान्धी जी के बन्दी होने पर देश में उत्पन्न समग्र क्रान्ति, गान्धी इरविन पैक्ट, द्वितीय विश्वयुद्ध, गान्धीजी एवं विनोवा जी द्वारा किये गये सत्याग्रह, राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस में भाग लेकर गान्धी जी का निराश लौटना, स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ही साथ अस्पृश्यता आन्दोलन का प्रारम्भ, गान्धी क्रिप्सेन वार्ता, देश में उग्र क्रान्ति प्रसारित होना, सत्याग्रह रूपी अमोघ अस्त्र का प्रयोग, गान्धी का स्वराज्य सम्बन्धी भाषण "डू एण्ड डाई" अर्थात् "करो या मरो" का महाव्रत प्रत्येक भारतीय द्वारा लेना आदि घटनाओं का चित्रण वर्णित है। यह 56 श्लोकयुक्त है।

एकोनविंशततम सर्ग में दिल्ली नगरी की भव्य झांकी का प्रासंगिक वर्णन है। इसमें 68 श्लोक है।

विंशतितम सर्ग में स्वतन्त्रता प्राप्ति, देश विभाजन, गान्धीजी की नोवाखाली यात्रा, जवाहर लाल द्वारा प्रधान मंत्री का एवं पटेल द्वारा गृह मंत्री का पद ग्रहण करना, स्वतन्त्रता पर्व में देश के कोने कोन में किये गये उत्सव एवं उल्लास प्रदर्शन, गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेन्टन के उपरान्त चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का गर्वनर जनरल बनना आदि का वर्णन है। इसमें 36 श्लोक है। देश विभाजन प्रसंग रंग नामक उपसंहार सर्ग में 112 श्लोक हैं।

भाषा शैली –

भाषा भावों के अनुरूप, सरल एवं कोमल कान्त पदावली के सनाधित है। प्रसंगो के अनुरूप ही भाषा में प्रसार, माधुर्य एवं ओज पूर्ण समावेशित किये गये हैं। भाषा में ऋजुता हैं, कहीं कोई कृतिमता, छल, विलष्टता नहीं, हाँ कहीं–कहीं प्रसाद एवं माधुर्य गुण प्रधान कालिदासीय वैदेर्भी रीति अवश्य परिलक्षित होती है।

"क्व चांग्लाः शक्तिसम्पन्नाः प्रपन्नाः दृढ़शासकः।
क्वचेद् हृतशास्त्रास्त्रं भारतं भव्य भारतम्।।"

(स्व.वि. 1/9)

"व्यष्टिः समष्टये प्रभवेदविलीना।।"(स्व.वि. 16/38)

"व्यष्टि समष्टि के लिए हो बलिदान" मैथिलीशरण गुप्त की रचना का प्रभाव तो दर्शनीय है ही साथ ही "दरिद्रतायाः क्लिनग्ननृत्यम" (5/3), "व्योम्नोनून पुष्पवर्षाभिलाषः" (7/31), "नानसत्यम्" (8/30) "अमूल चूल" (19/56), आदिक हिन्दी महावरों के साथ

ही लोकोक्तियों का संस्कृतीकरण भी अवलोकनीय है।

"वे अमर हो गये जो स्वतन्त्रता के लिए मर गये,
वे मरे, मरे नहीं, जो परोपकाराय खुद मिट गये।
अमृतास्ते हि संजाताः ये स्वातन्त्र्यकृते मृताः,
यतः परोपकाराय न भवन्ति मृताः मृताः"।।

(स्व.वि. 1/45)

यदि राष्ट्र हेतु मृत्यु भी हो जाये तो वह हमारे लिए अमृत्व ही है। स्वराज्य का सुख तो फलत्वेन भावी पीढ़ी ही पायेगी। हमारा सच्चा मनोराज्य स्वतन्त्रता प्राप्ति ही मुख्य है। सौभाग्य से हमारा वह मनोरथ पल्लवित हो जाये तो फल प्राप्ति ही हो गयी समझने योग्य है –

"मृत्युः स वा स्यात् यदि राष्ट्र हेतोः स नः कृते स्याद मृतत्वमेव।
स्वराज्यसौख्य तुभाव सन्ततिः फलत्वरूपेण लप्स्यते तत्।।"

(स्व. वि. 15/35)

"मनोरथो नास्तु च मातृभूमेः स्वतन्त्रता प्राप्तिर होडस्ति मुख्यः।
दिष्ट्या से चेत्पल्लवितोभवेन्नः मन्येतदातत फलमेवताप्तम्।।"

(स्व.वि. 15/36)

अंग्रेजों के साथ भारतीय देशभक्तों के युद्ध एवं भातरीय वीरों द्वारा की गयी जयघोष गर्जना में कवि के ओजपूर्ण गुण सम्पन्न भाषा के दर्शन होते हैं । यथा –

"भल्ल त्रिशूल खड्गाधै–र्भुशण्डीभिश्च हताहतैः।
शोणितस्य च सा धारा अपारा प्रववाह हि।।"

(स्व.वि. 10/4)

अन्य श्लोकों में भी ओजमयी भाषा दर्शनीय है। "माधुर्य" एवं "प्रसाद" गुण युक्त भाषा इन्द्रप्रस्थ वर्णन प्रसंग में अवलोकित होती है। कवि का पद लालित्य उपरोक्त प्रसंग दर्शनीय है[4] –

"वल्लीसु मल्ली नगरीषु दिल्ली,
सरित्सु गंगा वनितासु सीता।
हिमांचलोऽसावचलेषु धन्यः,
देशेष्वनन्यः शुभभारतोऽयम्।।"

(स्व.वि. 19/60)

काव्य की भाषा सामासिकता एवं क्लिष्टता रहित है। कश्मीर वर्णन प्रसंग में काव्य के भाषा सौष्ठव का उत्कृष्ट रूप देखकर ही इस बात की प्रमाणिकता प्राप्त होती है कि कवि को भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। भाषा की सहजबोधिता होने के फलस्वरूप संस्कृत का किंचित ज्ञाता भी अर्थबोध करने में सफल रहता है। चमत्कार प्रदर्शनिक भाषा से कवि कोसों दूर रहा है। अनेक अंग्रेजी एवं उर्दू आदि के शब्दों को यथावत् संस्कृत की विभक्तियों को लगाकर कवि ने प्रयुक्त किया है। यथा – वीटेन

(1/10), हूणमुगलयवनाफगानजाः (3/11), इंग्लिश (5/4), यूरुपीयैः थ्यासोफिस्टै (7/17), बैरिस्टोजायत (11/32), इंग्लैण्डजनैस्तु वासी (13/15), लीग ऑफ नेशन्स (13/16), मेण्टफोर्ड (13/18), इटल्याश्च (13/20), रौलेट एक्ट (13/37), दिसम्बरे (14/4), गो सायमन बैक इति (15/17), अलहबादगतेडल्फड पार्के (17/21), डायरः (17/35), रोण्ड टेबल सैसदि (18/32), क्रिप्सेन (18/37), डू आर डाईति (18/56) आदि अनेक अंग्रेजी शब्दों को संस्कृतीकरण करके प्रयोग किया है।[5] जिससे भाषा में बोधगम्यता आ गयी है।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि श्री द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री की भाषा शैली लोक प्रचलित सरल संस्कृत में सर्वत्र व्यवहृत हुई है जो सहृदय हृदयों को सहज ही आकृष्ट कर लेती है। वस्तुतः यही कवि और काव्य की सच्ची सफलता है।

छन्दोलंकार योजना –

इस महाकाव्य में स्वाभाविक रूप से वर्ण्य विषय के अनुसार छन्द तथा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग पाया जाता है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द प्रयोग हुआ है। सर्गान्त में छन्द परितर्वतन दृष्टिगोचर होता है।

अनुष्टुप, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, बसंततिलका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, द्रुतबिलम्बित, शिखरिणी एवं अन्य अनेक छन्दों का प्रयोग कवि ने महाकाव्य में किया है। सर्वाधिक "अनुष्टुप्" एवं "उपजाति" छन्दों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार "अनुष्टुप्" एवं उपजाति छन्द कवि के प्रमुख प्रिय छन्द है। उपरोक्त के एक–एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं। यथा –

"इति सेनापतेः श्रुत्वा त्वोदशं गौरसैनिकाः।
भूयो घोरतरं युद्धं कृतवन्तों महाद्भुतम्।।"

(स्व.वि. 10/24)

प्रमुख रूप से महाकाव्यों में प्रयुक्त "उपजाति" का उदाहरण निम्न है –

"यत्रोन्नतानां मणिमन्दिराणां,
सुवर्णसम्भूषितशेखराणि।
नक्षत्रताराप्रतिबिम्बितानि,
चाचक्यमानानि समुल्लसन्ति।।"

(स्व.वि. 19/10)

काव्य में छन्दों के सफल प्रयोग से यह उक्ति अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है कि छन्दशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रकृति महाकाव्य संस्कृत साहित्य की एक श्रेष्ठ कृति है।

अलंकार विधान –

काव्य में अलंकरिक दृष्टि से कवि का श्रेष्ठ कला शिल्प स्वतः परिलक्षित होता है। काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, पुनरूवित, प्रकाश एवं अर्थान्तर न्यास

अपह्नुति एवं संकर आदि प्रचलित अलंकारों के द्वारा श्री वृद्धि हुई है। सानुप्रास पदावलि का काव्य में सर्वत्र प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, किन्तु निम्नलिखित स्थल विशेष रूपेण उल्लेखनीय है।

नाथान्तश्च श्री सुरेन्द्रः सुरेन्द्रः (6/30) जनारविन्दस्त्वरविन्द घोष (8/53), विलसति च पुनः मा भारती सा भारती सा (10/43), विमाविमाति सरसायासांच बिम्बाघरे (11/11), लसन्ति विवुधास्ते भूसुराभूसुराः (11/23), एकः एकाक्षः एवापणते द्वितीयः (19/4)।

कवि द्वारा उपमा अलंकार के भी मनोहारी चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यथा –
"शशिह्यर्कताराग्रहमण्डलैश्च, प्रतिबिम्बिता या यमुना निशायाम्।
माणिक्यमुक्तामणिरत्नरम्या, मालाविशालेव विभाति दिल्लयाः।।"

कवि का उपमा विन्यास अति उत्तम है। निम्नांकित स्थल उपमा के सन्दर्भ में दर्शनीय है। यथा – अस्ति में गति विधिर्विधोरिव (1/48), देवतेवभुवियासुशोभते (2/5) यादिस्टष्टिः जननीव राजते (2/6), दिव्य वैद्य इव संव्यराजत (2/34), तेनिरंकुश महागजा इव (3/3), लालितोनवशीव कान्तिमान (3/28), तारकेष्विव वमौ निशेश्वरः (13/30), दिल्ली विधवेवजाता (4/36), जांकेला इवाचरन् (6/15), पन्नगा इव कोपनाः (9/36) सैन्यै सिंहनीववुभुक्षिता (10/25) आदि। उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य स्थलों पद भी उपमालंकार की छटा दर्शनीय है।[6]

यद्यपि यमक का प्रयोग काव्य में दुर्बोधता उत्पन्न करता है तथापि काव्य में यह सहज भाव में प्रयुक्त होकर कहं भी जटिलता प्रकट नहीं करता है। यथा –

"बंग प्रदेशस्य च कान्तकानने,
जनारविन्दस्त्वरविन्दघोषः।।"

(स्वा.वि. 2/40)

"विलसति च पुनः सा भारती भारतीया।
तद्वधि भुवने ते राजतां लक्ष्मी।।"

(स्वा.वि. 10/43)

"एके सर्वविदो लसन्ति विबुधास्ते भूसुराभूसुराः।।"

(स्वा.वि. 11/23)

"प्रकृति नटी" (11/14) तथा "कविषट् पदा" (1/35) आदि पदों में कवि ने साग रूपक का अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। अनुप्रास, उपमा यमक एवं रूपक के साथ ही साथ कवि द्वारा काव्य में उत्प्रेक्षाओं का भी बहुलताओं का प्रयोग किया गया है। काव्य में प्रयुक्त उत्प्रेक्षाएं निम्न लिखित हैं। यथा – "विदिषन्त इव दिव्यरूपिणीम्" (3/8), "तददारिद्रय प्रत्यह नृत्यतीव" (6/22), समादायाकमन झांसी सर्पापादाहताइव (10/2), अपूर्ण लीलामिव जीवनस्य (10/36), पर्यामुखानीव विषाचितानि (15/3), निग्रहीत इवच्छल छद्मना (17/18), आरोपिताशीर्वचनावली व (19/52) इत्यादि उत्प्रेक्षाओं ने काव्य में चारुता उत्पन्न की है। काव्य में "पुनरूक्ति प्रकाश" भी अनेक स्थलों पर

दृष्टिगोचर हुआ है।[7] श्लेष अलंकार भी यत्र तत्र कतिपय स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। यथा –

"कालिमा न हृदि यागमण्डपे,
पन्नगेषु न नृषु द्विजिह्वता।
देहवद्धमिव धर्मशासनं,
राजतेस्म पारिताऽत्रभारते।।"

(स्वा.वि. 2/48)

"अर्थान्तरन्यास" का भी सुन्दर निर्दशन विभिन्न स्थलों पर दृष्ट्व्य है। यथा –

"वायुसंचारचांचल्योपेते च विमले जले।
पूर्णेपि पार्वणश्चन्द्रो वक्रता नोपयतिकिम्।।"

(स्व.वि. 1/23)

"पूर्वं तु तत् फोरसनामकं नृप,
पुरूसस्तुल्यभदम्य विक्रमम्।
पराजयामास समृमिद्धसंगरे,
जयेन्न को वा भुवि सुप्तसिंहम्।।

(स्व.वि. 4/8)

"अर्थान्तरन्यास" का विन्यास अन्यान्य स्थलों पर भी मनोहर बन पड़ा है।[8] "कश्मीर वर्णन" नामक सर्ग में रमणीयों के वर्णन के सन्दर्भ में भ्रान्तिमान का सुन्दर विधान कवि ने प्रस्तुत किया है। यथा –

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले, नैषामृगावच्छविः,
आभाया मुखमण्डले, हृदयजासैवास्ति नैन्दुघुति।
भ्रान्त्या कि ग्रसितुं ममाननमहो! राहो! समुद्वेल्लसि,
यत्रेत्य प्रमदाजनः सवदनं राहोग्रहाद्रक्षति।।

(स्व.वि. 11/12)

कतिपय श्लोकों में "संकर अलंकार" का भी सुन्दर विधान कवि ने किया है। "अनुप्रास" यमक तथा उपमा का "संकर" एक ही स्थान पर दृष्टव्य है। यथा –

"कुन्देन्दीवरकान्तकोमल तनू केयं ललल्लोचना,
साक्षाद्रा वनदेवतेव सुभगा सौदामिनी वोज्जवला।
मेदिन्याः सशरीरिणीव किमु वा माया मनोमोहिनी,
इत्येव भुवि मानवैस्तु बहुधा सा कल्पिताङकल्पिता।।"

(स्वा.वि. 11/30)

काव्य में अन्य अन्यान्य स्थलों पर भी "संकर" का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।[9] इस प्रकार काव्य में शोभावृद्धि अलकांरो के सुन्दर, प्रयोग से हुयी है। अतः दृष्टव्य है कि कवि को अलंकार शास्त्र का सुन्दर ज्ञान है जो काव्य में प्रयुक्त अलंकृत काव्य राशि को देखकर पुष्ट होता है। जिससे इस महाकाव्य कृति की उपादेयता और लोकप्रियता में असाधारण वृद्धि हुई है।

रस निष्पत्ति –

रसाभिव्यक्ति सराहनीय है। अंगीरस के रूप में वीररस की अभिव्यंजना हुई है। साथ ही साथ अनेक स्थलों पर श्रंगार शान्त एवं वीभत्स आदि रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। प्रकृत श्लोक में रसराज श्रंगार की अभिव्यक्ति दर्शनीय है –

"कस्तूरीतिलकं ललाटपटले नैवामृगांकच्छविः।
आभा या मुखमण्डले हृदयजा सैवास्ति नेन्दुद्युतिः।।
भ्रान्त्या किं ग्रसितुं ममाननमहो राहो समुद्धिल्लसि।
यन्नेत्थं प्रमदाजनः स्वबदनं राहोर्ग्रहाद्रक्षतिः।।"

शान्तरस की अभिव्यक्ति काव्य के निम्न श्लोक में दर्शनीय है। यथा –

"चरीकर्ति हियोविश्वं, बरीभर्त्ति च तत्पुनः।
जरीहर्त्ति नमस्तस्मै ब्रह्मविष्णुशिवात्मेन।।"

(स्व.वि. 1/3)

काव्य गुण वर्णन प्रसंग में भी शान्त रस की अजस्रुरसधारा प्रवाहित हो रही है –

"रसोज्ज्वला भावगुणदिगर्भा सालंकृतिः रोतिमती प्रगल्भा।
सा काऽप्युदारा कृतिनामुदेति, मन्येअतिपुण्येन हि काव्यधारा।।"

(स्व.वि. 1/46)

इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय एवं कोनविंश सर्गों में शान्तरस के अनेक उदाहरण निहित है। स्वतन्त्रता संग्राम में संघर्षरत क्रान्तिकारी नेताओं के प्रसंग वर्णन में वीर रस का परिपाक हुआ है। युद्ध वीररस की अभिव्यंजना काव्य में हुई है। सिकन्दर एवं पुरू के मध्य युद्ध का वर्णन वीररस से ओतप्रोत है। यथा –

"सिकन्दरस्याद्भुतवाहिनीष्वपि विभीषिकापि पदं चकार सा।
प्रगन्तुमग्रे पदमेकमध्यहो, समुद्यता नाऽभवदन्ततश्च साः।।
अगण्यसैन्यैरपि चारूसज्जितैः महाश्ववारैश्च तथा पदातिभिः।
आच्छादयामास महीयसीं मही, यथाम्बरं प्रावृषि मेघ एव।।"

(स्व. वि. 1/6–7)

इसी प्रकार अनेक अन्य स्थलों पर भी वीररस की सुन्दर अभिव्यंजना का परिपाक हुआ है। करूण रस की अभिव्यंजना वीरांगना लक्ष्मीबाई की मृत्यु पर अभिव्यक्त शोक के सन्दर्भ में निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है –

"यः साधुवेशः किल तातियोपि समागतस्तन्नरणप्रसंगात्।
तृणप्रयुंजंश्च विधाय साश्रुः वहिन प्रदाहं प्रददौ सशोकम्।।"

(स्व.वि. 10/31)

करूण रस के उदाहरण काव्य में अन्य स्थलों पर भी द्रष्टव्य है। वीभत्स रस की भी अभिव्यंजना अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। यथा –

"केंऽमी वराका हि श्रृगालरूपाः प्रशासितुं केसरिणोमृगादान्।
इत्यात्यसम्मानमयाः स्वभावाद् भावाः समुद्भावमवायुरुग्राः।।"

इसी प्रकार समस्त प्रमुख रसों की अभिव्यंजना प्रकृत काव्य में हुई है। कुछ अन्य रसों की झलक भी विभिन्न स्थलों पर न के बराबर द्रष्टव्य होती है। इस प्रकार काव्य की रसधारा महाकाव्य की परम्परा के अनुकूल ही प्रवाहित हुई है।

सूक्तियों का प्रयोग –

सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग भी यत्र तत्र कवि ने भाषा में सुन्दरता लाने के लिए किया है जिससे कवि का भाषा गाम्भीर्य प्रकट होता है। द्विजेन्द्रनाथ की सूक्तियां देशभक्ति की वे आरोग्य घुट्टियां हैं जिन्हें पीकर प्रत्येक बालक स्वस्थ होकर मातृभूमि पर न्यौछावर होने के लिए हंसते–हंसते बलिवेदी पर चढ़ जाता है –

"दास्यं परेषा न कदाप्युपास्यम्।"[10]

"येषादेशः स्युस्त एव क्षितीशाः, अन्येषां शासितुं कोऽधिकारः।"[11]

"भवेत्स्वराज्यं किमु वास्तु मृत्युः कल्पस्तृतीयो नहि नोऽस्ति सत्यम्।
किं जीवनं तद् यदि न स्वतन्त्रं, दास्यात्तु मन्ये मरणं गरीयः।।"

(स्व.वि. 8/24)

"वयति यस्तु जनो विषवल्लरी, सनसुधामधुरं फलमश्नुते।
परिणतिस्तु कुनीतेः सदाऽति विषमा भवतीतिमतं ध्रुव।" (स्व.वि. 9/36)

"सर्वस्वदानेन बिना कदापि स्वातन्त्र्य लक्ष्मीर्न भुवि प्रसीदति।"(स्व.वि. 18/52)

"स्वार्थान्धलोका न कदापि दोषं पश्यन्ति भूम्ना प्रतिबोध्यमानाः।"

(स्व.वि. 20/2)

"यावन्मिलित्वा निवसन्ति देशे न तान् प्रभुः शासितुमन्यदेशः।"(उपसंहार /3)

"स्वार्थान्धता सजज्नमप्युदारमन्धीकरोतीति।" (स्व.वि. 5/18)

"विपरीतकाले कर्तव्यमूढ़ा प्रकृतिर्वभूव।" (स्व.वि. 5/19)

"जयेन्न को वा भुवि सुप्तसिंहम्।" (स्व.वि. 4/8)

"कृतं सुकार्यं फलतीव नित्यम्।" (स्व.वि. 8/15)

"मृतोऽपि सो मनोजातो यशः कायेन जीवति।" (स्व.वि. 12/24)

"असाधनानां तु प्रभुः सहायः" (स्व.वि. 16/19)

इसी प्रकार सारगर्भित अन्यान्य सूक्तियों का प्रयोग भी कवि ने अन्य स्थलों पर किया है।[12] अस्तु कवि का भाषा शिल्प प्रशसंनीय रहा है। कवि सुकुमार मार्गी वैदर्भी रीति के अनुसरण में निष्णात है। अतः भाषा शैली की दृष्टि से अर्वाचीन काल का यह श्रेष्ठ एंव उत्कृष्ट महाकाव्य है।

प्रकृति चित्रण –

"स्वराज्यविजयम्" महाकाव्य वीररस प्रधान चरितात्मक महाकाव्य होने के कारण

कवि ने प्रकृति चित्रण को वरीयता नहीं दी है तथापि महाकाव्यों की तुलना क अनुरूप कवि ने यत्र तत्र प्रकृति सुरम्य चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भारत भू एवं पर्वतराज के चित्रण में, कश्मीर वर्णन एवं दिल्ली वर्णन के प्रसंग मे प्रकृति चित्रण की विविध शैलियों से परे प्रकृति के कुछ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। द्वितीय सर्ग में वर्णित भारत भू उदहारणार्थ प्रस्तुत है।

"विश्वकुंजकमनीयवेषा सप्तसिन्धुरशनासमावृता।
अद्रिराजवनराजिविराजिता कापि भारतमहीविराजते।"

(स्व.वि. 2/2)

विजय की पताका के समान गगनचुम्बी हिमशुभ्र हिमालय जिसकी अर्चना प्रातः कालीन रक्तिम रवि रश्मियां करती हैं, का चित्रण दर्शनीय है। यथा –

"शैलराजहिमशुभ्रशेखर व्योमचुम्बिविजयध्वजः शिवः।
या किलारूणगर्भास्तराजिभिः स प्रभातरर्वियति स्वयं।।"

(स्व.वि. 2/3)

"काश्मीर वर्णनम्" नामक एकादश सर्ग में कवि ने पृष्ठ भूमि के रूप में प्रकृति के अनेक मनोहारी रम्य चित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति रूपी नटी द्वारा फैलायी गयी लोकत्तर विमा जो कश्मीर में प्रसारित हैं का वर्णन निम्न श्लोक में दृष्टव्य हैं :

"यस्या सा प्रकृतिर्नटी निजविमा लोकोत्तरंमातनोत्,
प्रालेयाद्रिशिलातुषारधवला सख्यातिगाश्चापगाः।
दत्ते मारकतीम्धुतिं वसुमतीं नैसर्गिकी भासुराम्,
नाना सौरभगन्धिभिः सकुसुमैर्हेमः सदालङ्कृता।।"

(स्व.वि. 11/4)

इसी प्रकार दिल्ली वर्णन प्रसंग में वहां के ऊचे भवनों की प्राकृतिक छटा का स्मरणीय वर्णन निम्न पक्तियों में दृष्टव्य है –

"यत्रोन्नतांनां मणिमन्दिराणां सुवर्णसम्भूषितशेखराणि।
नक्षत्रताराप्रतिबिम्बितानि चाचक्यमानानि समुल्लसन्ति।।"

(स्व.वि. 19/10)

दिल्ली के चाचक्यमान प्रासाद तुल्य उच्च भवनों का चित्रणोपरान्त कवि ने रसाल, अनार तथा सेब के बगीचों का बड़ा ही मनोहर चित्रण प्रस्तुत करने का अच्छा प्रयत्न किया है जो यहां दृष्टव्य है –

"रसालवृन्दोपवनानि यत्र श्रीनन्दनोद्यानानिभानि भान्ति।
वने वने दाडिमसेवमृद्वयोमृद्वी कवल्लयः परितोल्सन्ति।।"

(स्व.वि. 9/17)

अर्थात् इससे प्रकट होता है कि कवि प्रकृति के बाहय रूपों की ही सुन्दर झांकी प्रस्तुत करने में समर्थ रहा है। आन्तरिक रूप की नहीं। अतः निष्कर्षतः प्रकृत महाकाव्य का प्रकृति चित्रण उत्कृष्ट कोटि का न होकर परम्परानुसरण मात्र ही रहा है।

समीक्षा –

"स्वराज्य विजयम्" कुछ प्राचीन काव्य परम्परा से हटकर लिखा गया है। परम्परा से विच्छेद न होकर केवल परम्परा में विच्छेद है। कोई पुराण प्रसिद्ध नायक न होकर लोकतन्त्रात्मक स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील निम्न, मध्यम एव उच्चवर्गीय समस्त संघर्षरत राष्ट्रीय नागरिकों जो वीर थे की गाथा इस महाकाव्य में उपनिबद्ध है। सर्गबद्ध महाकाव्य की परिधि को अपनाया और छन्दोबद्धता के लिए प्रतिबद्ध रहा परन्तु रात्रि वर्णन आदि को महाकाव्य में कोई स्थान नहीं दिया गया। एक दृष्टिकोण से महाकाव्य प्राचीन–अर्वाचीन का अद्‌भुत गठबन्ध है। अभी पुरातन का मोह छूटा नहीं है परन्तु नूतन दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। पुरातन कवियों के प्रति विनम्र नमन महाकवि के उदातत्त्व को उजागर कर रहा है। उन सहृदयों की सर्वोत्कृष्टता को स्वीकार किया है जिनका चित्त खरा–खोटा परखने में सुन्दर वर्ण वाले काव्य–रूप स्वर्ण के लिए कसौटी स्वरूप है।

बाण की भांति महाकवि द्विजेन्द्रनाथ के मस्तिष्क में अपने काव्य का स्वरूप स्पष्ट था। महाकाव्य द्विजेन्द्रनाथ के मनोराज्य की सच्ची काव्यधारा श्रंगारादि रसों से उज्ज्वल, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारिभाव तथा प्रसाद, ओज, माधुर्य गुणों से युक्त उपमादि अलंकारों से अलंकृत, वैदर्भ प्रभृति रीतियों से युक्त उर्जस्विनी, अनिर्वचनीय, उदार काव्य धारा बड़े पुण्यों से ही प्रकट होती है। वस्तुतः कवि का जैसा मनोराज्य है वैसा ही प्रसाद एवं माधुर्य सम्पन्न अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार और सुललित पदावली का प्रयोग परम्परागत सूक्तियों के साथ हिन्दी भाषा से अनुदित सूक्तियां महाकाव्य में पग–पग पर दृष्टव्य हैं। कवि ने काव्य के एक प्रयोजन और कथ्य की ओर संकेत करते हुये कहा है कि राजनीति की बातों का सारभूत सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् से विभूषित यह महाकाव्य विद्वद्‌वृन्दमिलिन्दों के रसास्वादन के लिए है। कवि की आकांक्षा है कि स्वराज्य विजयम् महाकाव्य कानन में केलि कौतुक कामुक कवि भ्रमर विहार करके आनन्द अनुभव करें। कवि की यह भी महती अभिलाषा है कि सुधारस की मधुमय माधुरी से परिपूर्ण सुन्दर तथा कोमल काव्यमाला से उपलालित इस स्वराज्य विजयम् महाकाव्य को विद्वान लोग कृपापूर्वक कर्णफूल के समान पूर्णरूपेण कर्ण का आभूषण बनायें।

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणियाँ –

1. स्वराज्यविजयम्, 1/32, 33, 2. स्वराज्यविजयम्, 1/32
3. स्वराज्यविजयम्, 1/33
4. स्वराज्यविजयम्, 2/54, 3/22, 6/23, 11/25, 11/29, 11/31, 12/41, 16/13, 17/13, 19/15, 19/37,
5. स्वराज्यविजयम्, 6/39, 8/17, 18/17, 18/19, 18/21, 15/30
6. स्वराज्यविजयम्, 4/17, 8/22, 28

7. स्वराज्यविजयम्, 11/2, 11/29, 12/39, 17/39, 19/59, 20/22
8. स्वराज्यविजयम्, 12/3, 5
9. स्वराज्यविजयम्, 19/29, 13/2, 13/27, 17/37
10. स्वराज्यविजयम्, 5/23
11. स्वराज्यविजयम्, 7/14
12. स्वराज्यविजयम्, 3/45, 4/13, 17, 8/28, 11/26, 15/9, 17/40, 18/54

सप्तम अध्याय

आचार्य सुधाकर शुक्ल का जीवन परिचय एवं 'गान्धिसौगन्धिकम्' का साहित्यिक मूल्यांकन

सप्तम अध्याय
आचार्य सुधाकर शुक्ल का जीवन परिचय एवं 'गान्धिसौगन्धिकम्' का साहित्यिक मूल्यांकन

रचना, रचयिता के व्यक्तित्व का दर्पण होती है। इसमें रचनाकार की जीवन के विभिन्न व्यापारों के प्रति प्रतिक्रिया एवं उनके अनुभवों के रूपायन में उसके व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष सहज रूप में क्रियान्वित रहता है।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व एक दूसरे के पूरक हैं। कवि का व्यक्तित्व जितना महान् होगा उसका साहित्य भी उतना महान् होगा, उसकी निष्ठा जितनी सत्य होगी, उसकी रचना उतनी ही महत्वमय होगी।[1]

साहित्य पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव साहित्यकार के व्यक्तित्व का पड़ता है, वह जो कुछ लिखता है, उस पर उसके अनुभव, मनोभावों, विचारों की अमिट छाप रहती है।[2]

कविता की तरह व्यक्तित्व में भी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का संश्लिष्ट रूप रहता है। व्यक्तित्व के अनुभूतिगम्य अथवा आन्तरिक पक्ष में कवि की धारणायें, विचारदृष्टि, राग–विराग तथा जीवन मूल्य आते हैं तथा अभिव्यक्ति पक्ष में उसके जीवनवृत्त से सम्बन्धित विविध विचार आते हैं। अतः इनके ज्ञान के लिए कृतित्वानुशीलन के पूर्ण कृतिक! पण्डित सुधाकर जी शुक्ल के व्यक्तित्व का विश्लेषण परमावश्यक है।

महाकवि सुधाकर का व्यक्तित्व –

पण्डित सुधाकर जी शुक्ल का व्यक्तित्व बहुमुखी थी, उनमें एक साथ साहित्यकार, कुशल अध्यापक एवं प्रकृष्ट प्रवक्ता आदि विभिन्न व्यक्तियों का अद्भुत वे सन्तुलित सामन्जस्य है। वे जन्मजात कवि हैं एवं उन्होंने अपनी सम्पूर्ण "वय" संस्कृत व हिन्दी के समुन्नत साहित्य सृजन में समर्पित की है। उन्होंने जो सोचा साहित्य के लिये वह किया। सामान्यतया राह पर चलना सरल होता है परन्तु राह बनाकर दूसरों को उस पर चलने के लिए प्रेरित करना विरले ही महापुरूषों का कार्य होता है। पण्डित सुधाकर जी शुक्ल ऐसे ही महापुरूष थी।

जीवन–वृत्त–

किसी कवि की मान्यतायें एवं विचारों को उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं द्वारा जानने हेतु उसका जीवन वृत्त जाना अतिआवश्यक होता है। प्राचीन कवि आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति से दूर थे क्योंकि प्राचीन कवियों की प्रवृत्ति आत्म प्रकाशन की ओर न रहकर आत्मभिव्यक्ति की ओर अधिक रही किन्तु सौभाग्य का विषय है कि पण्डित सुधाकर के साहित्य में आत्मभिव्यक्ति तो है ही, साथ ही साथ आत्म प्रकाशन की ओर भी पर्याप्त दृष्टिपात किया गया है।

जन्म एवं जन्म स्थान –

कवियों के जन्म एवं जन्म स्थान के विषय में एकदेशीय विचार का निर्वाह करना व्यावहारिक परम्परा है। वेसे पण्डित सुधाकर जी जीवन एवं धरती, संस्कृति एवं संस्कार, मानवता एवं आस्था के कवि हैं। ऐसे प्रतिभा सम्पन्न समर्थ कवि ने अपने जन्म से भारत भूमि के किस भूखण्ड को गौरवान्वित किया है, वह है उत्तर प्रदेश के इटावा जिले का ऐतिहासिक ग्राम क्योंटरा – कालिन्दी के तट पर अवस्थित इस साहित्यकार को अपनी मिट्टी में पालने वाला यह ग्राम धन्य है जहां आज से लगभग 75 वर्ष पूर्व संस्कृत, हिन्दी के समर्थ कवि सुधाकर जी का जन्म हुआ।

इस प्रकार स्पष्टतः पण्डित सुधाकर जी शुक्ल का जन्म श्रावण शुक्ल द्वादशी दिन बुधवार 27 अगस्त 1920 को यमुना के वामपुलिन पर स्थित क्योंटरा नामक ग्राम में जनपद इटावान्तर्गत के एक प्रतिष्ठित कान्य कुब्ज परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित रघुवंशी लाल तथा माता का नाम जनक दुलारी था। यथा –

"कान्यकुब्ज कुले जातः कालिन्दीकूलकेलिकृत।
अलका तिलका- काव्यं, साधयामि सुधाकरः।।

एवं,

"जो बहुजन मज्जन–जनित लहरिजन हरि रूचि रूधिर उधारी।
उस कलित–कलिन्दी–कुटिल पुलिनपुर विलसति भलका प्यारी।।
द्विजवर रघुवंशीलाल जननि जहं जननी जनक दुलारी।
सुत सुकुल–सुधाकर, कवि–कुल–कोकिल कलित कुलाय बिहारी।"[4]

वंश-परम्परा –

कान्यकुब्ज प्रदेश की राजधानी कन्नौज शाखा के मकरन्द नगर में मकरन्द के शुक्ल "महोदय"[5] उपाधि से लगभग 200 घर निवास करते थे, उन्हीं में से पण्डित सुधाकर जी के पूर्वज थे जो कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित एवं यज्ञ, यागादि के विशिष्ट अनुष्ठाता थे। कालान्तर में उनमें से किसी एक का विवाह "मुन्नासकरेज" नाम के जिला फर्रूखाबाद के ग्राम में हुआ, वहां उन्हें प्रचुर अचल सम्पत्ति प्राप्त होने से वे वहीं बस गये। कुछ समयोपरान्त उनकी एक सन्तति का विवाह बड़ी निवाड़ी (इटावा) में हुआ वहां उन्हें श्वसुरगृह में सम्पत्ति मिलने पर वे वहीं निवास करने लगे। इसी परम्परा में पण्डित सुधाकर जी की सात पीढ़ी पूर्व के पूर्वजों में से एक अपने श्वसुरगृह क्योंटरा में निवास करने लगे, उनका नाम सुनिश्चित रूपेण ज्ञात नहीं परन्तु इतना अवश्य ज्ञात है कि क्योंटरा ग्राम के जगदीशपुर के दुर्गाप्रसाद मिश्र की कन्या से उनका विवाह हुआ था। इस दम्पत्ति के चन्द्रमणि नामक एक पुत्र था। पण्डित चन्द्रमणि शुक्ल सुधाकर जी के पितामह थे। उनके भी एकमात्र पुत्र पण्डित शोभाराम जी थे। वे सेना किसी बड़े पद पर नियुक्त थे, उनके दो पुत्र एवं कन्या हुई , ज्येष्ठ पुत्र का नाम पण्डित सूर्य प्रसाद शुक्ल था जो व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य एवं सिद्ध तान्त्रिक श्रेष्ठ ये सुधाकर जी के पूज्य

पितामह थे।

इनके दो विवाह हुए। द्वितीय पत्नी ही शुक्ल जी की पितामही थी, जिनके पांच पुत्र, तीन कन्याएं हुयी। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रघुवंशी लाल शुक्ल सुधाकर जी के पिता थे। जब कवि का जन्म हुआ तब इनके पिता की उम्र 27 वर्ष एवं माता की 18 वर्ष थी, किन्तु आश्चर्य अब तक वे 36 कुश्तियां जीत चुके थे। अर्थात् पण्डित रघुवंशी लाल जी मल्ल प्रतिस्पर्धाओं में पारंगत थे, इनके चार पुत्रों में पण्डित सुधाकर जी एक अपूर्व व्यक्तित्व के धनी थे। अतः व्यक्तित्व विश्लेषण में उन्हें कान्यकुब्ज की तेजस्विता, पितामह की विद्या, पिता का शारीरिक स्वास्थ्य का समुचित समन्वय उन्हें विरासत में प्राप्त हुआ।

बाल्यावस्था शिक्षा –

शुक्ल जी सुसंस्कृत विद्वान् परिवार में हुए हैं। आपके पितामह पण्डित सूर्य प्रसाद जी पाणिनीय व्याकरणाचार्य तथा तन्त्रशास्त्र के सिद्ध तान्त्रिक थे। पिता पण्डित रघुवंशी लाल ली भी श्रीमद्भागवत के अच्छे प्रवक्ता थे एवं देव वाणी के अगाध प्रेमी थे। सुधाकर जी का परिवार आर्थिक दृष्टि से भी समुन्नत था इसलिए आपका शैशव काल सानन्द व्यतीत हुआ। आपका ग्राम भी शिक्षा की दृष्टि से उन्नत था। बड़े–बड़े पण्डित ब्रह्म ज्ञान निवास करते थे।[6] इसलिए आपकी प्रारम्भिक शिक्षा क्योंटरा में पण्डित शिवराम बाजपेयी की छत्रछाया में सम्पन्न हुयी।[7] "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" के अनुसार आपकी प्रखर प्रतिभा इस स्फुरित होने लगी और चौथी कक्षा तक ही आपने महाकवि मतिराम का शिवराज और ललितललाम्, भूषण का शिवराज भूषण और बृजविलास आल्हखण्ड, तुलसी का रामचरितमानस आदि ग्रन्थों को अपने अध्ययन का विषय बनाया।

तदनन्तर संस्कृत ब्रह्म विद्यालय ग्राम क्योंटरा में ही संस्कृत प्रथमा एवं मध्यमा परीक्षायें उच्चतम अंको से उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आपने संस्कृत महाविद्यालय औरैया जिला इटावा, में प्रवेश लेकर 1936 में व्याकरण मध्यमा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1937 में शुक्ल जी ने संस्कृत अखिल भारतीय परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त किये। एसोसियेशन कलकत्ता से काव्य मध्यमा की परीक्षा तथा 1938 में कलकत्ता से ही काव्य तीर्थ की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1940 में आपने साहित्यशास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसके पश्चात् जो भी आपकी शिक्षा हुयी वह अध्यापन काल में सम्पन्न हुई।

शुक्ल नवीन शिक्षा पद्धति के प्रति पर्याप्त सजग रहे एवं इन्होंने 1946 में टीकमगढ़ से हाई स्कूल की परीक्षा सर्वोच्च अंको से उत्तीर्ण की। इण्टरमीडिएट अजमेर बोर्ड से 1952 में तथा 1954 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् 1956 में आगरा विश्वविद्यालय के एम.एस. संस्कृत की परीक्षा द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की। इन सब परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के पश्चात् भी शुक्ल जी शिक्षा से विरत् नहीं हुए। आपके

विचार थे कि, "मेरा सम्पूर्ण जीवन ज्ञानार्जन के लिए है, मेरी कामना है कि मेरा अगला जन्म काशी में किसी प्रकाण्ड पण्डित के घर हो जिससे मैं सतत् ज्ञान सागर में मज्जन करता रहूँ।"

अन्तिम समय तक आप निरन्तर अध्ययनरत रहे। यद्यपि 1980 से आप पैरालीसि नाम बीमारी से पीड़ित हुए थे एवं इस कारण उन्हें अपना लेखन कार्य दाहिने हाथ के स्थान पर बायें हाथ से करना पड़ता था।[8] आपका ज्ञान मात्र पुस्तकीय न होकर जीवन के हर क्षेत्र में दृष्टि निक्षेपित है क्योंकि व्यक्तित्व के लिए केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं, उसे हर क्षेत्र कर दिशा में दृष्टि डालना चाहिए।[9] इस प्रकार आपने प्राचीन शिक्षा पद्धति से संस्कृत ज्ञान एवं नवीन से साहित्यिक विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त किया।

आजीविका –

शासकीय सेवा – अध्यापन कार्य :

आपकी शासकीय सेवा 19 जुलाई 1941 से "रेजीडेन्सन कॉलेज" नैनीताल में अध्यापन कार्य से प्रारम्भ हुयी। तत्पश्चात् अक्टूबर 1942 को टीकमगढ़ हाई स्कूल में स्थायी शासकीय सेवा प्रारम्भ हुई। 1955 में दतिया इण्टर कॉलेज में स्थानान्तरण हो गया। आप कहीं भी स्थायी रूप से नहीं रहे। 1959 में आपका स्थानान्तरण "मल्टीपरपज" हायर सैकेण्डरी स्कूल, जगदलपुर हो गया। इसके बाद 1961 में गवर्नमेन्ट हायर सैकेण्डरी स्कूल थरेट, जिला दतिया में प्राचार्य के पद पर नियुक्ति हुई। तथा पुनः 1963 में हायर सैकेण्डरी से बढ़ा में स्थानान्तरण हो गया। 1966 में आलमपुर और फिर 1967 में दतिया हायर सैकेण्डरी में स्थानान्तरण हुआ। अन्त में जुलाई 1972 में वसई स्थानान्तरण होने के पश्चात् दतिया महाविद्यालय में संस्कृत व्याख्याता पद पर नियुक्त करके भेजे गये किन्तु शुक्ल जी को प्राचार्य के बाद व्याख्याता का पद नहीं रूचा। अतः 22 दिसम्बर 1972 में आपने अवकाश के लिए पत्र लिख दिया, परिणाम स्वरूप आप शासकीय सेवा से निवृत्त हो गये। अन्तिम समय तक आपको मध्यप्रदेश शासन द्वारा साहित्यिक अनुदान प्रदान किया जाता रहा है।

महाप्रयाण –

आपकी इहलोकलीला 21 नवम्बर, 1985 को समाप्त हुई। आपके तीन पुत्र हैं। ज्येष्ठ पुत्र पण्डित चारू चन्द्र शुक्ल अभियन्ता हैं जिनके दो पुत्र हैं मध्य पुत्र पण्डित पंकज शुक्ल नगर पालिका, दतिया मध्य प्रदेश के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं, कनिष्ठ पुत्र पण्डित शिशिर शुक्ल बैंक में आफीसर हैं उनके तीन पुत्रियां भी थीं जिनमें से एक दिवंगत हो चुकी हैं आपका निवास कविकुलाय छोटी बाजार दतिया, मध्यप्रदेश है।

कृतित्व –

पण्डित सुधाकर जी शुक्ल का हिन्दी एवं संस्कृत के क्षेत्र में निम्न कृतित्व है –

लवंग लता (हिन्दी नाटक), देवदूतम् (खण्डकाव्य), भारती स्वयम्बरम्, इन्दुमती नाटिका, गान्धिसौगन्धिकम् (महाकाव्य) तथा श्रीस्वामिचरितामृतम् (महाकाव्य)

गान्धी सौगन्धिकम् महाकाव्य

(रचनाकाल 1952 से 79 तक)

यह 20 सर्गीय महाकाव्य जीवन चरित्र की शैली में निबद्ध महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की मनोरम झांकी प्रस्तुत करती हैं। इस रचना का उद्देश्य कवि का गान्धीजी के महनीय कार्यों से प्रभावित होना है। कवि आज भी गान्धवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। यह महाकाव्य महदुदेद्श्य से प्रेरित है। चारित्रिक उत्थान का आधार कर्मपरायणता तथा नीति कुशलता है जिसे हम गान्धी जी के चरित्र से ग्रहण कर अपने जीवन को उज्जवल बना सकते हैं। यह शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की अतिशय अंलकृत शब्द चमत्कारपूर्ण कोष व्याकरण आदि की प्रवृत्ति से दूर है। जिसका कवि ने काव्य के प्रारम्भ में ही उद्घोष किया है। यथा –

"यन कौपीनः स कौपीनः यः सरलः सरलैः पदैः।
असमस्तैः समस्तकैः कलमेनालमीयते।।"[10]

महत्वपूर्ण एवं कलात्मक का आधार बनने वाली घटनाओं का काव्य में समावेश नहीं है किन्तु लोकपरिचित वस्तो नगरी, देशार्चन, नीति, पुत्रोत्सव, विवाह के वर्णन हैं। इन्हीं आधारों पर कवि की रचना सरल, स्वाभाविक, लोकोन्मुख, धर्मप्रवण एवं कल्याणमिनिवेशी हैं। यर्थाथ होते हुए भी आदर्शेन्मुख है इसलिए सत्य शिव से समन्वित हैं। पाठक अर्थबोध में नहीं उलझता, त्वरित अर्थावगति हो जाती है। क्लिष्ट अलंकारों, गूढ़ार्थो, अनेकार्थों से मुक्त व्याकरण सम्मत रमणीय पदों, प्रभावोत्पादक भावों तथा आह्लाद जनक रसों से पूर्ण है।

प्रथम सर्ग –

प्रथम कथानक का प्रारम्भ मातृभूमि के उद्वारक समाजसेवी वीरों की वन्दना से होता है। यथा –

"स्वभुव उद्वरणे–धरणे धियोऽप्यसुरसःक्षीपतः किलकारया।
अहहयस्य मनोमुख्रेइच्छता, ददातुमे मृदुतत्वद् पाशवः।।"[11]

तत्पश्चात् गान्धीजी द्वारा किये गये लोकोपकारी कार्यों की विवेचना की गयी है।

द्वितीय सर्ग –

श्री कर्मचन्द्र एवं पुतलीबाई के यहां गान्धी जी का जन्म बहुत ही अनुपम एवं चमत्कारपूर्ण ढंग से किया गया है वह दर्शनीय है। यथा –

"वभौ नभौ भू–सुशुभेदिदपिरे, दिशोङ्सराणाम् जराणिरेजिरे।
ललास लक्ष्मीरतलस्य चैवमुत चराचरे चारूरूचिश्चकास्ति।।"[12]

इसके पश्चात् गान्धीजी प्रारम्भिक शिक्षा, कस्तूरबा के साथ उनका परिणय एवं

विहार वर्णन, भृश भोगानुभव से गान्धी जी की विरक्ति होने के कारण उनके अलम्पट होने का संकेत –

"वभूव भाविन्यथ जातुजीवने।
न लम्पटानाऽयमलम्पटः।।"[13]

उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये उनके विदेश गमन के समय माता एवं पत्नी का विलाप, गान्धीजी द्वारा मां के समक्ष मांस, मदिरा तथा मृगेक्षणा का भोग न करने की प्रतिज्ञा –

"स भीष्मत्तारवानामिष नवाभजिष्येमदिरामृगेक्षणाम्।।"[14]

"जहीहिहेय, त्यीस्मरथ्येय आत्मनः, भजत्ववृद्धान् पृथकाच् पोषय।"[15]

इसके पश्चात् गान्धीजी अपने भाई के साथ बम्बई पहुंच कर वहां से आयसलौह पर आरूढ़ होकर सहज नीलिमा से सुशोभित सागर की स्तुति करते हैं –

"समुद्रः, वारीशः, रत्ननिधि–नदीश–जलनिधिम्।
नुमः कान्धिसिन्धु जगदगजवन्धु जलधरैः।।"[16]

तृतीय सर्ग –

गान्धीजी का इग्लैण्ड के प्रसिद्ध साउदेम्पटन तट पर पहुंच कर विदेशियों से शासित श्रमिकों की दशा पर खेद व्यक्त किया गया है। यथा –

"स सङ्कुलैभ भारत–भारवाहिभिः, मनुष्यसंज्ञैः पशुभिः प्रशासितैः।
क्वचित्स्वमद्वैवकराजालींयक, भरायतमत्वा विसृजद्भिराकुल।।"[17]

इसके पश्चात् लन्दन का वैभवपूर्ण वर्णन करते हुए वहां गान्धीजी द्वारा अंग्रेजी शिक्षा का अध्ययन प्रारम्भ वर्णित है।

चतुर्थ सर्ग –

गान्धीजी के विदेश गमनोपरान्त विरह दिग्ध कस्तूरबा की दयनीय दशा को उद्दीप्त करती हुयी षड् जन्तुओं का बहुत ही चमत्कारिक एवं सूक्ष्मग्राही चित्रण हुआ है। यथा –

वर्षा – "धनक्रोडेशम्पा स्फुरति रतिशम्पा च कुरुते।
प्रवासं जानन्ती मम् समुपहास जनयति।।"[18]

शरद् – "भरद्–भ्राम्यद्–भृङ्गान् हरति हरश्रृंगारगरिमा।
उताहो श्रृंगारश्रियमतनुरागः स्मितः मुखः।।"[19]

शिशिर – "दिनदैन्यं प्राप्त तरुणि परिजेतैव मायाः।
द्विरायाता श्यामानिभममितयामा व्युपचिता।।"[20]

शीत – "निकाययत्कामी स्वगृहमनुगामीवसतितत्।
पपी पापी भीतो–भवति–भुविशीतो भ्रमितहा।।"[21]

पंचम सर्ग –

विदेश में अवस्थित गान्धी जी द्वारा जननी एवं जनभूमि के प्रति भव्य भक्ति भावना व्यक्त हुई है इसके पश्चात् लन्दन से नासिक है किन्तु विदेश में निवास करने के

कारण समाज के बहिष्कृत किये जाने पर भोज द्वारा प्रायश्चित करना, फिर अपन घर आकर पत्नी एवं पुत्र से मिलते हैं, कुछ दिनों पश्चात् वकालत के लिए बम्बई आते हैं, किन्तु उपाधि पत्र से रहित होने के कारण शासकीय सेवा की अप्राप्ति होती है, जिसके कारण आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर व्यथा व्यक्त की गयी है। यथा –

"अहहदहातिदेहं शोणितं शोषयन्ती,
प्रसभमभियमसून्पीडयन्ती समन्तात्।
विशति विषमिवान्तः पश्यतोऽप्यग्निवेश,
भवति–भरतदेशो नाम शेषे यदस्मात्।।"[22]

पुनश्च एक मुकदमे के सिलसिले में गान्धी जी का अफ्रीका जाने का वर्णन है।

षष्ठ सर्ग –

दक्षिण अफ्रीका में किसी कपट व्यवहार वाले व्यक्ति के द्वारा इन्हें चरित्रच्युत करने के लिए एक वेश्या के सानिध्य में रखना किन्तु प्रकृत्या–पवित्र गान्धी द्वारा वेश्या के प्रति पवित्र भाव का प्रदर्शन जिसके कारण वासना की मूर्ति वेश्या द्वारा गान्धी जी की आलोचना की गयी है। यथा –

"नर–रहित निवेशः को नु देशः स यस्मिन्
वसति स हि समूहो पौरूषत्वात्तादृशो हा।
कथय कथय के केनहीयते ते हन्तभग्येः
श्रयतिधिगवकेशिदूपम या स्वर्गावा।।"[23]

इसके पश्चात् कवि ने वेश्या समस्याओं पर विचार किया है, तदुपरान्त गान्धीजी का डरबन न्यायालय में गमन, किन्तु वहां के न्यायाधीश द्वारा इनके अपमान किये जाने पर व्यथित होकर मैरित्सवर्ग जाते हैं। वहां अंग्रेजों के अपमान एवं अत्याचारों के आहत् होकर जोहन्सबर्ग पहुंचकर फिर वहां प्रोटोरिया नामक दिव्य नगर में बेकर साहब से मिलकर वहां नेटाल इण्डियन कांग्रेस की स्थापना करके उनका स्वदेशागमन वर्णित है।

सप्तम सर्ग –

गान्धीजी कुछ दिनों तक कलकत्ता निवास कर बंगाल आते हैं । इस सर्ग में बंगाल का अपूर्व प्रकृति चित्रण दिया है। पुनः बिहार, काशी, प्रयाग आदि तीर्थस्थलों पर भ्रमण करते हुए नेपोनियर पत्र का सम्पादन कर बम्बई जाते हैं। वहां इनका मिलन फिरोजशाह, तिलक, गोखले से होता है और सर्वसम्मति से वहां एक सभा का आयोजन करते हैं। इसके बाद फिर मद्रास, कलकत्ता जाते हैं। वहां अंग्रेज एलर थार्प द्वारा किये गये अपमान से व्यथित हो भारतीयों की रक्षार्थ सपरिवार डरबन प्रस्थान करते हैं।

अष्टम सर्ग –

डरबन में अंग्रेजों के अत्याचारों से व्यथित वहां के शिक्षकों के अपमान को देखकर क्षुब्ध हो जाते हैं और वहां दलित कुष्ठ रोगियों की स्वकर कमलों से चिकित्सा करते हैं। यथा –

"गलितकुष्ट विनष्टवपु:पुमान् विधिवशाक्यकश्चिद्रपागतः।

अयमखेदममुध्रणशोधन, परिचरन् रूचिरतचिरस्थितः।।"2

नवम सर्ग –

लार्ड "लार्ड कर्जन" के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर गोखले के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में दीक्षित हो जाते हैं। फिर काशी होते हुए उनका राजकोट पहुंचने का वर्णन है। वहां अफ्रीका पहुचंने हेतु आगत तार को पढ़कर तत्काल अफ्रीका जाते हैं। किन्तु अंग्रेजों की कूटनीति से जेल में बन्द कर दिये जाते हैं। मुक्त होने पर वहां के समीप ही नक्सा श्रम की स्थापना करके कलकत्ता आते हैं जहां कि राष्ट्रीय महासभा का संचालन हो रहा था। भारत में अंग्रेजी शासन के अत्याचारों पर गान्धीजी द्वारा व्यथा व्यक्त की गई है। यथा –

"भारते–भारतश्यैवनाधिकारान्धीरते।
पुनस्तूपनिवेशानाकवार्ता–वार्त शोकभुव।।" 25

दशम सर्ग –

गान्धीजी के पूना पहुचंने का वर्णन है वहां जकात प्रथा का उन्मूलन करके पुनः फिनक्स आश्रम पहुंचकर शरद, क्षितिमोहन, नवीन, सन्तोष, पियर्सन, ऐंण्डूज से मिलकर हरिद्वार आते हैं। वहां कवि ने गान्धी के माध्यम से परमपावनी गंगा का महत्व प्रतिपादित किया है। यथा –

"अये! सेयं गङ्गा पदमृततरङ्गाच्छद्पृषताम,
सकृत्वङ्गालिङ्गाज्जगदगदसङ्गासुकृतिनः।
यदुद्वोल्लत्तुङ्जलहतिमृदङ्गादुरतियाम्,
श्रुति–ध्यानेश्चङ्गाश्चभवभयभङ्गानविदधति।।"26

एकादश सर्ग –

गान्धीजी के द्वारा अहमदाबाद में सत्याग्रह की स्थापना करके अस्पृश्यता का उन्मूलन करने का वर्णन है, वहां से कोचरवाद, साबरमती प्रस्थान करते हैं। स्वदेश परतन्त्रता पर क्षोभ व्यक्त करते हुए स्वदेशी हथकरघा उद्योग का महत्व तथा प्रयोग की प्रेरणा देते हैं। यथा –

"सूत्रं सृजत्यतितरां च तनोति तन्तुं,
मन्तुक्षिणेति विशृणोतिचर्ममर्म।
आनृण्यमप्ययमृणोति चकतेनयुक्तः,
चक्रं हिनामपदः किन्नकरोतिचक्रे।।"27

पुनश्च में लखनऊ, मुजफ्फरपुर में आचार्य कृपलानी से मिलकर बिहार की दुर्दशा सुनकर वहां जाते हैं और वहां व्याप्त दीनता, मलिनता, मूर्खता को समाप्त कर हिन्दी भाषा का प्रचार करते हैं। फिर वे खेड़ा की आर्थिक स्थिति में सुधार करके अहमदाबाद जाते हैं, वहां कर्मचारियों द्वारा की गयी अनशन प्रतिज्ञा का वर्णन है।

द्वादश सर्ग –

गान्धीजी द्वारा 'रॉलिड बिल' के विरूद्ध 'अहिंसक सत्याग्रह' की घोषणा का

वर्णन है। राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन जलिया वाला बाग में होता है, जिसमें 20000 व्यक्तियों के सम्मर्द में नीच डायर प्रवेश कर गोली चलवाता है। परिणाम स्वरूप असंख्य व्यक्ति घायल एवं मृत हो जाते हैं। इस सर्ग में घायलों की कारूणिक दशा का वर्णन बहुत ही प्रभावोत्पादक है एवं हमारे मानस में अपार कारूण्य का संचार करता है। यथा –

"रङ्कः शिशुहयुपरतो निजमातुरङ्के
क्रीडारतः स्वजनयित्र्युदरे च वालः।
पुत्रं युवानमपि विलपन् पितातु,
तातंचशोचतिसुतः पतिश्च पत्नीम्॥"[28]

इसके बाद गान्धी जी के सत्याग्रह से विरत होने का वर्णन है।

त्रयोदश सर्ग –

अनशन का पारण करने के लिए गान्धी जी विठोवा नामक बालक को नारंगी लाने का आदेश देते हैं। बिठोवा स्वगृह आकर साध्य की पूर्ति हेतु पिता से साधन की याचना करत ाहै। किन्तु पिता अपनी असमर्थता प्रकट करके कठोर वचनों से उसे अविक्षिप्त कर देता है। व्यथित ह्रदय बिठोवा बाजार में जाकर वहां एक सन्तरे की याचना करता है किन्तु उस धनहीन की मांग की कोई भी पूर्ति नहीं करता है।

चतुदर्श सर्ग –

बाजार में भ्रमण करते हुए बिठोवा के द्वारा एक विक्रेता से सन्तरे की याचना किन्तु वह बिठोवा को निर्धन समझ डांट देता है। व्यथित ह्रदय बिठोवा के द्वारा देश में व्याप्त धर्मान्धता तथा धन के दुरुपयोग जो कि ऊँच–नीच को समान रूप से अलंकृत बना देता है, के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है। यथा –

"धिग्धिग्धनाधिक्यमधः करोति दीनानदीनान् पितुल्यमेतत्।"[29]

पंचदर्श सर्ग –

निराश बिठोवा गान्धीजी के समीप पहुंचकर सम्पूर्ण वृतान्त से उनको अवगत कराता है। धनाभाव के कारण क्षुब्ध गान्धीजी धन प्राप्ति की आवश्यकता एवं उनके द्वारा सम्पादित विश्व हित पर बल देते हैं। यथा –

"धनेन धर्मस्ततः परागतिः या योगिनामप्यतिदुर्लभा वै।
धनेन धन्याऽप्यधनो धरायां, धनात् परं विश्वजननीनमत्र।।"[30]

धन की प्राप्त्यर्थ वे स्वदेशी करघा उद्योग पर बल देते हैं जो कि अधर्म का नाशक, दैन्य का वाहक, दारिद्रय का विदारक तथा दारिद्रय का प्रदायक है। यथा –

"कार्यकर्म विहीनानां जनानछिन्नकर्मणाम्,
चक्र–चालनमेकस्यात्साधनन्दैन्यवाधनम्।
चक्रचालनतवचैतदारिद्रयन्दीर्यतेत्वरम्,
दारिद्रयचविपद्धारि, मनोहारितदोकसि।।"[31]

इस सर्ग में कवि ने चक्र के उपयोग एवं लाभ का प्रकारान्तर से बहुत ही मनोहारी वर्णन किया है तथा –

"अभवत् होलिकादाहो वस्त्राणि च विदेशिनाम्।"[32]

कहकर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार का उपक्रम किया है।

षोडश सर्ग –

सतत् उद्योगरत होने की प्रेरणा दी है जिससे धर्नाजन हो सके किन्तु जो लोगा परिश्रम न करके धनसंचय में निरत हैं उनकी निन्दा के साथ यह भाव व्यक्त किया है कि जिस देश के लोग आलसी, दीर्घसूत्री तथा अस्वेद श्रमभोक्ता हैं वह देश डूब जाता है। यथा –

"आलस्येनाभिभूताः येऽकर्मण्याः दीर्घसूत्रिणः
अस्वेदश्रमभोक्तारो, यत्र देशः स मज्जति।।"[33]

"कर्मण्यता" को देश के विकासार्थ अनिवार्य निर्दिष्ट करके विदेशी वस्तुओं के त्याग पर ही भारत की सर्वतोमुखी उन्नति का उद्घोष करते हुये कहा है कि –

"विदेशत्यागतः पूर्णाः भारतस्य भविष्यति।
उन्नतिः किन्न संसारे, विश्वस्मिन् विश्वतोमुखी।।"[34]

तथा जो देश इस विदेशी भावना जन–जन के हृदय में पूरित कर देगा, वह ईश्वर के समान अन्दर एवं वाह्य दोनों दृष्टियों से कवि की दृष्टि में पावन हैं –

"भारताय तु या शक्तिः दयादय स ईश्वरः।"[35]

सप्तदश सर्ग –

इस सर्ग में एकता की भावना निरूपित है जिसमें लक्ष्य, ध्वज भाषा आदि विभिन्न उपकरणों की एकता पर बल दिया है –

"एकध्वजो ध्वजस्तु तब्तु लक्ष्यमेकः भाषाऽप्यथा पिभक्तु प्रणधैकस्या।
राष्ट्रीयता पदपरकामिहकाममध्ये सर्वेकता भवतु – भारत भारतारे।।"[36]

तत्पश्चात् राष्ट्रीय ध्वज की विभिन्न विशेषताओं एवं रंगो का चित्रण करते हुए उकने औचित्य पर प्रकाश डाला गया है –

"अस्मिन् त्रिरागस्तरी जतसुध्वजे तु यः कुङ्कुमः सतवशेः पराक्रमत्य।
आसीत् प्रतीकमपि यद्वरितः सुवाकर्यों श्वेतस्तुशान्तरस लक्षणमाचचक्षे।।"[37]

अन्त में कवि ने यह कामना की है कि यह ध्वज राष्ट्र की परम प्रतिष्ठास्यी ध्वज अंग्रेज ग्रहण न कर लें अपितु यह भारतवासियों को ही आनन्दित करता रहे। यथा –

"तत्रैव गौरवयुतान्तु पुमान्नलेभे।
यून्दन्नन्दयति मन्दधियोऽपि भारतीयाम्।।"[38]

अष्टदश सर्ग–

इस सर्ग में हिन्दी भाषा की उन्नति एवं उसे राष्ट्र भाषा के पद पर अलंकृत करने का आग्रह किया गया है।

"अद्ववाढ राष्ट्रभाषा सुभाषा सा भाषायाः नामतः स्यात् सु हिन्दी।।"[39]

विभिन्न विशेषताओं का निरूपण कर उसके श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन किया है। यथा –

"नेवाङ्गल भाषामम राष्ट्रभाषा।

तरलत्वात्, सुबोधत्वात्, प्रातलित्वात् प्रसादतः।"[40]

"प्रवोपऽवाधे बुद्धित्वात् हिन्दी हि प्रवशगिरा।"[41]

अपने राष्ट्र एवं राष्ट्र भाषा को नमन न करने वाले कवि की दृष्टि में हेय हैं। अतः उनके प्रति निन्दा एवं आक्रोश का भाव व्यक्त हुआ है। यथा –

"त्वां जन्म भूमिं न च ये स्वभाषा,
त्वां ग्रामदेवीमपि नो नमन्ति।
ते शत्रुसेनान्धपुरीषकीटाः,
त्यजन्ति मिष्ठान्तु भवन्ति विष्ठान्।। "[42]

एकोनविंश सर्ग –

इस सर्ग में गान्धी जी द्वारा सत्य को ही परम तत्व के रूप में स्वीकारा गया है। उनके द्वारा देश के कोने–कोने में सत्य की प्रतिष्ठा एवं प्रचार का वर्णन है। वे सत्य को ही ईश्वर के नाम से अभिहित करते हैं। यथा –

"यतसत्यमेव परमेश्वर इत्थगादीत्।
बापूपुनर्कथयति स्म यदत्र सत्यं,
सत्यात् परमतत्वमहन्न जाने।।
नायावधि क्वचिदपीड मर्मानुभूतिः,
सत्यात्परोभगवान्भवतीत्यपि स्यात्। "[43]

विंश सर्ग –

इसमें कवि ने गुरुजनों के प्रति श्रद्धा निर्देश दिया है। वर्तमान में अध्यापक वर्ग की दयनीय दशा को देखकर कवि क्षुब्ध हो उठता है तथा शिक्षारहित, विवेकहीन, धन पशुओं से उनकी मार्मिक तुलना की गयी है । यथा –

"एतेरमन्त्युदरपूरणचिन्तयाय,
धान्धेत्व जीर्णर्मिति भोजनमुद्गिरन्ति।।"[44]

इस विषमता के विष की समाप्ति के लिये समाजवाद की महती आवश्यकता पर बल देते हुये देश की कल्याण कामना के साथ महाकाव्य की समाप्ति हुयी है।

भाषा शैली –

भाषा पर पूर्णाधिकार प्राप्त कवि ही अपने भावों विचारों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति सरल एवं सरस ढंग से कर सकता है। इस दृष्टि से पण्डित सुधाकर शुक्ल की भाषा पूर्णतया सक्षम है। व्याकरण शास्त्र पर उनका पूर्ण अधिकार है। इसका उन्होंने अपने शब्द प्रयोगों द्वारा स्थान–स्थान पर परिचय दिया है। कितने ही अप्रचलित पर पाणिनि व्याकरण सम्मत शब्दों का प्रयोग इनके काव्य से मिलता है। इनकी शब्द योजना अर्थ गौरव पूर्ण है एवं विषयानुसार अनुकूल शब्दावली का प्रयोग है। महाकाव्य 'गान्धि सौगन्धिकम्' शान्त रस का काव्य है परन्तु श्रंगार के भी दर्शन कुछ स्थलों पर होते हैं। पण्डित सुधाकर शुक्ल में अपूर्व वर्णन शक्ति है। शैली में एक शान्त गरिमा एवं

विचित्र आकर्षण भी है तथा उनमें अन्तः तथा बाह्य प्रकृति के निरीक्षण की अपूर्व क्षमता है। उनकी द्वारा कही गयी बातें सार्थक, गम्भीर, निश्चित, गौरवशालिनी तथा प्रमाणिक हैं।

छन्दोयोजना –

प्रकृत महाकाव्य में कवि ने सभी प्रमुख मात्रिक तथा वर्णिक छन्दों का अधिकाशतः प्रयोग विषयानुसार किया है। जिससे कवि प्रवर का असीम काव्य प्रतिभा प्रदर्शन दृष्टिगोचर होता है। छन्द प्रयोग में छन्द शास्त्रीय नियमों के पालन की ओर विशेष ध्यान रखा गया है। काव्य में आर्या, अनुष्टुप, शिखरिणी, मालिनी, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, बसन्ततिलिका, विशेषोक्ति, वियोगिनी, दीपशिखा आदि छन्दों का प्रयोग सफलता पूर्वक किया गया है।

प्रथम सर्ग में वर्णित तीन श्लोकों में से प्रथम दो श्लोकों में द्रुत विलम्बित छन्द अवलोक्य है।

"पृथुयशाः प्रथम प्रतिमानिभः सरणिसारगतिः स प्रणम्यते,
कलितरूपपदो मृदुमातृचरणचारणचारूकविः कवि। "

(गा.सौ. 1/1)

"हृदुदधेर्निदधे चरणौ रूणौ शिरसि तस्यभावाभरणस्य भौः,
जननिवज्जनिभूमिविमुक्तये जगति जीवनमेव जहाति यः।।"

(गा.सौ.1/2)

द्वितीय सर्ग में शिखरिणी, मालिनी, वंशस्थ, बसन्ततिलका आदि छन्दों का प्रयोग साफल्य दृष्टव्य है। शिखरिणी छन्द का उदाहरण निम्न है –

"स कौपीनेऽपीनोपहत धृतपीनोऽपिन जितः,
सदा दीनं क यो दलयति चितं चिन्तयति च।।"

मालिनी छन्द का उदाहरण निम्न है –

"प्रतिपति प्रतिवारं भास्करो वासरश्रीः,
निशि निशि शिशिरश्री वियदोद्यत् कलाभिः।
क्षिपति वसुमतीयं पंकमाऽप्तं कलङ्कम्,
ध्यजनि जगदपूर्वं ज्योतिरेतज्जनन्याः।। "

(गा.सौ. 2/6)

"न खलु प्रलयकालः पंकिलप्रावृषेण्यः,
प्रभवति भयभीतो नाति शीतो ह्रिया हि।
स च रसरमणीये जातु जातो हि यस्मिन्,
वकुलकुसुमकाले राजन्राजद्रजन्यः।।"

(गा.सौ. 2/7)

वंशस्थ छन्द निम्न श्लोकों में अवलोकनीय है –

"निशान्तशान्तिन्तु हरन् समन्तात्तरस्ततोङ्गनामाङ्क लगान् भानुम्।,

निकेतादुन्नतकेतनोमियं नृपोनिस्सारयति स्म कस्यलाभ्।।'

(गा.सौ. 2/8)

एवं,

"सतीव्रतां साप्यसतीव्रतात्वियं विभर्तिभर्तुर्भूषणद्युतिम्,
किशोरिका किंकुशया पिपर्ति पुण्यं प्रणयप्रभां प्रिये।।"

(गा.सौ. 2/31)

बसन्ततिलका छन्द का उदाहरण निम्नलिखित है –

"कल्हारवल्लरित पुष्करपूरं साकं,
माल्हादिविम्ब उडुपस्य च पर्वभिर्वा।
पोतः प्रतिक्षणमसौ क्षणदाकरामः,
सार्धं रुदम्वुधिरसैर्ववृद्धे सवित्रोः।। "

(गा.सौ. 2/9)

चतुर्थ एवं षष्ठ सर्गों में वर्णित विशेषोक्ति अलंकार के उदाहरण निम्न हैं –

"श्रवास हा हाते प्रथममर्पियाते प्रियतमे,
न तु प्राण द्रोहं दृढ़ यसि नं मोहं बहसियत्।
धिगेतन्नेन्ष्ठुर्या यदि ह्रदयं दीर्यतइतोऽन्य
योगात्कान्तानांवर मिह हिशन्तिस्तुचरमान।।"

(गा.सौ. 4/2)

"सरतिसरिति मग्नोऽप्याग्निहेलाहुतोऽभू, दीपि न
नियमभग्नोवीक्ष्यनानानतागीम्।
मदन मद मद मुदात्तोऽधस्त्वधन्ताप्रभत्तो,
न किमिदमुधित्ववाऽवंयद् पुनोति।।"

(गा.सौ. 6/10)

"जननीं जननीति नायिकां,
भृशमाशैशतस्त्वनुस्मरन्,
वृजनीं व स राजकोटगां,
दिशभुद्दिश्यरुजाऽवद्रजुः।"

इस प्रकार कवि पण्डित सुधाकर शुक्ल की छन्दों योजना साफल्य रही है।

अलंकार विधान –

काव्यात्मक चमत्कारों के प्रति कवि की अभिरूचि विशेष दृष्टिगोचर होती है। गान्धी जी के जीवन चरित को उद्धृत करने के साथ–साथ कवि ने अपने अलंकारिक चमत्कार द्वारा तत्कालीन सामाजिक परिवेश को भी बड़े ही मधुर एवं आकर्षक शब्दों में व्यक्त किया है। यथा, द्वितीय सर्ग में विरोधाभास अलंकार दृष्टव्य है।

"न कौपीनः स कौपीनः यः सरलः सरलैः पदैः,

असमस्तैः समस्तकैः कलमेनालभीयते।।"

काव्यात्मक चमत्कारों के प्रति कवि की विशेष रूचि एक ही श्लोक में अनेक अलंकारों को समावेशित करने के कारण भी प्रतीत होती है। यथा – निम्न स्थल पर अनुप्रास, उपमा, एवं विरोधाभास अंलकारों को एक ही श्लोक पर प्रयुक्त किया गया है।

"सतीव्रता साप्य सतीव्रतांत्वियं विभर्ति भर्तु भूषणद्युतिम्,
किशोरिका किंकुशया पिपर्ति पुण्यं प्रणयप्रभां प्रिये।"

कस्तूरबा गान्धी की तुलना कस्तूरी से करना बड़ी सटीक प्रतीत होती है। साथ ही साथ अनुप्रास एवं रूपक का प्रयोग भी अवलोक्य है। यथा –

"रेजेऽजिरे, पतिकुलस्य पितुः कुलस्या,
हिंसा कृषेस्त्रिपथगेव रसप्रसूतिः।
कस्तूरिकेव सुरभिं विभुं विभ्रतीयं,
कस्तूरबाऽपि भवभूतिवतीव विन्ध्या।।"

(गा.सौ. 2/25)

छेकानुप्रास एवं श्रुत्यनुप्रास का उदाहरण निम्न है –

"दधन्क्षारां वारामुरसि रसराशिं स्वयमहो,
जगज्जातान् धाराधरमधुजलैर्जीवयसि यत्।
पुरस्कारस्तस्य? त्वमिहं घृतरसौ,
हा हा हेला मलिनं पिवसि कटुगालिं श्रुतिपुटैः।।"

(गा.सौ. 2/56)

इसके अतिरिक्त कवि द्वारा यमक, दृष्टान्त, प्रतीक, सन्देह, समुच्चय, उत्प्रेक्षा, श्लेष, मानवीकरण, निदर्शना, आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यमक अलंकार का प्रयोग निम्न श्लोक में दृष्टव्य है –

"निशि निशम्य मुहुः कुहुकं वशन् रहसि वा विशति स्म स वेश्मनि,
पृथुपचेलिमविल्वफलस्तनी धृतनयतनयं यदजीजनत्।"

दृष्टान्त अलंकार निम्न पद्य में अवलोकनीय है –

"सरस्वती चौत्कलिका कुलेनक,
स्थितश्चिरोद्वेजित चारूचेतसा।
स्थलस्य पानस्वदृशारसाद्वसौ,
तमस्थितो वाभिललाषं भास्करम्।।"

(गा.सौ. 3/6)

प्रतीक अलंकार निम्न छन्द में दृष्टव्य है –

"चरन्धर्माचारान्चिरमपिस पाराशरमुनिः,
ययाचे दुर्गन्धारति भमितकाभान्धितधिया।
वहन्ती कौमार्यं तदपि दिवसे दाशतनयाम्,
निवेदव्यासाय व्यवसितमिदतस्मदुखिम्।"

(गा.सौ. 4/38)

सन्देह अलंकार निम्न पद्य में अवलोकनीय है –

"ममाप्येतज्जाड्यं जड़यति यमाढ्यं यदि मनः,
न तत्रास्मद्दोषः प्रकृतिरियमेवं निष्कृतिः।
उताहो कामस्यातविकृतिरपि सात्वत्रप्रकृति,
व्रजन्त्येव प्राणाः प्रकृतिविकृतिभ्यां किमिह मे।।"

(गा.सौ. 4/88)

उत्प्रेक्षा अलंकार का अद्योलिखित उदाहरण इस पद्य में द्रष्टव्य है –

"वपुःश्रृंग श्रोणीदमितपमितूणीमुखसखम्,
दधन्ताभिद्रोणीस्तननमितकोणीकृतमहो।
वरोहेचारो हे हरिणंदृश आरोह इह हा,
ध्रुवंभगं याता सहविरहिभेतेन हृदयम्।।"

(गा.सौ. 4/65)

प्रकृति चित्रण –

"गान्धी सौगन्धिकम्" काव्य चरितात्मक काव्य होने के कारण कवि ने प्रकृति चित्रण को वरीयता नहीं दी है तथापि इस सन्दर्भ में गंगा वर्णन अवलोकनीय है।

"गंगातरलतरंगा भवभयभंगाय भूयसी भूयात्,
विहरति शशधरसंगा हरति हरांगादनंगास्त्रम्।।"

(गा.सौ. 10/38)

"अये सेयं गंगायदमृततरंगाच्छरपृषताम्,
सकृत्वंगालिंगाज्जगदगदसंका सुकृतिनः।
यदुद्वोल्लत्तुंगा जलहतिमृदंगा दुरितनाम्
श्रुतिध्वानैश्चंगाश्च भवीयभंगान्विदधति।।"

(गा.सौ. 10/37)

शरद् ऋतु के आगमन पर कवि के विचार वर्णित है –

"रूचिरा सुचिरं तपात्यये त्वपिवज्जीवनदं सुविन्दुभिः,
क्षितिजे क्षितिरेवमुत्तृषा स्वदृशा सा रमणस्यान्तिके।।"

(गा.सौ. 5/16)

यहां वर्षा ऋतु का वर्णन हृदयग्राही द्रष्टव्य है –

"घनकोडशम्पा स्फुरति रतिशम्पाचकुरुतो,
प्रवासं जानन्ती मम समुपहासं जनयति।।"

(गा.सौ. 4/6)

शिशिर – रमणीय शिशिर का सुन्दर सरस वर्णन इस पद्य में प्राप्त होता है। यथा –

"दिनं दैन्यं प्राप्तं तरुणि परिजेतैव मायाः,
द्विरायातां श्यामा निभममितयामाव्युपचिता।।"

(गा.सौ. 4/13)

समसामयिक राष्ट्रीय समस्याओं का गान्धी सौगन्धिकम् में चिन्तन् –

राजनेताओं पर व्यंग –

"जगज्ज्वालाहारिन् कृषकसुखकारिन् तृषदक्षोः,
परेषामेवैवं ह्युपकृतिपस्त्वान्तवतथा।
जनो नेता नैतत्पत्तनमपि ते पातकतया,
शरण्यानां सर्वाचरणामिहं पुण्यं हि भवति।।"

(गा.सौ. 4/39)

जैन धर्म पर व्यंग –

महाकवि ने प्रसंगानुसार जैन धर्म पर भी व्यंग्यात्मक टिप्पणी इस प्रकार की है। यथा –

"न केवलं यत्र सुशोधितं पयो,
निपीयते स्नानकृतेऽपि कल्पने।
बहिष्क्रिया तत्र जनस्या गच्छतो,
यतोऽपि धर्मध्वजिनो न जैनिनः।"

(गा.सौ. 5/12)

देश की दरिद्र और शोचनीय दशा के प्रति कवि का ध्यान स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हुआ है। जिसका चित्रण इस प्रकार इस पद्य में प्राप्त होता है। यथा –

"प्रभवस्तु विदेशिनस्तथा च दुष्टाश्च निदेशकारिणः,
सुधियोऽमि भवाय य स्तद्विषयस्य प्रगतिर्भविष्यति ।।"

(गा.सौ. 5/20)

शिक्षा के प्रति कवि की पीड़ा–

यथा स्थान महाकवि ने देश की गिरती हुई शिक्षा की दशा पर अत्यन्त चिन्ता व्यक्त की है। जिससे उनका शिक्षा के उन्नयन के प्रति भी स्वाभाविक चिन्तन यथा स्थान प्रकट हुआ है। इस सन्दर्भ में कवि की दृष्टि में सुयोग्य अध्यापकों का नियुक्त होना आवश्यक समझा गया है। बी.ए. की उपाधि होने पर भी अध्यापक नियुक्ति उस समय असम्भव थी। जिसका उल्लेख उन्होंने अद्योलिखित पद्य में इस प्रकार किया है। यथा –

"मन्ये भ्रमं विहितं परीक्षया यदधिक्षेपमपि प्रधानतः,
बी.ए. हयुपाधिमधिगत्य समागतेभ्यस्त्वध्यापकस्य पदवी न दवीयसी स्यात्।।"

(गा.सौ. 5/24)

भ्रष्ट परीक्षा प्रणाली पर कवि द्वारा प्रहार प्रस्तुत पद्य में प्रशंसनीय है। यथा –

"अहितं विहितं परीक्षया .यदधिक्षेपमपि प्रधानतः,
स मनस्युपचक्रमे चलन् गदितुं स्वान्च विचिन्त्य योग्यताम्।"

(गा.सौ. 5/25)

वर्तमान गिरते स्तर वाली शिक्षा पद्धति के प्रति कवि की व्यथा इस पद्य में द्रष्टव्य

है। यथा –

"एतेत्ववद्यरुचयस्त्व नवद्यविश्वविद्यालयेष्ठ समपद पदं प्रपद्य,
क्षुद्राः सहस्रश इमे स्वभृतौ चमुद्रा, चाकृष्य केवलमलं विहरन्ति हन्त।।"

(गा.सौ. 5/32)

नारी की शोचनीय सामाजिक स्थिति पर व्यंग दृष्टव्य है –

"गणयति गणिकां मां स्वैरिणीमित्वरीवा,
कलयति कुलटीपुन्श्चलीपांसुलां वा।
भवति भुवितनारी येन नैव निन्द्या,
जयति नरसमाजस्तेन तेनैच वन्द्याः।।"

(गा.सौ. 6/36)

कुलीन नारियों के वेश्या बनने की परिस्थितियों का जीवनता पूर्ण वर्णन कवि ने इस पद्य में किया है। यथा –

"विदधति धनलुब्धा दुर्गताः वेशवेशं,
कपटमयहृता वा सम्प्रदायास्तवीभिः।
नृपतिभिरवमर्दे विद्रुवोपद्रवस्थे,
रणहतनवृन्दे चापि वेश्या भवन्ति।।"

(गा.सौ. 6/39)

इस सन्दर्भ में कवि का नर समाज पर आक्रोश भी सराहनीय एवं समीचीन है। यथा –

"अवितथमयि? मन्ये वारनार्यस्त्वनार्याः,
रूजि सकलसमाजं मज्जयन्तीति सत्यम्।
कलयतु किललीकं किन्तुवेशप्रणाशे,
न भवनमपि भूयाद्यत्र वेश्या हि स्यात्।।"

(गा.सौ. 6/41)

गुरु शिष्य की परम्परा में वर्णित श्लोक दृष्टव्य है –

"अयम् शिक्षतॉस्तु यथा तथा गुरुपदन्च विवेद ह्यनेन हा,
पनरदहयत् हन्त विनेयता प्रतिपथश्च्युत भारत चिन्तया।।"

(गा.सौ. 8/20)

कवि का गुरु गरिमा ज्ञान अवलोकनीय है –

"तस्याक्षरस्यजनका अपि याजनश्च, चेदत्रतेतु गुरवो गुरुबोधगम्या,
तेषामित्यपरंविश्वसृजामृजुत्वादे देशा दशति वृश्चिकदंशमद्य।"

(गा.सौ. 8/22)

गुरु गौरव का वर्णन काव्य से बड़ा ही सटीक वर्णित हुआ है –

"अध्यापकानां त्रिजगद्गुरुणां यद्गौरवं रौरव सन्निरोधि,
किं क्रीडतः कन्दुकवद्धिगेवं तेनैवतेनैव विधिन्मवेद्।"

(गा.सौ. 8/25)

रस निष्पत्ति –

काव्य में पण्डित सुधाकर शुक्ल की रस निष्पत्ति सराहनीय है। अंगीरस के रूप में वीर रस की अभिव्यंजना हुयी है। साथ ही साथ अनेक स्थलों पर श्रंगार रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। प्रकृत श्लोक में रसराज श्रंगार की अभिव्यक्ति दर्शनीय है।

"अधरमधुरिमाणं धारयत्वत्वयाशोण,
क्षणकमपिछिनन्तु छन्नविनिच्छतिमेताम्।
पलमुपल? ह्रदस्त्वमर्दय द्वन्द्वकन्दम्,
प्रकटयतु न कस्मात् पौरुषं नौ रुषाधिक।।"

(गा.सौ. 6/19)

शान्त रस की सशक्त अभिव्यक्ति इस महाकाव्य में निम्न श्लोक में दर्शनीय है –

"मनुष्यमात्रस्य भृशोपभोगम् पदार्थ गायीदृशभेदभित्ता,
भवेदियं क्रान्तिपथप्रदर्शिनी धनाधिकानां निधनाय न क्वचित्।।"

(गा.सौ. 10/33)

समीक्षा –

पण्डित सुधाकर शुक्ल ने अपनी कृति 'गान्धिसौगन्धिकम्' में गान्धी के चरित के साथ ही साथ पौराणिक संकेतों, प्रेम विषयक, देश की दशा, तत्कालीन परीक्षा प्रणाली गुरु–शिष्य का स्वरूप समाजवाद आदि का सजीव वर्णन किया है। नारी की विकृत एवं ह्रासोन्मुखी समााजिक स्थिति पर उन्होंने अत्यन्त तीक्ष्ण प्रहार करते हुए नर समाज पर अपना आक्रोश व्यक्त किया है। उनके धार्मिक विचार इस ग्रन्थ में स्पष्टतः परिलक्षित होते है। मानव संस्कृति के प्रति कवि ने अपनी मान्यता को स्पष्टतः व्यक्त किया है।

इस महाकाव्य का भाव पक्ष तथा कला पक्ष अत्यन्त समृद्ध परिलक्षित होता है। कवि की सशक्त, प्रांजल, सरस एवं प्रासादिक भाषा मानव मन के सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। यथा स्थान इन भावों को सशक्त रूप से प्रस्तुत करने के लिये कवि ने अनुकूल छन्दों एवं अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है। सम्पूर्ण महाकाव्य रस निष्पत्ति की दृष्टि से भी सर्वथा बेजोड़ है। अतः अर्वाचीन गान्धिविषयक महाकाव्यों में गान्धिसौगन्धिकम् एक स्तरीय और महत्वपूर्ण महाकाव्य है। जिसका आद्योपान्त अध्ययन मनन अनुसंधानकों को अवश्य करना चाहिये।

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणियाँ –

1. समीक्षा शास्त्र, डॉ. दशरथ ओझा, पृ. 22
2. बाबू श्याम सुन्दरदास, साहित्यलोचन वाराणसी, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 34
3. भारती स्वयम्बरम् 9/18
4. 'कसक' – आत्म परिचय, पृ. 1

5. महान् उदयो यस्य सः महादयाः।
6. बहुतर बसते हैं, ब्राह्मण ब्रह्म ज्ञानी। लवंग लता–हिन्दी नाटक षष्ठांक, पृ. 234
7. ब्राह्मीणिह्म–ज्वरहरगुरु : पण्डितैर्मण्डित श्री।
   क्लिश्यत्काश्य प्रभतिरव निर्याऽस्य काव्यस्य कर्तुः।। देवदूतम् उत्तरार्ध, श्लोक 73
8. साक्षात्कार : उनके पुत्र श्री पंकज शुक्ल।
9. साक्षात्कार : शोध प्रबन्ध, पण्डित सुधाकर शुक्ल द्वारा कुमारी प्रभा शर्मा निर्देशक डॉ. रवि शंकर दीक्षित, 1983
10. गान्धी सौगन्धिकम् –1/4
11. गान्धी सौगन्धिकम् –1/2
12. गान्धी सौगन्धिकम् –2/9
13. गान्धी सौगन्धिकम् –2/23
14. गान्धी सौगन्धिकम् –2/29
15. गान्धी सौगन्धिकम् –2/34
16. गान्धी सौगन्धिकम् –2/40
17. गान्धी सौगन्धिकम् –3/7
18. गान्धी सौगन्धिकम् –4/6
19. गान्धी सौगन्धिकम् –4/8
20. गान्धी सौगन्धिकम् –4/13
21. गान्धी सौगन्धिकम् –3/15
22. गान्धी सौगन्धिकम् –5/8
23. गान्धी सौगन्धिकम् –6/13
24. गान्धी सौगन्धिकम् –8/6
25. गान्धी सौगन्धिकम् –9/13
26. गान्धी सौगन्धिकम् –10/11
27. गान्धी सौगन्धिकम् –11/15
28. गान्धी सौगन्धिकम् –12/20
29. गान्धी सौगन्धिकम् –14/7
30. गान्धी सौगन्धिकम् –15/11
31. गान्धी सौगन्धिकम् –15/13
32. गान्धी सौगन्धिकम् –15/19
33. गान्धी सौगन्धिकम् –16/11
34. गान्धी सौगन्धिकम् –16/14
35. गान्धी सौगन्धिकम् –16/17
36. गान्धी सौगन्धिकम् –17/2
37. गान्धी सौगन्धिकम् –17/7

38. गान्धी सौगन्धिकम् –17/15
39. गान्धी सौगन्धिकम् –18/3
40. गान्धी सौगन्धिकम् –18/7
41. गान्धी सौगन्धिकम् –18/8
42. गान्धी सौगन्धिकम् –18/11
43. गान्धी सौगन्धिकम् –19/6
44. गान्धी सौगन्धिकम् –20/4

अष्टम अध्याय

पण्डित साधुशरण मिश्र का जीवन-परिचय एवं 'श्रीगान्धिचरितम्' का साहित्यिक मूल्यांकन

अष्टम अध्याय

पण्डित साधुशरण मिश्र का जीवन परिचय एवं 'श्रीगान्धिचरितम्' का साहित्यिक मूल्यांकन

कवि का जीवन परिचय –

'गान्धिचरितम्' महाकाव्य के रचयिता पण्डित साधुशरण मिश्र सरयूपारीण ब्राह्मण थे। देववाणी का ज्ञान कवि को स्ववंश से उत्तराधिकार में मिला। आपके वंश में सरस्वती की कृपा परम्परागत रही। श्री मिश्र के पितृचरण पण्डित जयराम जी मिश्र संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् थे। उनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर 'हथुआनरेश' श्रीमन्महाराज श्री कृष्ण प्रतापशाही ने उनहें अपनी राज्य सभा के प्रधान पण्डित के रूप में प्रतिष्ठित करके सम्मानित किया। आप पांच भाई थे। ऐसा आपने ग्रन्थ के अन्त में स्ववंश परिचय में वर्णित किया है। मिश्र जी बिहार प्रान्त के चम्पारन जनपदान्तर्गत श्री जानकी संस्कृत विद्यालय नरकटियागंज में प्रधानाचार्य पद पर सुशोभित रहे। इसी पद पर रहते हुये आपने प्रकृत महाकाव्य का प्रणयन किया।

'गान्धिचरितम्' महाकाव्य के प्रकाशनार्थ अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों ने आर्थिक सहायता प्रदान की। कवि ने उनका बिना किसी संकोच के उल्लेख भी किया है। कवि पर महात्मा गान्धी के "सादा जीवन उच्च विचार" वाले सिद्धान्त का पूर्ण प्रभाव था। वे अत्यन्त साधारण जीवन जीना ही पसन्द करते थे। प्रकृत महाकाव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कवि उच्च कोटि के विद्वान् एवं मेधावी कवि थे। ज्योतिष विद्या में भी निष्णात थे। आपने बिहार संस्कृत समिति के सदस्य के रूप में संस्कृत भाषा की अनवरत सेवा की। आपका संस्कृत का प्रचार–प्रसार कार्य अत्यन्त सराहनीय था।

ग्रन्थ परिचय –

"श्री गान्धिचरितम्" महाकाव्य महापुरूष राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के संघर्षमय जीवन वृत्त को उपस्थित करता है। उन्नीस सर्गात्मक प्रकृत महाकाव्य में गान्धी जी के संघर्षमय जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की घटनाओं में पूर्वार्द्ध काल तथा उत्तरार्द्ध की सभी का चित्रण इस महाकाव्य में स्वाभाविक रूप से प्राप्त होता है। स्वतन्त्रता संग्राम में श्री गान्धी जी का नेतृत्व सर्वाधिक महत्वशाली रहा है। अतः वे समस्त भारत देश के लिये श्रद्धाभाजन बन गये। उनके स्वयं व्यवहृत वैचारिक दर्शन का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके विचारों का प्रभाव कवि पर भी पड़े बिना न रह सका, अतः कवि ने गान्धी जी को अपने काव्य का विषय बनाया। अधुनातन नवीन विषय परम्परा में प्रणीत संस्कृत के चरितात्मक महाकाव्यों में 'श्री गान्धिचरितम्' अपने विशिष्ट गुणों से अन्यतम रचना है।

'श्री गान्धिचरितम्' एक चरितात्मक महाकाव्य है। प्रकृत काव्य का प्रकाशन सम्वत् 2019 तदनुसार 1962 में श्री राधाबल्लभ मिश्र ने किया। वे अपने प्रकाशन काल में श्री जानकी संस्कृत विद्यालय नरकटियागंज, चम्पारन बिहार में संस्कृत के शिक्षक रहे हैं। प्रकृत काव्य के रचयिता भी उपरोक्त संस्था में प्रधानाचार्य पद को सुशोभित करते रहे।

प्रकृत महाकाव्य के प्रकाशन में 'आठ महानुभावों' ने विशिष्ट आर्थिक सहायता देकर कवि को उपकृत किया। उन महानुभावों में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (भूतपूर्व राष्ट्रपति) एवं श्री कृष्ण कुमार विरला का नाम विशेष उल्लेखनीय है। काव्यारम्भ में कवि ने 542 श्लोकों में बिड़ला कुल की प्रशस्ति प्रस्तुत की है। कवि के अनुसार काव्य के प्रकाशन में बिड़ला जी का सराहनीय आर्थिक योगदान रहा। अतः कवि ने उनके वंश के महान् गुणों का वर्णन कर कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्त्तव्य माना है।

1. कथावस्तु –

उन्नीस सर्गात्मक 'श्री गान्धिचरितम्' महाकाव्य में गान्धी जी के महनीय जीवन की गाथा वर्णित है जो उनके आत्म चरित की प्रमुख घटनाओं से सर्वथा मिलती जुलती है। महाकवि ने इनके जीवन चरित का तथ्यात्मक सरस चित्रण इस महाकाव्य में प्रस्तुत किया है। जिसका संक्षेप में सर्गानुसार विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रथम सर्ग –

आरम्भ शास्त्रानुकूल परम्परा में विघ्नविधातार्थ 'ईशवन्दना' (श्रीगान्धिचरितम् 1/1से 5) से हुआ है। श्री मोहन दास कर्मचन्द गान्धी का जन्म गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ जो अंग्रेजों से पूर्व 'सुदामापुरी' के नाम से जाना जाता था। गान्धीजी के पिता कर्मचन्द्र गान्धी तथा माता पुतलीबाई थी। इस सर्ग में गान्धीजी की जन्म कुण्डली के आधार पर कवि ने उनके महान् गुणशाली होने का भी उल्लेख किया है।

द्वितीय सर्ग –

कवि ने इस सर्ग में मोहन दास दर्मचन्द्र गान्धी जी की शिशु लीला, शिक्षा, विद्यालय पथ में उद्यानदर्शन, गुरुशुश्रूषा, कस्तूरबा के साथ पाणिग्रहण पिता के रूग्ण होने पर श्रवण कुमार के समान पितृ सेवा, पिता से अन्तिम शिक्षा, पितृशोक, अत्येष्टि, देश स्वातन्त्र्य हेतु चिन्तन, उच्च शिक्षार्थ विदेश गमन की कामना आदि विषयों का वर्णन किया है।

तृतीय सर्ग –

इस सर्ग में गन्धी जी द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु विदेश गमनार्थ माता जी से अज्ञा मांगने, एवं उन्हें शिक्षार्थ विदेश गमन की अनुमति देने के साथ ही साथ विदेशी संस्कृति, मांस मदिरा सेवन एवं निन्दनीय कार्य कलापों के प्रति सावधान रहने को भी कहती है। उनके द्वारा मां की आज्ञा का अनुशरण करने की प्रतिज्ञा की जाती है। साथ

ही साथ गान्धी जी द्वारा शस्त्रों में निषिद्ध समुद्र यात्रा पर भी विचार किया जाना वर्णित है।

चतुर्थ सर्ग –

इस सर्ग मे गान्धी जी की समुद्र यात्रा वर्णन के प्रसंग में समुद्र के प्राकृतिक वैभव का मनोहारी वर्णन किया गया है गान्धीजी के समुद्र यात्रा के अपूर्व अनुभवों एवं जहाज के विद्युदाभा से समुंद्र में पड़ने वाले प्रतिबिम्बों का मोहक चित्र भी खींचा गया है। साथ ही साथ 'अमरावती' तुल्य 'लन्दन नगरी में' गान्धी जी का पहुंचना वर्णित है।

पंचम सर्ग –

इस सर्ग में कवि ने गान्धीजी के आदर्श छात्र जीवन का वर्णन करते हुये उनके चरित्र वैशिष्ट्य का वर्णन किया है। यद्यपि मित्रों ने गान्धीजी के मांस मदिरा एवं तरूणी सेवन हेतु अत्यन्त प्रेरित किया परन्तु गान्धीजी ने इन्हें शरीर और आत्मा हेतु अहित कर मानकर निषिद्ध कर दिया। कुछ अंग्रेज युवतियों द्वारा गान्धी जी की जीवन सहचरी बनने के प्रस्ताव रखे जाने पर, गान्धीजी ने शान्त भाव से अपनी असहमति व्यक्त की।

षष्ठ सर्ग –

इस सर्ग में गान्धी जी के नवीन जीवनादर्शों का वर्णन कवि द्वारा वर्णित है। गान्धीजी द्वारा इंग्लैण्ड से लौटकर वकालत प्रारम्भ करना एवं इसी सन्दर्भ में एक प्रकरण के लिये उनका दक्षिणी अफ्रीका जाना एवं वहां के प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा देखकर दुःखी होना, अंग्रेजों की क्रूरतापूर्ण अमानवीय शोषण नीति से व्यथित गान्धी जी द्वारा सत्य और अहिंसा का आश्रय लेकर आन्दोलन प्रारम्भ करना एवं आन्दोलन की सफलता स्वरूप उनका सर्वत्र यश फैल जाना वर्णित है।

सप्तम सर्ग –

इस सर्ग में गान्धीजी ने दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटना एवं सर्व श्री गोपालकृष्ण गोखले, महामना मदन मोहन मालवीय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से उनकी महत्वपूर्ण भेंट होना, लोकमान्य तिलक जी द्वारा गान्धी जी को तत्कालिक भारत की दुर्दशा सुनाना एवं स्वर्णिम अतीत का स्मरण कराना वर्णित है। इसी प्रसंग में भारत भूमि के अमर सपूत चन्द्रगुप्त, चाणक्य, पृथ्वीराज चौहान, महाराण प्रताप एवं शिवा जी के शौर्यपूर्ण सेवाव्रत का वर्णन किया गया है।

अष्टम सर्ग –

196 श्लोकयुक्त यह सर्ग प्रकृत महाकाव्य का सर्वाधिक विस्तृत सर्ग हैं इस सर्ग में गान्धीजी का स्वदेश भ्रमण वर्णित है। देश के सुदूर भागों का सर्वेक्षण करने हेतु व कलकत्ता, वाणारसी एवं लखनऊ भी गये। तत्पश्चात् वे बिहार के चम्पारन जनपद में भी आये जहां अंग्रेज शासकों द्वारा कृषकों का शोषण किया जा रहा था। गान्धी जी बिहार के किसानों की दुर्दशा देखकर द्रवीभूत हो गये।

नवम सर्ग –

इस सर्ग में कवि ने पाटलिपुत्र (पटना) के ऐतिहासिक, पौराणिक, शैक्षिक एवं

सांस्कृतिक महत्व का परिचय करते हुये वहां गान्धी जी के शुभागमन का वर्णन प्रस्तुत किया है। (श्रीगान्धिचरितम् 9/1–10) नील की खेती कर रहे किसानों पर होने वाले अत्याचारों का मार्मिक वर्णन, गान्धीजी द्वारा वहां के निवासियों की हीन दशा देखकर विचलित मन से नरनारियों के समक्ष भाषण करना एवं किसानों की चिन्तनीय दशा के लिये शासकों को दोषी मानना वर्णित है। उस समय गान्धी जी के समक्ष उपस्थित एकत्रित जनसमूह को देखकर शासक भयभीत हो गये।

दशम सर्ग –

इस सर्ग में गान्धी जी के महान् गुणों का वर्णन है। गान्धी जी द्वारा देश की जनता को सीता राम की महिमा बताना, सत्य अहिंसा एवं परोपकार आदि महनीय विषयों पर विस्तार से प्रकाश डालना, निर्बल एवं पीड़ितों के प्रति प्रेम सहिष्णुता एवं सेवा भावना जागृत करने का उपदेश देना वर्णित है।

एकदश सर्ग –

इस सर्ग में महात्मा गान्धी के उदार गुणों एवं प्रभावशाली उपदेशों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही कवि ने वेत्रवती नदी का प्राकृतिक चित्रण (श्रीगान्धिचरितम् 11/1–10) महात्मा गान्धी जी की विपिन बिहारी घोष एवं सरदार बल्लभ भाई पटेल से भेंट, खेड़ा में दुर्भिक्षग्रस्त जनता की सेवा एवं आश्वासन तथा मार्ग दर्शन का उल्लेख है।

द्वादश सर्ग –

इस सर्ग में तत्कालीन भारत की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। जर्मनी से यद्ध के समय ब्रिटिश सम्राट् द्वारा सहायता की याचना करने पर गान्धी जी द्वारा शत्रु की असहाय अवस्था पर विचार कर उसका युद्ध में समर्थन करना, (श्रीगान्धिचरितम् 12/10–30) शासकों द्वारा इस अनुबन्ध के उपरान्त समर्थन देना कि युद्ध के पश्चात् भारत को स्वतंत्र करना होना, परन्तु इसका परिणाम विपरीत हुआ। अंग्रेजी शासन ने 'रौलेट एक्ट' लगाकर जनता का और अधिक उत्पीड़न प्रारम्भ कर दिया जिसका भारत में प्रबल विरोध हुआ। विरोध को कुचलने हेतु सकरार ने निर्दयता का आश्रय लिया। 'जलियांवाला बाग' में 'डायर ने निरपराध भारतीयों' पर गोल वर्षा कर हजारों स्त्री–पुरूष–बच्चों का मौत के घाट उतार दिया। गान्धीजी ने स्वार्थी अंग्रेजों के इस अत्याचार का विरोध करते हुये अहिंसात्मक आन्दोलन करने का आह्वान किया, जिसमें देश के सभी नेताओं ने सहयोग किया।

त्रयोदश सर्ग –

इस सर्ग में गान्धीजी का गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने हेतु जाना वर्णित है। इसमें बम्बई की जनता द्वारा गान्धी जी की विदाई तथा लन्दन पहुंचने पर उनके भव्य स्वागत का चित्रण किया गया है। इस समय गान्धी जी के साथ अन्य नेताओं के अतिरिक्त भारत कोकिला सरोजनी नायडू भी उपस्थित थीं।

चतुर्दश सर्ग –

इस सर्ग में गान्धी जी द्वारा गोलमेज सम्मेलन में उपस्थित ब्रिटिश सम्राट एवं उनके मंत्रियों को भारत की स्थिति से अवगत कराना एवं भारतीय जनता की स्वराज्य कामना से अवगत कराना वर्णित है। अंग्रेजी सम्राट् के संकेत पर उसके मंत्रियो ने गांधी जी से कहा कि सम्राट् भारत को स्वतन्त्र करना चाहते हैं किन्तु भारत में अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक धर्म एवं जाति के नाम पर विद्वेष इसमें बाधक है। महात्मा गान्धी इस सस्मया के विषय का निराकरण मंत्रियों से करते हैं।

पंचदश सर्ग –

इस सर्ग में लन्दन से बम्बई लौटने पर गान्धीजी का भव्य स्वागत वर्णित है। वे लन्दन में गोलमेज सम्मेलन में होने वाली वार्ता से जनता को अवगत कराते हैं। कवि इसी प्रसंग में सूर्यचन्द्र और रात्रि वर्णन भी किया है। बम्बई में देश के शीर्षस्थ नेता एकत्रित होकर स्वातन्त्र्य आन्दोलन छेड़ने का संकल्प लेते हैं। जनता संघर्ष के लिये कटिबद्ध है। अंग्रेज शासकों ने आन्दोलन से पूर्व ही नेताओं को कारागार में डाल दिया। बम्बई में जल सेना ने विद्रोह कर दिया था स्थान–स्थान पर भयंकर आन्दोलन हुये। आन्दोलन के उग्र रूप को देखकर सरकार ने गान्धी जी को मुक्त कर दिया और भारत को स्वराज्य देने का विचार किया।

षोडश सर्ग –

इस सर्ग में कवि ने मुख्य रूपेण क्रिप्समिशन, स्वराज्य लाभ और देश के उल्लासमय वातावरण का वर्णन किया है। साथ ही महात्मा गान्धी जी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू एवं राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के महनीय गुणों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

सप्तदश सर्ग–

इस सर्ग में कवि ने दिन रात्रि का काव्यमय वर्णन प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् गान्धीजी की 'राम–राम' कल्पना का उपदेशमय वर्णन है। अपने उपदेश में गान्धी जी ने सत्य और अहिंसा के महत्व पर प्रकाश डालते हुये नैतिक मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया है।

अष्टादश सर्ग –

इस सर्ग में कविवर मिश्र जी ने गान्धी जी द्वारा प्रतिपादित 'रामनाथ महिमा', उनके दार्शनिक चिन्तन एवं 'मानवधर्म के विषय में विचार व्यक्त किये हैं। इसी सर्ग में नाथूराम गोडसे द्वारा गान्धीजी की हत्या हो जाने पर भारत की जनता की कारूणिक दशा का वर्णन है।

एकोनविंश सर्ग –

इस सर्ग में स्वर्गस्थ गान्धी जी के निधन से शोकाधिमग्न विश्व की जनता का वर्णन है। देश के नेताओं ने गान्धी जी के प्रति शोक संवेदना व्यक्त की तथा असंख्य स्त्री पुरूषों ने उनके शव पर श्रद्धासुमन समर्पित किये। गान्धीजी की अन्त्योष्टि के साथ ही अन्तिम सर्ग कारूणिक हो गया है।

भाषा शैली –

प्रकृत महाकाव्य 'श्री गान्धिचरितम्' की भाषा सरल, समासबहुलता से रहित, भावानुकूल तथा प्रांजल होने के साथ साथ रसानुभूति कराने में सर्वथा समर्थ है। महात्मा गान्धी की जीवन गाथा को सरल संस्कृत श्लोकों में अनुस्यूत कर अधिकाधिक लोगों तक पहुंचाना ही कवि का परम उद्देश्य है। अतः काव्य में दुरूहता, क्लिष्टता एवं चमत्कार प्रदर्शन का अभाव सा है। कवि ने परम्परागत काव्यों में प्रयुक्त विशेषज्ञों को यथास्थान प्रयोग करते हुये श्री गान्धी जी के गुणों की कहीं एक ही स्थल पर एवं कहीं उनके कार्यों के माध्यम से अंकित किया है। रामायण एवं रघुवंश की भांति एक ही स्थान पर उनके गुणों का प्रसादमयी भाषा में वर्णन दर्शनीय है –

"विशालभालं सुश्यामं नलिनायतलोचनम्।
आजानुबाहु सुनासिकं कम्बुग्रीवं मनोहरम्।।
समुद्रमिवं दुर्धर्षं विश्वमंगलंभावनम्।
ज्वलितं तपसा दिव्यं महता च समन्वितम्।।"

(श्री गा.च. 11/12, 14)

प्रकृत काव्य में सर्वत्र प्रसाद गुणोपत भाषा की प्रमुखता पुनरपिमाधुर्य एवं ओज के भी अनेक स्थल मिलते हैं। (श्रीगान्धिचरितम् 17/14) कवि की शैली में स्वाभाविक प्रवाह एवं सहजबोधगम्यता के दर्शन होते हैं। किसी भी भाव को व्यक्त करने के लिये कृपणता का प्रश्रय नहीं लिया गया हैं अतः कवि की भाषागत शैली में कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। कवि ने सुकुमार मार्ग का अनुशरण कर वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। काव्य में जिन स्थलों पर दार्शनिक चेतना का वर्णन मिलता है, वहां कवि का गाम्भीर्य भी दर्शनीय है। यथा –

"व्यष्टेर्यः समुदायस्तु समष्टिं सेति निर्णयः।
ततो व्यष्टिगतं कार्यं समष्टैरैव सम्मतम्।।"

(श्री गा.च.18/59)

"कार्यकारणभावस्य नियतत्वान्न जायते।
स्वतः सर्गो न पितरो पुत्रोद्भवो यथा।।"

(श्री गा.च.18/67)

छन्दोयोजना –

प्रकृत काव्य 'श्री गान्धिचरितम्' के प्रणेता श्री साधुशरण मिश्र की छन्दशास्त्र में भी अव्याहत गति है। प्रकृत काव्य में कवि ने प्रायः सभी प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। अनुष्टुप्, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, बसन्ततिलका, मालिनी, मंदाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का कव्य में सफल प्रयोग देखने को मिलता है। प्रत्येक सर्ग में प्रायः एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है और सगन्ति में महाकाव्य परम्परा के अनुसार छन्द परिवर्तन भी किया है। 'अनुष्टुप्' कवि का प्रिय छन्द है। जिसका

उदाहरण दर्शनीय है। यथा –

"धर्मात्मकस्य वृक्षस्य मूले सत्यं व्यवस्थितम्।
परोपकारस्तु स्कन्धा अहिंसाफलमुत्तमम्।।"

(श्री गा.च. 2/66)

अन्य छन्दों का भी प्रकृत काव्य में सुन्दर प्रयोग हुआ है। कवि की 'छन्दोयोजना' सर्वथा सराहनीय है।

अलंकार विधान –

'श्रीगान्धिचरितम्' महाकाव्य में कवि का मुख्य उद्देश्य गान्धी जी के ऐतिहासिक जीवन वृत्त का चित्रण करना रहा है, अलंकृति प्रदर्शन नहीं। अतः काव्य में सुदृढ़ता लाने वाले श्लेष एवं यमक आदि अलंकारों का प्रायः अभाव देखा गया है। इस विषय में कवि ने स्वयं निवेदन किया है –

"नात्र सम्मवीतरानेक विद्यालंकृति प्रदर्शनार्थ कोपि प्रयासः कृतो न वा समासबाहुल्य में वाश्रितंनापि रसास्वाद–विलम्बकारिणांयमकादीनां संग्रहः कृतः।"

पुनरपि कवि ने सभी प्रमुख अलंकारों का सफल विधान प्रकृत महाकाव्य में किया है, जिनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, पुनरुक्तिप्रकाश एवं स्वभावोक्ति आदि दर्शनीय है। काव्य में उपमा एवं रूपक तो प्रमुखतः प्रयुक्त हुआ है। अलंकार सदैव स्वाभाविकता उत्पन्न करने में समर्थ है। उपमा प्रयोग का निम्नलिखित सुन्दर श्लोक प्रेक्षणीय है –

"इत्थं मातृकृतादेशो गुरोराश्रममभ्यगात्।
सेव्यमानः मुदा शिष्यैः कमलं भ्रमरैखि।।"

(श्री गा.च. 6/10)

इसी प्रकार रूपकालंकार का भी प्रयोग कितना सुन्दर और मनोहर दर्शनीय है –

"रजन्यां स तथा बहवा कलानिधिखियायौ।
वरेण तेन सा रेजे शशिनेव विभावरी।।"

(श्री गा.च. 6/11)

कवि ने प्रकृत महाकाव्य में उपमा के 'पूर्णोपमा और लुप्तोपमा' (श्रीगान्धिचरितम् 6/16) दोनों के ही रूपों को प्रस्तुत किया है। उपमा एवं रूपक अलंकारों का कहीं परम्परागत और कहीं नवीन रूप देखने को मिलता है। सांगरूपक अलंकार का निम्न अभिनव प्रयोग द्रष्ट्व्य है –

"धर्मात्मकस्य वृक्षस्य मूलं सत्यं व्यस्थितम्।
परोपकारास्तत्स्कन्धा अहिंसाफलमुत्तमम्।।"

(श्री गा.च. 2/66)

इसी प्रकार महाकाव्य में यत्र तत्र सन्देह (श्रीगान्धिचरितम् 12/58–61), मानवीकरणमय समासोक्ति (श्रीगान्धिचरितम् 2/65–67) तथा अनुप्रास (श्रीगान्धिचरितम् 16/8, 18) के अनेक उदाहरण है। कवि का उपवन वर्णन, दिन रात्रि एवं सूर्यचन्द्र वर्णन

भी कवि ने अलंकार शिल्प प्रयोग श्रेष्ठता एवं निपुणता का परिचायक है। इन स्थलों पर अलंकारों में अस्वाभाविकता को स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। अतः कवि का अलंकार विधान उत्कर्षाधायक एवं स्तुत्य है। जहां कवि ने प्रकृति के रमणीय दृश्यों का चित्रण किया हैं वहां उसकी भाषा कोमल कान्त प्रसाद एवं माधुर्य गुण युक्त पदावली से सुसज्जित दृष्टिगोचर होती है। यथा –

समदमधुपवृन्दैर्मर्दमानं सरोजं,
दिनकरकरजालैः स्पृष्टमालोक्यं मुग्धेः।
श्रुतिसुखदनिनादैरच्यते ग्रन्थलुब्धेः,
सुभगनवसुवर्णाम्भोजबुद्धया भ्रमद्भिः।।

(श्री गा.च. 17/14)

महाकाव्य में कवि ने सूक्तियों का यथास्थान प्रयोग कर अपनी शैली को और सरल एवं प्रभावोत्पादक बना दिया। सूक्तियों विषय की स्पष्टता को प्रस्तुत करती है। उनकी कतिपय सटीक एवं स्वयं अनुभूत सूक्तियां दर्शनीय है –

भेषजं शमयेद् रोगं न च मृत्युमुपस्थितम्।। (श्री गा.च. 2/163)
सहस्रांशुं विना लोके दिनकृत केन कथयते।। (श्री गा.च. 8/44)
विषं चापि विषेणाशु शाम्यतीति विषव्यथाम्।। (श्री गा.च. 2/124)
सत्यमेव पुरुषं मधुरं वायो ब्रवीति न विभेति कुतश्चित्।। (श्री गा.च. 13/96)

इस प्रकार कवि की शैली विषयवस्तु के यथार्थ ज्ञान के साथ साथ काव्यरसानुभूति कराने में समर्थ है। वस्तुतः कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

प्रकृति चित्रण –

प्रकृति चित्रण का संस्कृत महाकाव्य परम्परा में अक्षुण्ण स्थान है। प्रकृत महाकाव्य में भी कवि ने उसको समुचित स्थान दिया है। काव्य में जहां प्रकृति की रमणीय छटा उपस्थित है, वहीं विधु और कुमुदिनी नायक–नायिका के रूप में उपस्थित श्रंगारिक भाव उत्पन्न करते हैं। एक ओर नायिका कुमुदिनी चन्द्रोदय में प्रसन्न होकर विधु किरणों के माध्यम से नायक चन्द्रमा का आलिंगन कर रही है तो दूसरी ओर पद्मिनी कुपित है :

कुमुद्वतीं भजत्येष श्लिष्यन् गौरेः करैर्विधुः।
पद्मिनी कुपितेवासो न तस्मिन्ननुरक्तिवान्।।

(श्री गा.च. 15/58)

इसी प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने सौरभप्रसरण, लताओं और वृक्षों के परिरम्भ, काकपिक कूजन, भ्रमर पंक्तियों का गुजंन, त्रिविध समीर प्रसरण आदि प्राकृतिक जगत का सुन्दर समन्वय स्थापित किया है।

कलकत्ता नगर के प्रसंग में कवि ने गंगा वर्णन (श्रीगान्धिचरितम् 8/15–16), तदनन्तर वेत्रवती एवं चन्द्रावती नदियों के तटों एवं उद्यानों का सुन्दर वर्णन किया है। (श्रीगान्धिचरितम् 11/35–43) रात्रि वर्णन में कवि ने प्रकृति की श्रंगारिक चेष्टाओं का

भी भावपूर्ण चित्रण किया है। (श्रीगान्धिचरितम् 15/48, 68)

काव्य में प्रकृति की संवेदनशीलता, आलम्बन रूप एवं उद्दीपन रूपों के साथ–साथ प्रकृति एवं उसकी विभिन्न वस्तुओं कर मानवीकरण किया गया है। पूर्ववर्ती काव्यों की भांति प्रकृत महाकाव्य में भी प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। कवि ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का अपनी प्रखर प्रतिभा से निरीक्षण किया है। सामान्यतः आलम्बन तथा पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है।

ऐतिहासिकता –

प्रकृत महाकाव्य इतिहास पुरूष महात्मा गान्धी के जीवन चरित पर आधारित है। काव्य में विश्वबन्धु गान्धी के विभिन्न विख्यात ऐतिहासिक कार्यों का वर्णन किया गया है। साथ ही पण्डित मोतीलाल नेहरू, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय जैसे राष्ट्रवीर पुरूषों के ऐतिहासिक देश सेवा कार्यों का भी वर्णन मिलता है। काव्य में पृथ्वीराज चौहान, चन्द्रगुप्त मौर्य तथा महाराणा प्रताप जैसे वीर पुरूषों की कहानी भी संक्षेप में उल्लिखित है। जिन्होंने अपने वीरतापूर्ण कार्यों से देश के भविष्य को उज्ज्वल किया । ऐसे महनीय पुरूषों के ऐतिहासिक गुणों से अनुस्यूत प्रकृत काव्य संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्यों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बीसवीं शती में स्वार्जित ऐतिहासिक काव्य सर्जना की यह एक विशिष्ट भेंट है।

रस निष्पत्ति –

'श्रीगान्धिचरितम्' महाकाव्य में प्रसंगानुसार विविध रसों की अभिव्यंजना हुई है। प्रकृत काव्य में वीर, करूण, श्रंगार, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत एवं शान्त आदि रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। इन रसों में करूणरस की ही प्रधानता दृष्टिगत हुई है। काव्य के अन्त में महाकाव्य के नायक गान्धी जी की गोलीप्रहार में हत्या से कारूणिक दृश्य उपस्थित हो जाता है। जिसका पाठक पर 'शोक' का स्थायी प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य में अनेक कारूणिक स्थल आते हैं। यथा अकाल पीड़ित एवं महामारीग्रस्त एवं प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त भारतीय जनता तथा अंग्रेजी शासन के दमन चक्र से दुखी निर्दोष भारतवासी महात्मा गान्धी जब चम्पारन (बिहार) का दौरा करते हैं तो वहां नर–नारियों एवं बालकों की दशा कितनी दयनीय है –

प्रक्षीणकायान् श्लथितांससन्धीन्,
सन्मोदरान् रूक्षकचान् कुचैलान्।
दीनाननाथान् भग्नगतो नृरूददिम्ः,
क्षुधानुयद्भिः शिशुभिश्च युक्तान्।।

(श्री गा.च. 5/57)

अन्य –

अन्येवतो दुःखविमोक्षहेता,

सम्प्रीयमाणान् पुनरन्यतश्च।
भयस्मृतेः शासकदुर्गहाणां,
सम्प्रपरिम्लानमुखारविन्दान्।।

(श्री गा.च. 9/58)

महाकाव्य में वर्णित जलियांवाला बाग काण्ड से तो समस्त देश ही शोकमग्न हो गया, कवि ने उसका प्रभावी वर्णन कर पाठकों को और भी करूणार्द्र करने वाला बना दिया है –

हा तात हा मातरिति प्रकामम्,
लालप्यमानाः करूणं रूद्रन्तः।
रक्तोक्षिता भूपतिता लुठन्तो,
लोका क्षतांगोपरतास्तदासन्।।

(श्री गा.च. 12/36)

कुछ लोगों ने अपने पुत्रों, पुत्रियों और पत्नियों को हाथ से ग्रहण किये हुये तथा शिशुओं को गादे में लिये हुये ही गोलियों के प्रहार से रक्त रंजित होकर प्राण त्याग दिये। कैसा कारूणिक दृश्य उपस्थित था –

केचित् कराभ्यं परिग्रह्य पुत्रान् पुत्रींश्च पत्नीरप केपि वालान्।
मृतान्निजांके प्रसमीक्षमाणाः, प्राणांजहुः स्वान् रूधिरोक्षितांगा।।

(श्री गा.च.12/36)

इसी प्रकार काव्य के उन्नीसवें सर्ग में महात्मा गान्धी जी के मृत्यु प्रसंग में कवि ने करूणरस की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यंजना की है। (श्रीगान्धिचरितम् 19/1 से 90) वीररस (श्रीगान्धिचरितम् 10/6–7) का भी प्रकृत महाकाव्य में समुचित परिपाक हुआ। अंग्रेजी सैनिकों एवं स्वतन्त्रता सेनानियों के मध्य हुये संघर्षों में भारतीय नेताओं को गिरफ्तार करते हैं तो जनता उग्र हो उठती है –

ततः कोधानलः सर्वे लोकानां ववृधे महान्।
प्रलयाग्निरिवोद्भूतोज्वालाकुलितविग्रहः।।

(श्री गा.च. 15/123)

एवं सर्वत्र संक्षुब्धः लोककोपानलोल्वणः।
ज्वालाभिवर्ततोदग्धं राजैश्वर्यमशेषतः।।

(श्री गा.च. 25/135)

प्रकृत काव्य में मर्यादानुकूल श्रंगार रूप की भी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यद्यपि एक पत्नीव्रती जितेन्द्रिय गान्धीजी में श्रंगार का भाव ही नहीं है, फिर भी उन पर मुग्ध कुछ युवतियों के प्रसंग में एक पक्षीय श्रंगार की अभिव्यंजना दृष्टिगोचर हुई है। काव्य में प्रकृति चित्रण के प्रसंग मे भी ध्यानपूर्वक नायक नायिका के आरोपण के श्रंगार की अभिव्यंजना हुई है।

जहां तहां क्षत विक्षत पड़े हुये शवों की दुर्गंधपूर्ण दुर्दशा के वर्णन से महाकाव्य

में वीभत्स रस की प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है।

प्रकृत काव्य में शान्त, अद्‌भुत, भयानक आदि रसों की स्थान–स्थान पर अभिव्यंजना हुई है। वात्सल्य रस की निर्मलधारा भी यत्र प्रवाहित हुई है। इस प्रकार महाकवि श्री साधुशरण मिश्र की रस योजना श्रेष्ठतम है।

समीक्षा –

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि विवेच्य महाकाव्य श्रीगान्धिचरितम् अपने शास्त्रीय रचना विधान की दृष्टि से सम्पूर्णता को प्राप्त करता हुआ भाव, भाषा में अत्यन्त समृद्धि को समाहित करता है। इसमें सर्वत्र प्रासादिकता, मधुरता, अलंकारपूर्णता, रसवत्ता इसको अत्यन्त प्रभावी काव्य रचना के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिससे प्रत्येक पाठक रससिक्त होकर परमानन्द का अनुभव करता है। इस महाकाव्य में वर्ण्य विषय के अनुसार प्रसाद एवं माधुर्य गुण पूर्ण कोमलकान्त पदावली, अनुरूप, सशक्त, छन्दोलंकार योजना, प्रभावी रस निष्पत्ति सर्वत्र संलक्षित होती है।

इन अनेक काव्य शास्त्रीय विशेषताओं के कारण भाव एवं कला पक्ष पूर्ण इसका काव्य कलेवर अत्यन्त स्तरीय है। जिससे अर्वाचीन श्रेष्ठ महाकाव्यों में इसके गणना सभी साहित्यिक समीक्षक करते हुये इसकी उपादेयता और स्तरशीलता को रेखांकित करते हैं। अतः सभी साहित्यिकों को इस महाकाव्य का आद्योपान्त अनुशीलन अवश्य करना चाहिये।

नवम अध्याय

प्रकीर्ण संस्कृत-कवि तथा उनके संस्कृत गान्धी काव्यों का अध्ययन

नवम अध्याय

प्रकीर्ण संस्कृत कवि तथा उनके संस्कृत गान्धी काव्यों का अध्ययन

अर्वाचीन प्रकीर्ण काव्यों में श्री भगवताचार्य का भारत पारिजातम् नामक विशालकाय महाकाव्य समकालीन संस्कृत गान्धी काव्यों सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 'भारत–पारिजात' के तीनों भागों का प्रकाशन राव जी भाई मेघ जी भाई मोम्बासा केन्या ईस्ट अफ्रीका से हुआ है। स्वामी श्री भगवदाचार्य ने अपनी कृति "भारत–पारिजात" में महात्मा गान्धी के चरित का प्रथम भाग 25 सर्गो में लिखा है। गान्धी जी का पूरा चरित भगवदाचार्य ने तीन भागों में सम्पन्न किया है। भारत पारिजात में दॉडी प्रयाण तक का चरित है। दूसरें भाग में पारिजातपहार के 29 सर्गों में 1942 ई. के भारत छोड़ो अन्दोलन तक की घटनाओं का संकलन है। तीसरे भाग में पारिजात सौरभ के 21 सर्गों का नोवाखली यात्रा का विशेष वर्णन है।

भारत पारिजात के रचयिता भगवदाचार्य प्राचीन और नवीन संस्कृति के सामन्जस्य के परमोपासक हैं। उनके व्यक्तित्व में कर्मयोग का सच्चा परिपाक हुआ है। सन्यासी का जीवन बिताते हुए भी वे अपनी जिज्ञासा की परितृप्ति के लिए और भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिये देश विदेश में भ्रमण कर चुके हैं। उनकी दृष्टि में धर्म शब्द का मुख्य अर्थ सत्य और सदाचार और सत्य को समगति चाहते हैं।

उपर्युक्त महाकाव्यों के लिए ऐतिहासिक सामग्री का शोध भगवदाचार्य ने वैज्ञानिक विधि से किया है। ऐतिहासिक तथ्यों को काव्य के सांचे में ढ़ालने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है। "भारत–पारिजात" के कुछ श्लोकों के पर्यालोचन से इसके स्वरूप का परिचय मिलेगा –

"नानापराधं हरिमन्दिरेषुयेषां प्रवेशः प्रतिषिद्ध आसीत्।
तेषां ममौ हर्ष भरौ न चित्तं संचिन्त्य सर्वोद्घृतिकृत्प्रसूतिम्।।" (2/20)

बिना अपराध के ही जिन लोगों का भगवान के मन्दिर में जाना निषिद्ध था, उन्होंने जब सोचा कि सबके उद्वार करने वाले महापुरूष गान्धी का जन्म हो रहा है तब उनका आनन्द उनके मन में नही समाया।

"क्रोधप्लुष्टैर्मतिविभवतो भ्रष्टतामेत्यदुष्टै,
रन्यायैस्तामबल जनतांमिघृणे दैत्यरूपैः।
नाना शस्त्रैः अनलगुलिका सम्प्रहारैर्हतांसः,
श्रुत्वा शोकानलबल वृतश्चिन्तितोऽभून्महात्मा।।" (9/74)

(कोध से जलते हुए, बुद्धि से भ्रष्ट हुए, निर्दय, दैत्य समान दृटों से पंजाब की अबल जनता को जिनके पास कोई फौज नहीं थी, उसको तरह–तरह के शस्त्रों और

गोलियों के प्रहारों से (जलियान वाले बाग में) मारी गयी सुनकर महात्मा जी शोकातुर और चिन्तित हो गये।)

"भिन्नो भवेयं भुवि रवराऽशोऽह तथा परावृत्य निजाश्रमाय।
गच्छेयमेतन्न परंसमीहे परभवेद् दुर्बलमत्र कोऽपि।।" (18/121)

मैं गान्धीजी टुकड़ा–टुकड़ा हो जाऊँ लौटकर आश्रम में चला जाऊँ, परन्तु मैं यह कभी भी नहीं चाहूंगा कि कोई भी गरीबों का तिरस्कार करे।

"श्री कवीन्द्रो रवीन्द्रोऽपि बंगदेशाहषि प्रभः।
समायायत्र सहसा मुनिवर्य विलोकितुम्।।" (14/91)

"समागत्य द्विजेशोऽसौनयनाभ्यां पिबन्मुनिम्।
चिरात्तर्षाभिसन्तप्तः सौहित्यं ना पदुन्मनाः।।" (14/92)

(ऋषि के समान श्री कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर श्रेष्ठ मुनि महात्मा जी को देखने के लिए वहां यरवदा जेल में उपवास के समय आये। वे महात्माजी को नेत्रों से बारम्बार पीते हुए भी चिरकालीन पिपासा के कारण परितृप्त नहीं होते थे।)

भारत पारिजातम्, पारिजातापहार, पारिजात सौरभम्, काव्यों की त्रिवेणी चाहे शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो परन्तु मेरे हृदय की लहरी के साथ ही काव्यत्रयी को विद्वान् सुनें और उन्हे आनन्द हो इतनी ही इच्छा है, यदि इस काव्यत्रयी त्रिवेणी में मेरी बुद्धि की अल्पता के कारण कोई त्रुटि हो तो परमकरूणा वारिधि विद्वान मुझे क्षमा करें।

"अशुद्धं शुद्धं वा हृदय लहरी संगतमिति,
महाकाव्यं श्राव्यं भवतु परिमोदायविदुषाम्।
यदिस्कन्नं किन्चिद् भवति, ममबुद्धेस्तनुतया,
क्षमन्तां विद्वांसः परमकरूणावारिनिधयः।।"

(भारत पारिजात 25/69)

भगवदाचार्य साबरमती में बच्चों को पढ़ाते थे अतः आश्रम में रहते हुए अपने कुछ अनुभव थे। द्वितीय सन्यासी जीवन था, दर्पोक्ति के साथ कुछ कह जाएं तो कुछ अप्रिय नहीं। आश्रम में जो कुछ हुआ है, होता है, उस सबको मैं अविकल रूप से जानता हूँ। अतः इस काव्य में जो कुछ लिखा गया है उस पर मूर्ख और विद्वान् किसी को सन्देह करने के अवसर नहीं है –

"ततश्च तदवृत्तम्वैमिसम्भवंतभूत भवच्चापि सदा विकल्पनम्।
ततो न संशीतिरिहारित कार्याजडोपिमेनापि बुधेनवाऽपि।।"

(भारत पारिजात 25/65)

परन्तु अपने कर्म रूप काव्य के प्रति सदा विनम्र भगवदाचार्य का यह कथन विम्रत्व का द्योतक है कि यह मेरा काव्य सदोष हो, तो भी विद्वानों के पास जाकर उनकी निर्दोष दृष्टि से यह भी निर्दोष हो जायेगा।

"सदोषमपि मत्काव्यमिदं सम्प्राप्य धीमतः।
भविष्यत्येष निदोषं निर्दोष दृगुपाश्रयात।।"

(भारत पारिजात 25/71)

"पारिजातापहारः" के कथ्य का समस्त वृत कवि का आंखे देखा और बहुत कुछ अनुभूत होने के कारण सत्य है।

"पारिजातप्रहराख्यं महाकाव्यमनुत्तमम्।
सत्य वृत्तं भगवद्वृत्तं, दृष्ट्वाज्ञात्वामयाचि।।"

(भारत पारिजात 29/97)

और पारिजात सौरभम् का प्रतिपाद्य स्वराज्य स्थापना और स्वर्ग प्रयाणावधि गान्धी जी का चरित्र विश्लेषण है।

अनुपम शब्द सामर्थ्य और अद्वितीय रचना पद्धति की क्षमता होते भी स्वामी भगवदाचार्य न भारतीय मनीषा की परिपाटी विनम्रता को नहीं छोड़ा है तभी तो भारत पारिजात में गुरू चरण सरोज रज सर्वोत्कृष्ट रहे जिसकी रन्चमात्र सामर्थ्य से मैं मन्द बुद्धि होता हुआ भी डरता–डरता अथवा आदर के साथ महाकवि के मार्ग पर चलने के लिए समर्थ हो सका हूँ।

"जयन्तु ते श्रीगुरुपादरेणवो यद्दीपसामर्थ्यलवादपि प्रभुः।
महाकवीनां सरणिं समादरान्निषेवितुं चाहमनुष्णधीः।।"

(भारत पारिजात 1/3)

मातृभाषा अथवा देशभाषा को ही महत्व देना भगवदाचार्य को भाता है और आता है। जो जनता अपनी देशभाषा अथवा मातृभाषा को छोड़कर परदेश की भाषा का सहारा टटोलती है वह आपदायें पाती हैं। अतः इस साबरमती आश्रम में हिन्दी और संस्कृत का प्रचार रखा गया है।

"स्वदेशभाषामयमातृभाषां त्यक्त्वा प्रजायां परदेशभाषाम्।
समाश्रयन्ते विपदो भजन्ते ततोऽत्र हिन्दीसुरगीप्रचारः।।"

(भारत पारिजात 6/18)

सत्याग्रह आश्रम की प्रतिष्ठा, भरतीयों का सामूहिक उपवास, पंजाब में अशान्ति और सैनिक शासन, जलियांवाला बाग के अत्याचार, मोतीलाल के प्रभाव से कसूर नगर में मानवों के प्राणदण्ड पर रोक, न्यायालय में महात्मा गान्धी का मौखिक निवेदन, पूर्ण स्वराज्य की घोषणा, दण्डी यात्रा के समय अपने सैनिकों के लिए महात्मा गान्धी का सन्देश, देश के नागरिकों के नाम राष्ट्र का सन्देश, जिस पर चल कर प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र को चरम विकास पर पहुंचाने में पुनीत कार्य में योग दे सकता है।
प्रजातन्त्रात्मक राज्य के चित्र खींचते–खींचते विभिन्न स्थानों पर चरित नायक गान्धी का भ्रमण और भाषण, विभिन्न नेताओं की धर–पकड़, गोलमेज कांफ्रेन्स के लिए लन्दन गमन और भारत में बड़े–बड़े नेताओं की धर–पकड़, अनेक विरोधों के बावजूद महासभा को सत्ता की प्राप्ति होते–होते महाकाव्य का समापन हो गया है।

"भारत॑पारिजाताख्ये काव्येयत्किञ्चिदालिखितम्।
ततः पश्चात् विशिष्टं यज्जातं तदिहलिख्यते।।"

(भारत पारिजात 1/1)

महासभा के शासनकाल में सुखप्रद मार्गों के निर्माण का निश्चय और सभी प्रान्तों में अन्त्यजों के उद्धार अनेकविध हुआ। महासभा के स्वामित्व में समस्त मन्त्रिमण्डल प्रजा के अभ्युदय और दुख दूर करने में जुट गये। द्वितीय महायुद्ध के बाद तोड़–फोड़ की ध्वनि सर्वत्र उठ खड़ी हुयी क्योंकि अंग्रेजों का झूठा वायदा खुल गया था। झूंठों के झूठे वचन लम्बे समय तक नहीं टिक पाते। सूर्योदय होने पर कुहासा देर तक नहीं टिक पाता –

"चिरंनतिष्ठेद्दसतामसद्वचो, रवावुदीत न कुहा श्रयेत् स्थितिम्।"

(पारिजातपहार 3/29)

अंग्रेजों ने भारत को हिंसा से दबाना चाहा परन्तु दबाव का दबाव थेड़ी देर ही रहा पता है क्योंकि अग्नि को कपड़े से अधिक देर तक ढका नहीं जा सकता –

"पीडापरं सा क्षतमेव तिष्ठति– छाद्यो हि बह्निर्वसनेनोचिरम्।।"

(पारिजातपहार 4/5)

भय से भले ही सारा जगत् चुप रहे परन्तु सबके मन में अंग्रेजों का वाक् छल और पाप प्रकट था। मानववाद का पाठ पढ़ाते हुए –

"शक्त्या स्वयापि समुपार्जित वस्तुभोगेः
स्वातन्त्र्यमस्ति न निरकुंशमित्यवेत।
राष्ट्रांगतां च भजते मनुजो यथांग,
लाभस्तथा स सकलस्य समीपमस्य।।"

(पारिजातपहार 7/19)

मानवतावाद का मानवतावाद की ओर झुकाव सा करते हुए राजा या और रजवाड़ों को यों कहकर उपदेश दिया –

"स्वस्यैव लाभम्भिलष्य कृतो भवेन्नो,
शक्त्यादिकव्ययइहावितु बुद्धिम्दभिः।
राष्ट्रं सामाजम्भिरक्षितुमप्रूजसुं कर्तव्य
एव स इति प्रथितोऽधिपन्थाः।।"

(पारिजातपहार 7/20)

अंग्रेज वायदा करके अभिमानवश मुकर रहे है।, अतः वचन भंग करने के कारण पापी हैं। अभिमान रोग की दवाई पलायन है, अतः जब तक ये भग नहीं जाते हम भारतीयों को चैन कहां? भले ही इसका अर्थ जापान को आने का निमन्त्रण ही मान लिया जाये। भारतीय नेताओं के विचार और मन्थन से शासक वैसे ही परेशान हो गये जैसे अपनी सत्ता के आपत्काल में शासक अपनी गद्दी बनाये रखने के लिए सदसद् प्रयत्न किया करते हैं। सब नेता रात में ही पकड़ लिये गये। तीन–'चार दिन में ही फूले हुये उद्यान के माली के समान भारतीय बड़े–बड़े नेता अंग्रेजों के पिट्ठओं के द्वारा पकड़ लिये गये तथा जेल में ठूंस दिये गये।

"अधिरजनि च तस्यां सर्वएते नरेन्द्राः,

निखिल भारत भूमावन्यनेतू प्रकृष्टाः।
अक्षितुरें दिनान्ते सितांगस्य दूतैः,
कुसुमितवनमालामालिनः संगृहीताः।।"

(पारिजातपहार 20/7)

कपड़ों के होते हुए भी नग्न ललनाएं रोज–रोज नदियों में छलांग लगा रहीं थीं –

"मज्जन्ति नार्यः सरितां जलेषु रत्नाकरस्यापि च नित्यमेव।
द्रव्येण हीना वसनैर्विहीनाराशौपटानां च विद्यमाने।।"

(पारिजातपहार 24/8)

पापी का पाप उभर आता है। महात्मा जी ने व्रत आरमी कर दिया जिसे अंग्रेजों ने ओछा हथकण्डा कहा परन्तु महात्मा की तपस्या से पृथ्वी कांप उठी, चर्चिल बीमार हो गये, रूजवेल्ट भी रोगशैय्या पर पड़ गये। अंग्रेजों का सर्वोन्मुखी पतन प्रारम्भ हो गया। पारिजात सौरभम् के सम्बन्ध में स्वयं स्वामी भगवदाचार्य का कथन है –

"एकमप्यक्षरं मात्रा नैकात्रास्त्यप्रमाणिता।
सर्वथा शुद्धरूपोऽयं महाग्रन्थों विभाव्यताम्।।"

(पारिजात सौरभम् 20/171)

उपवास की समाप्ति पर भी अपनी मांग पर अड़े रहे और कहते रहे मुर्दे कभी जीवितों की सहायता नहीं करते। गुलामी की जंजीर में बांधकर रखने वाले कभी नीतिमान नहीं होते।

"शवान् कर्तुं श्वसतां सहायतां क्षमा इति स्यात् कथनाशयोऽयम्।
अनेकदेशान् परतन्त्रतागुणान् निवध्यकोऽपीह न नीतिमान् भवेत्।।"

(पारिजात सौरभम् 1/68)

अतः युद्ध विजय तक स्वतन्त्रता के लिये प्रतीक्षा नहीं की जा सकती ।

सन् 1944 को "बा" देहत्याग। पन्चम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक भाषण और उपदेश, चतुदर्श सर्ग में उपवास, देश की स्वतन्त्रता का आगमन, नेहरू का प्रधानमन्त्री होना, गान्धी पर गोली प्रहार, नेहरू का विलाप, विभिन्न देश–विदेश के नेताओं के सन्देश, देह की उत्तर किया एवं भस्म का सर्वत्र विसर्जन काव्य का प्रतिपाद्य है।

"माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" की राष्ट्रीय भावना, मातृभूमि के प्रति लगाव बीसवीं शताब्दी से पूर्व प्राचीन भारतीयों के हृदय में विद्यमान थीं, परन्तु आज की सी राष्ट्रीय चेतना संस्कृत साहित्य का विषय न बन सकी, भले ही यातायात के साधन का अभव कारण रहा हो। तत्कालीन साहित्य में न तो राजनैतिक जागृति थी और न आर्थिक साधन और नीतियां ही जनसामान्य को प्रभावित कर पाती थीं। ईश्वर के स्थान पर मानव की प्रतिष्ठा भी आज की भावना को उजागर करती है जो प्राचनी काल में इस सीमा तक न थी। उदारता थी परन्तु भगवान् के स्थान पर मानव का स्थान नगण्य था। एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरलतया यथाशीघ्र पहुंचना और दूसरे की रक्षा करना यातायात के अभाव में सम्भव न थ, यहां तक कि संचार व्यवस्था के अभाव में

जनसामान्य को पता भी कम चला पाता था।

आज के महाकाव्यों में कठोर यर्थाथ का धरातल हैं। एकांगी से जीवन बहुमुखी बन गया है। परमात्मा की सत्ता पर विश्वास हेते हुए भी मानव की प्रतिष्ठा बढ़ गयी है। जीवन का लक्ष्य आमोद–प्रमोद न रहकर विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति के लिए उन्मुख हो उठा है। आज की रचनाओं में राष्ट्र भाषा, मनुष्य की कल्याण भावना, राष्ट्रीय से अर्न्तराष्ट्रीय होने की भावना समकालीन भावनाओं के लिए सतत् जागरूकता आल के काव्य के कथ्य हैं। महात्मा गान्धी विषयक भारत पारिजातम्, पारिजातापहारः एवं पारिजात सौरभम् के कथ्य राष्ट्रीय भावनाओं के जीते जागते चित्र हैं। चरि. नायक का चिरत्र कियात्मक नई राष्ट्रीय चेतना का जनक है। काव्य में श्रृंगार भावना ह्रास है। प्रथम कवि सन्यासी हैं, द्वितीय आज के राष्ट्रीय काव्य में श्रृंगार भावना को कोई भी स्थान नहीं है काव्यत्रय में कवि आंखों में दूध आंजकर बैठा है। सर्वत्र पूत–भावना आगे बढ़कर आई है।

भाषा शैली –

युग और भावों में परिवर्तन के साथ साथ भाषा में भी परिवर्तन हुआ है। संस्कृत को कूप–जल कहकर अपमानित करने वाले का मुंह बन्द करने के लिए सन्यासी का काव्यत्रय ही पर्याप्त है। बीसवीं शती की प्रवृत्ति जनजीवन के निकट पहुचंने के लिए काव्यत्रय में स्पष्ट उभरकर आयी है। दीर्घ समासों का मोह छोड़कर अल्प समास या समास न करने के लिए प्रचलन को स्वामी भगवदाचार्य ने भाषा के युग का प्रभाव है। सन्धि नियमों में यत्र तत्र ढील हैं। कठोर शब्दों का त्याग आज के युग का प्रभाव है। भगवदाचार्य नूतन शब्द निर्माण करने में तो चूके नहीं है। यथा – निदर्शनी (टिकट) 5/6 साथ ही साथ देशी–विदेशी शब्दों का संस्कृत में तबियत भरकर भरपूर प्रयोग किया है। यथा – जज – 10/16, गवर्नर, 29/64, खादी 12/35 आदि उल्लेखनीय है।

कवि का दृष्टिकोण न किसी की वाह–वाह प्राप्त करने के लिए और न किसी को अपना अनुगामी बनाने के लिए है अतः पूर्णरूपेण सामान्य है। सत्य इतिहास को काव्यमय भाषा में चित्रित करना कवि का परम ध्येय है। अतः उक्ति वैचित्रय की कवि को चिन्ता नहीं, संन्यासी जीवन से ऐसी आशा होनी भी चाहिए। यर्थाथ में भारत पारिजातम्, पारिजातापहारः, पारिजता सौरभम् को एक समन्वित रूप में कहा जाये तो गान्धी चरित के साथ भारतीय राष्ट्रीय चेतना एवं आन्दोलन का काव्यमय इतिहास चित्रित है। स्वयं कवि के शब्दों में –

"अस्मिन् कथा काऽपि न कल्पिताऽस्ति नात्युक्तिलेशो कथञ्चिदत्र।
सत्योमहात्मा, चरितं च सत्यं, तल्लेखकोयंतिरस्ति सत्यः।।"

(भारत पारिजातम् 5/7)

आज मनुष्यों में स्वदेश गौरव की बुद्धि की इच्छा जाग गयी है। यही भावना प्रतिक्षण महात्म्य बताने के लिए पर्याप्त है। यथा –

"स्वदेश गौरवस्य वृर्द्धेरभिलाषो नृषून्मिषन्।

प्रतिक्षणं यतीशस्य माहात्म्यं बोधयत्यलम्।।"

(भारत पारिजातम् 25/50)

खुली पुस्तक के समान संन्यासी का काव्य सपाट चित्रण होते हुए भी काव्य में काव्यत्व को कोई क्षति नहीं पहुंच पायी है। काव्यत्व की रक्षा करना कवि की प्रमुख अर्चा बन गयी है। सत्य तो यह है कि काव्यत्व इतिहास पर कहीं भी हावी नहीं हो पायी है। परन्तु वस्तुतः सत्योक्ति यह भी है कि इतिहास भी कहीं भी काव्यत्व को नहीं दबा पाया हैं पारिजातापहारः का कथ्य है के प्रतिकथन काव्यत्व पर भी यर्थाथरूप में घटित है।

"स्वातन्त्र्य प्राप्तिमार्गेषु प्रसूनानि भवन्ति नो।

कण्टकैस्तीव्रशूकाग्रैर्व्याप्ता सन्तितेपुनः।।"

(पारिजातापहारः 13/26)

को गान्धी तत्व के आदर्शों के प्रति भावुक बनाना, इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत पारिजात के रसोद्रेग में जन–मन प्रकाम प्रवाहित होता है।

भारत पारिजात में 26 प्रकार के वार्तिक छन्दों का उपयोग हुआ है। कवि के विशेष प्रिय छन्द बसन्ततिलका और अनुष्टुप् हैं। कुसुम विचित्रा, मेघविस्फूर्जित, जलोद्रतगति, मत्तयूसर आदि छन्दों के क्वचित् प्रयोग से काव्य की रूचिरता बढ़ गयी है।

सूक्तियाँ –

काव्यत्रय में सूक्तियों पर सँन्यासित्व की छाया हुई है जिसे कोई भी व्यक्ति प्रथम दृष्टि में ही देखने और पहचानने में देर नहीं करेगा। यथा –

भारतपारिजात – "भवः केन वार्यते।" (2/47)

"यो मानभंगं सहते मनुष्यो वृथा पृथिव्यामिह तस्य सत्ता।" (4/25)

"प्राणांश्त्यजेयुर्न मानमीश्वराः।" (5/7)

"कुतो बुद्धिस्तु जड़तापताड़िते।" (17/32)

"रक्ष्या स्वकीर्ति सकलैरूपायैः।" (18/54)

पारिजातापहार – "गलद्धियः श्रेयो न पश्यन्ति निजं कथन्चनं।" (4/41)

"नास्तिक्षमः कोऽपि विधिं निषेद्धुम्।" (5/9)

"गुरौ कदाप्या कमाणं न युज्यते।" (3/21)

"पथश्च्युतानाम्निवारिता विपत्।" (6/44)

"न क्रीतदासैः विषयौ भविष्यति।" (9/29)

पारिजात सौरभम् – "पवित्रभावेन समर्चितो महाजनः फलंयच्छति देवतापि वा" (17/45)

"महतां मृत्युरपीह सक्रियः।" (17/53)

"चलितान् सुपथो निरीक्ष्यको निजशिष्यान् नहि खिद्यते गुरुः।" (17/81)

जीवन–परिचय –

महामहोपध्याय पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित का जन्म 1878 ई. में हरदोई जिले

के भगवन्त नगर में हुआ था। दीक्षित जी ने हिन्दी और संस्कृत के ग्रन्थों की रचना में ही अपना सारा जीवन लगा दिया। संस्कृत में ही उनकी 24 रचनायें हैं। जिनमें से 6 नाटक हैं इनके कृतित्व को सर्वोच्च मानकर 1936 ई. में केन्द्रीय शासन ने इन्हें महामहोपध्याय की उपाधि से अलंकृत किया। 20वीं शताब्दी के नाटककारों में महामहोपाध्याय पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित का नाम महत्वपूर्ण है।

कृतित्व –

जैन रहस्य, अभिधान राजेन्द्र, निर्णय रहस्य इत्यादि ग्रन्थ हैं। इन्होंने 6 नाटक ग्रन्थों की रचना की है जिनके नाम निम्न हैं – वीर प्रताप, शंकर विजय, पृथ्वराज, भक्त सुदर्शन, गान्धी विजय नाटकम्, भारत विजय नाटकम्। "भारत विजय नाटकम् बीसवीं शताब्दी ई. का सर्वोत्तम नाटक माना जाता है।"

गान्धी विजय नाटकम् –

दीक्षित जी का नाटक गान्धी विजय अनेक दृष्टियों से एक नई परम्परा का प्रवर्तक कहा जा सकता हैं यह केवल दो अंकों में सम्पन्न हुआ हैं। इसमें सन् 1910 ई. तक गान्धी जी के अफ्रीका देशीय चरित और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का मनोग्राही चित्रण किया गया हैं अफ्रीका और भारत में गोरों ने किस प्रकार देशीय जनता के साथ अमानवोचित व्यवहार करते हुए उनका रक्तशोषण किया हैं यह इस नाटक में प्रत्यक्ष दिखलाया गया है । भारत की दुर्दशा का चित्रण भावुकतापूर्ण है। संस्कृत नाटकों में जिन पात्रों के संवाद प्राकृत में होते थे उनकी बातें इस नाटक में हिन्दी में देकर दीक्षित जी ने एक नयी परम्परा स्थापित की है। वास्तव में यह रीति ग्रहणीय भी है। नायक के रूप में गान्धी और तिलक, मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू, सरदार पटेल तथा लार्ड इरविन, माउण्टबेटेन, क्रिप्स आदि विदेशीय पात्रों का चित्रण हुआ है।

भारत विजयम् नाटकम् की कथा–वस्तु –

सात अंकों में लिखित इस नाटक की अंकवार कथावस्तु निम्न है –

प्रथमोंक –

प्रथम अंक में अंग्रेजों का एक व्यापारी के रूप में भारत वर्ष आगमन, व्यापर को जमाने के लिए तत्कालीन सम्राट् से बंगाल में व्यापार के लिए अनुमति प्राप्त करना, विदेशियों द्वारा बंगाल के जुलाहों के अगूंठे कटवा लेने पर भारत माता की पीड़ा एव धर्माचार्यों द्वारा तत्कालीन बंगाल के शासक को राजा के धर्म द्वारा परिचित कराना आदि वर्णित है। राजधर्म का उल्लेख पात्र दानाशाह सम्राट् शिराज को निम्नवत बतलाता है –

"अर्थकमौ न धर्मेण प्रबोधेत विचक्षणः।
धर्मकामो न चार्थेन न कामेनेतरद्द्वयम्।।
ईतावापत्तिकाले च प्रजानां पालनंचरेत्।

व्यसनाद् भयतो रक्षेदेष धर्मो महीपतेः।"

(भा.वि.ना. पद्य 1/18,19, पृ. 22)

द्वितीयांक –

तत्कालीन बंगाल के नवाबों मीर जाफर एवं मीर कासिम द्वारा अंग्रेजों के साथ की गयी सन्धियों का एवं तत्कालीन गर्वनर जनरल वाटसन, क्लाइव एवं हेनिस्टार्टहालवेल के माध्यम से कम्पनी द्वारा राज्य प्रसार हेतु फूट डालों एवं शासन करो की अंग्रेजी नीति का कियान्वयन वर्णित है। यहां एक कुशल शासक के गुणों का वर्णन निम्न श्लोक में दृष्टव्य है –

"गुणी कृतज्ञः साधीयान् धीरोवीरः कुशाग्रेधीः।
धर्मज्ञो नीतिनिपुणः सम्यग् राज्यकरिष्यति।।"

(भा.वि.ना. पद्य 31 पृ. 64)

तृतीयांक –

इस इंक में मीर कासिम का अंग्रेजों से विद्रोह एवं अंग्रेजों के साथ युद्ध में उसकी हार तथा नन्द कुमार द्वारा भारत वर्ष को भारत माता के रूप में प्रस्तुत करके अंग्रेजों के द्वारा कृत कार्यों का वर्णन निम्न श्लोक के माध्यम से दृष्टव्य है –

"वाणिज्यं प्रहृतं हृता कुशलता शौर्यं सुमुन्मूलितं,
विद्वषोऽत्रं जनेष्वपि प्रतिदिशं सम्यक् त्वयैवाहितः।
विश्वासादवलाभिमां वसुमतीं निःस्वां विधायाधुना,
वधन्नेष न लज्जसेऽतिसरलां किं स्यादकार्यं नुते।।"

(भा.वि.ना. पद्य 3/16 पृ. 87)

चतुर्थांक –

इस अंक मं हेस्टिंग द्वारा शासन हेतु अपनायी गई नीतियों एवं भारतवासियों का टैक्स के माध्यम से शोषण एवं पीड़न तथा ईसाई धर्म के प्रचारार्थ किये गये कार्य, भारतीयों की धन लोलुपता ही परतन्त्रता का मूल कारण आदि का वर्णन है।

पंचमोंक –

इस अंक में सन् 1857 में सैनिकों द्वारा किये विद्रोह, एवं विद्रोहका कारण कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग है। जिसे दांतो से तोड़ना पड़ता था। तात्या भील, पाण्डे, बाजपेयी एवं मुसलमान सैनिकों, महारानी लक्ष्मीबाई तथा दिल्ली के अन्तिम शासक बहादुर शाह जफर द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम में कृत कार्यो का वर्णन है।

षष्ठांक –

इस अंक में गवर्नर की सलाह एवं महारानी विक्टोरिया की आज्ञा से ए.ओ.ह्यूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना, दादा भाई नैरोजी को बुलाकर उनके मतानुसार संस्थापित भवन पर भारतीयों की ही ध्वजा फहराने हेतु स्वीकृति प्रदान करना, बाल गंगाधर तिलक, खुदीराम, महात्मा गान्धी, मदन मोहन मालवीय, अब्दुल कलाम, गोविन्द वल्लभ पन्त आदि का स्वतन्त्रता के लिए प्रयास वर्णित है।

सप्तमांक –

अंग्रेजों द्वारा हिन्दू एवं मुसलमानों में फूट डालना एवं भारतमातर के द्वारा अंग्रजों के प्रारम्भ से अधावधि तक किये गये समस्त क्रिया कलापों का उद्घोष (भा.वि.ना. पद्य 7/3,4,5 पृ. 175) सुभाषचन्द्र बोस, जवाहर लाल नेहरू, सम्पूर्णानन्द आदि के प्रयास एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति वर्णित है। नाटक की समाप्ति निम्न भरतवाक्य से हुयी है। जिसमें स्वतन्त्र राष्ट्र की कल्पना है।

"सर्वे सन्तु निरामयाः सुसुखिनः शस्यैः समृद्धा धरा,
भूपालाश्च मितव्यया नयविदो दक्षाः प्रजारक्षणे।
विद्वांसो धनपूजिता नवनवाः सम्पादयन्तः कृति,
र्भूयासुः पतिपुत्रशौर्यसहिता वीरांगना भारते।।"

(भा.वि.ना. पद्य 7/17 पृ. 182)

कथोपकथन सौष्ठव –

नाटकीयता की दृष्टि से गान्धी का चरित्र एवं व्यक्तित्व का निरूपण नाटककार म.म. मथुरा प्रसाद दीक्षित ने सफलतापूर्वक किया है। देश की पराधीनता में गान्धी जी द्वारा देश की तत्कालीन स्थिति का अवलोकन दृष्टव्य है।

महात्मा गान्धी –

अस्वातन्त्र्यात्। यद्यपि प्रकटीक्रियते भानुतापयन्त्रादिक तदपि सहायका भावाद् विनश्यत्येव। पुष्पवृक्षफलादिषु चैतन्यूपबन्धोऽस्माभिरेव साधितः, किं बहुनां। महाभारते वीराणां विनाशकारकं युद्ध कारणं मग्न्यस्त्रादिकमेवेति मत्वा स्वयमस्माभिस्तत्सर्वं विनाशितम्। राज्योपभोगादिकं क्षणिकमकिंचित्करंच परिज्ञाय योगं ब्रह्मज्ञानादिकमात्यन्तिक सुख–साधकस्मदीयैरैव प्रकटीकृतम्। परं सर्वमप्येतद्देश स्वातन्त्र्य एव जातम्।

(भा.वि.ना. षष्ठांक पृ. 161)

महात्मा गान्धी की देशभक्ति "जयतु, जयतु, माता" (भा.वि.ना. षष्ठांक पृ. 165) के उद्घोष से प्रकट होती है। हिंसावृत्ति को रोकने के लिए चौरी–चोरा की घटना का वर्णन एवं जनता की अशिक्षा के प्रति विषाद, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग एवं विदेशी का त्याग, असहयोग आन्दोलन, गान्धी इरविन समझौता आदि का प्रसंग नाटक के माध्यम से अवलोकनीय है। यथा –

महात्मा गान्धी – चौरी–चौरा नगरे हिंसाविष्ट लोकानामैद्वत्यम्, देशस्या सज्जतां चावलोक्य तथा कृतम्।

भारतमाता – चौरी–चौरा गत उपद्रवस्तु अशिक्षिता नामेव। सोऽपि आवेशदा अन्यानि केनापि कारणेन जात इति न त्वयाऽवगतम् । समस्त देशस्तु कदापि न सज्जितो भविष्यति।" (भा.वि.ना. षष्ठांक पृ. 166)

महात्मागान्धी – अथापि असहयोगिना गेहे शतशः वैदेशिकानि वस्त्राणि। देशस्तु असन्नद्वएव।

भारतमाता –

अस्तु इरविन् सन्धौ किमिदं त्वयाकृतम्।

(भा.वि.ना. 6 पृ. 106)

गान्धी इरविन समझौते का कारण बताते हैं –

"इंग्लैण्ड जानामन्यायः स्फुटीभवित सर्वतः।
यदेते लवणादिभ्यो धनान्यपहरन्ति नः।।"

(भा.वि.ना. 6/17 पृ. 167)

तदनन्तर अहिंसा से गान्धी जी की विजय का वर्णन है, जिसमें पन्त के माध्यम से कहलवाया गया है –

"पन्तः (प्रविश्चतमपकर्षीत) गान्धिमहात्मना आज्ञप्तम्,
अहिंसया विजेतव्यम्।"

(भा.वि.ना. अंक 7 पृ. 178)

एवं गान्धी जी द्वारा भारतमाता का आलिंगन (भा.वि.ना. अंक 7 पृ. 179) का वर्णन है। अन्त में महात्मा गान्धी की आज्ञा से जवाहर लाल नेहरू, अब्दुल कलाम आदि द्वारा यूरोपियन का आलिंगन एवं यूरोपियन का भारतमाता को प्रणाम कर जाना तथा समवेत स्वर में महात्मागान्धी सहित सभी का भारतमाता को प्रणाम करके हर्षातिरेक से गायन करना वर्णित है, यथा –

वन्दे मातरमरिकुल भयदां रिपुगण कमल विहिंसन हिमदाम्।
सुजलां सुफलां सुनयसमृद्धां विद्वद् वृन्दनिषेवित सुपदाम्।।
सद्यामभयां बहुखनि निलयां मुक्तामणिगण शोभित हृदयाम्।
वन्दे मातरमरिकुल भयदां रिपुगण कमल विहिंसन हिमदाम्।।
अचलाम मलामतुलित विभवाम् ऋतुकुलयुगपद् विलसित सुपदाम्।
सुसुतां सुखदां सबलां सुरसां बुधगणवोधित निगमसु निनदास्।।
वन्दे मातरमरिकुल भयदां रिपुगण कमल विहिंसन हिमदाम्।
सुनयां सुनतां सुविमलधिषणां निजबल सकल विनशित विपदाम्।।
सुजनां सुगताम् सुकर विजयां सुरनर किन्नर मुनिवर वरदाम्।
वन्दे मातर मरिकुल भयदां रिपुगण कमल विहिंसन हिमदाम्।।

(भा.वि.ना. अंक 7 पृ. 181)

कवि मधुकर शास्त्रीकृत गान्धी गाथा –

कवि सुधाकर शास्त्री द्वारा विरचित गान्धिगाथा गान्धी जी के व्यक्तित्व एवं चरित पर आधृत एक काव्य है। कवि ने गान्धी के चरित का उल्लेख दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया है। प्रथम भाग – जीवनदर्शनम् एवं उत्तर भाग – गान्धिवाणी है। काव्य के उद्देश्य को उद्भाषित करते हुए आचार्य प्रवर मधुकर शास्त्री का कथन अवलोक्य है –

"एतादृशस्य युग पुरुषस्य जीवन चरितमति संक्षिप्तरीत्याऽमर। – भारतीय मायमेन् समुपवर्णमितुका मोऽहं – तितीर्षुर्दुस्तरं मोहदुडुपेनास्मि सागर, मिति महाकवि – कथन मेवाऽन्तरात्मनि नितरामनुभवामि।" (गा.गा., किंन्चित स्वकीयम्, प्रथम संस्करण, 1973, ई. पृ.)

गान्धिगाथा का कथानक –

पूर्व भाग जीवन दर्शनम् –

पूर्व भाग जीवन दर्शनम् में गान्धी जी के जन्म स्थान समय, माता पिता, उनकी शिक्षा, अपने अपराध की स्वीकारोक्ति, माता–पिता की सेवा एवं उनकी आज्ञा का पालन करना, सुन्दर लेख रूचि तथा कस्तूरबा के साथ विवाह का वर्णन है। यथा –

गोकुल जी मानक जी – नाम्नः सत्पुरुषस्य सुकन्या,
कस्तूरी देवी – ति सुनाम्नी सुकृति–मती–मूर्धन्या।
तथा गान्धिनोऽभवद विवाहो निज–कुल रीत्युनसारी,
त्रयोदशाऽब्दाऽऽमके वयस्युभयेरपि मंगलकारी।

(गा.गा.,सुन्दर लेख रूचि, श्लोक सं., 31, पृ. 9)

उनके द्वारा मांस भक्षण करने एवं सिगरेट पीना छोड़ने का वर्णन करना उल्लेखनीय है। यथा –

"सुजन–कुजन–संगात् संसारे को न नाम संयुक्तः ?
बालो गान्धिः सतर्कोऽपि किंचित् कुसंग–सम्पृक्तः।
कोऽपि सखा न्यगदद् यद–गान्धिन्! मांस भक्षय् पुष्टयैय,
विवशः सन् स बाधितो मांसमरवादत् तदीय तुष्टयै।।"

(गा.गा.,सुन्दर लेख रूचि, श्लोक सं., 37, पृ. 10)

एवं

"इत्थं द्वित्रिवारमाचरितं मांस–भक्षणं त्यक्तं,
पितृव्याऽनुकरणात् सिगरेट–व्यसने मनः प्रसक्तम्।
परमुत्पन्ना सात्विक–वृत्तिः सिगरेटोऽपि त्यक्तः,
तदीय दोषो नष्टो जातो, गुण निकरस्तु व्यक्तः।।"

(गा.गा.,सुन्दर लेख रूचि, श्लोक सं., 37, पृ. 10)

गान्धी के धर्म सम्बन्धी विचारों का प्राकट्य निम्नांकित श्लोकों में व्यक्त किये गये हैं–

"इत्थं श्री गान्धी यद्यपि, मूलेन तु वैष्णव आसीत्,
सर्व–धर्म–सम्मान भावना तथापि हृदयेऽयासीत्।
सत्यरति, पर–सेवा–भावं प्रभु–भक्ति चान्चौर्य,
सर्वे धर्मा वदन्त्यं कपटं जीवदयान्चाऽकौर्यम्।।"

(गा.गा.,गान्धिनों धर्म सम्बन्धिनो विचारा, श्लोक सं., 43, पृ. 11)

अर्थात् सर्व धर्म सम्मान की भावना, सतय, परसेवा भाव, प्रभु भक्ति, जीवदया आदि गान्धी जी के धर्म सम्बन्धी विचार परिलक्षित है। उनकी राम नाक के प्रतिनिष्ठा किस प्रकार उत्पन्न हुई ?

"बाल–गान्धिनो भूत–प्रेत भयं लगति स्माऽधिक्यात्,
अवदद् दासी–नश्यति भीती रामनाम माहात्म्यात्।
रामनाम निरतस्तद्दिनतोऽभवत्स समधिक–मानात्,
राम–नाम–महिमानं गान्धी बालक एवाऽजानात्।।"

(गा.गा.,गान्धिनों धर्म सम्बन्धिनो विचार, श्लोक सं., 45)

मां के सम्मुख की गयी प्रतिज्ञा का निर्वाह किया एवं बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की यथा –

"पर प्रतिज्ञात्रयं गान्धिना मातृसम्मुखखेविहितं,
त्यक्ष्ये मदिरामांसनारीम्–न्वित सुदाढर्यतोऽभिहितम्।
अतुलितभोग–विलास–मयेऽपिस लन्दन–नगरे निवसन्,
अभूत् प्रतिज्ञा–च्युतः कदापिन–मातृ निदेश निबह्न।।"

(गा.गा.,गान्धिनों धर्म सम्बन्धिनो विचारा, श्लोक सं., 48)

एवं

एकादश–दिवसेऽसौ "इंग्लेण्ड–हाईकोर्ट–मुपेतः,"
सार्ध–शिलिंग द्वयदानात् सन्जातोऽकित–नाम समेतः।
पर तरुण बैरिस्टरं–गान्धी द्वादश दिवसेऽकस्मात्,
स्व मातृभूमि प्रति प्रसक्तोऽचलद् विदेशात् तस्मात्।।

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 50)

गीता का अध्ययन एवं उसका प्रभाव, विदेश में भी धर्म के आचरण का परिपालन, स्वदेश आगमन एवं माता की मृत्यु के शोकाकुल होना, वकालत का कार्य प्रारम्भ करना, वकीन की व्याख्या दृष्ट्व्य है –

"समधिक–मिथ्या भाषणनिपुणा ये परवञ्चन चतुराः,
अन्तः करणैः कुलिश–कठोरः किन्तु वचनातो मधुराः।
तेषामेव सफलता–लाभौ वाक्कीलत्वे भवति,
एषु किमपि वैशिष्ट्यं गान्धिनिनोपलब्ध–मह! भवति।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 57)

दक्षिण अफ्रीका गमन एवं डरबन न्यायालय में वकालत करना तथा समाचार पत्रों में अंग्रेजों के अत्याचारों को प्रकाशित करवाना दृष्टव्य है –

"समाचार पत्रेषु व्यलिखत् स इमं दुर्व्यवहारं,
भृशं व्यनिन्दच्छी गान्धी गौरांग–स्वैच्छाचारम्।
गौरांणामीदृश–दुर्वृत्तेः प्रथमौ विरोधकारी,
विश्वविश्रुतौ जातौ गान्धी त्वरितं विबोधकारी।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 66)

प्रिटोरिया जाते हुए गोरों के द्वारा उनके प्रति दुर्व्यवहार यथा –

"प्रथम श्रेणी रयल यानतौ गान्धी–प्रिटोरियां प्रति,
यदा प्रस्थितस्तदा वीक्ष्यतं कश्चिदांक आवदति।
कृष्णकाय! झटिति त्वं गौरांगगोचित–यानादपसर,
प्रथम श्रेणो कथ स्थितस्त्वं भारतीयरे! निस्सर।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 67)

नेटाल में भारतीयों के मताधिकार समाप्ति पर विरोध एवं उस कानून का निरस्त्रीकरण,(गुरूमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 88, 89, 90, 91 पृ. 40) पुनः स्वदेश वापस आना, दक्षिण अफ्रीका पुनः जाना एवं श्री गान्धी को भीषण ताड़ना, यथा –

"अहो! तदैव तु गौरांगाङ्गाणां प्रबल–समूहस्त्वरितं,
निपत्य हन्तुं प्रारभताऽऽक्रमणां भीषणमाचरितम्।।
तल–प्रहारैः पादाऽऽघातैर्दण्डैर्मुष्टिविरपिच,
भृशं ताडितः श्री गान्धी मूर्च्छितो निपतितो भुवि चः।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 88)

आजीवन ब्रह्मचर्य के पालन की प्रतिज्ञा, दक्षिण अफ्रीका से पुनः भारत आना, स्वयं सेवक एवं लिपिक के रूप में श्री गान्धी, गोखले जी से प्रागढ़ स्नेह की प्राप्ति एवं तृतीय श्रेणी में यात्रा, श्रीमती एनीबेसेन्ट से मुलाकात, पुनः दक्षिण अफ्रीका जाना एवं वहां प्लेग से पीड़ित श्रमिकों की सेवा करना। "इण्डियन ओपिनियन" की स्थापना करके हिन्दी, सौराष्ट्र, तमिल तथा अंग्रेजी में प्रकाशित करवाना आरोग्य साधन नामक पुस्तक का लिखना, सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ करना एवं न्यायाधिकारी द्वारा ट्रान्सवाल छोड़ने का आदेश करना, एवं पालन न करने पर जेल जाना, डरबन जाना, रस्किन की पुस्तक "अण्टु द लास्ट" से प्रभावित होकर "सर्वोदय" नाम से उसका अनुवाद करना, फिनिक्स नामक स्थान पर आश्रम की स्थापना करना, जिसका स्वरूप वर्णन अवलोकनीय है। यथा –

"भारतीय–कल्पनयाऽऽकलितं नगराऽऽम्बरं–रहितं,
स्वान्त शान्तिदं निश्छल–निर्मल–सद्ग्रामान्चल ललितम्।
मुनि–महर्षि सम–परमं–सरलं–पावनं जीवनं परिलसितं,
समतुष्यत गान्धी संस्थाप्याऽऽश्रम सत्त्वं सुखग्रहितम्।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 118)

"यत्र चाऽऽम्रतरु–राजि–विराजित–रूचिर–मन्जरी–कुन्जे,
नव निर्मल–निर्झर–जल–विलुलित–हरित–वल्लीर–पुन्जे।
पल्लव–फल–कल– विलसितविपिने शाम्यतिचिन्तालीला,
नित्यं नवीन चेतना स्फुरणान्मतिर्भवति कृतिशीला।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 119)

जोहान्सबर्ग में सी.एफ. एण्डयूज महाशय से मिलना, एशियाटिक नियम का विरोध, 'सत्याग्रह' जिसमें समग्र 'गान्धिदर्शन' निहित है, संघर्ष का नामकरण करना,

प्रतिरोध मण्डल का इंग्लेण्ड जाना, भारतीय राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस के संस्थापक दादा भाई नौरोजी का वर्णन, पुनः भारत आना, पहली सफलता लार्ड साहब से वार्ता में प्राप्त होना, अहमदाबाद के निक कोचरव स्थान पर सत्याग्रह आश्रम की स्थापना, चम्पारन में सत्याग्रह एवं लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू एवं मोहम्मद अली जिन्ना से साक्षात्कार एवं पाटलिपुत्र में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी से मिलना, अहमदाबाद के श्रमिकों के बीच में गांधी जी एवं खेड़ा का सत्याग्रह एवं विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की सहायता, रोलेट एक्ट को जघन्य नियम बताना, पंजाब में जलियां वाला हत्याकाण्ड, असहयोग आन्दोलन, चौर–चारा काण्ड, गांधी जी को 6 वर्ष का कारावास, कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित होना, अखिल भारतीय चक संघ की स्थापना, देशबन्धु चितरंजन दास का स्वर्गागमन, दयाव्रत धारण करना, 1930 ई. का सत्याग्रह आन्दोलन, गोलमेज कान्फ्रेस नामक सभा में सम्मिलित होना, यरवदा कारावास तथा कारावास में द्वितीय सभायुद्ध, भारत छोड़ो प्रस्ताव, कारावास में ही महादेव भाई एवं कस्तूरबा क निधन, साम्प्रदायिक विदेश कलह एवं उनके द्वारा कश्त एकता प्रयास, स्वतंत्रता का सूर्योदय 15 अगस्त 1947 ई. में अंग्रेजों द्वारा दो राष्ट्र "हिन्दुस्थान" एवं पाकिस्तान का समर्पण, दिल्ली नगर में समागम, महात्मा का बलिदान एवं शिव की कामना सहित, काव्य के पूर्व भाग जीवन दर्शनम् की समाप्ति की गई है । यथा –

"षड्विंशत्यधिके भव्ये,
सहस्त्र द्वयं सम्मिते।
वैकमेऽब्दे होलिकाऽह्नि,
काव्यमेतत् समाप्यत्।।"

(गान्धिगाथा, पद्य सं. 247, पृ. 70)

गान्धी गाथा उत्तर भाग गान्धिवाणी –

गान्धिवाणी शीर्षन्तर्गत गान्धी के व्यक्तित्व में समाहित अनुशासन की उपयोगिता निम्न दोहे में वर्णित है –

"अस्ति संघटन–मूलमप्यनुशासन–मात्रन्च,
अनुशासनमय जीवनम् दूढ़ प्रगति–पात्रन्च।"

युवकों को ईश्वर पर विश्वास करना निम्न दोहे में वर्णित है –

"स एव युवको वस्तुतो यो न कुतोऽपि विभेति,
इह संसारे क्वाप्ययेश्वर–मात्रातु विनेति।"

असहयोग के मूल में अहिंसा को स्थित बतलाया गया है। अस्पृश्यता को हिन्दुओं के लिए कलंक, वर्णित किया है, अहिंसा के सन्दर्भ में निम्न दोहा दृष्टव्य है –

"नाऽहिंसा निर्बल–सभय–जन–धर्मोऽस्ति कदाऽपि,
शक्ति–युक्त–शूरस्य सा भूषणमस्ति सदाऽपि।"

तत्पश्चात् ईश्वर एवं उपकार की उपयोगिता का वर्णन है –

"उपकारऽनुष्ठानतो मानसमुन्नतिमेति,
आत्माऽनिर्वचानीय–सुख–गरिमाणन्च समेति।"

तत्पश्चात् कृषि एवं स्वदेशी खादी पहनने हेतु उपयोगी होना वर्णित है–

"राष्ट्रिय जीवन हेतोः स्वराज्यमिव खादी तु श्वास–समाऽस्ति,
आवश्यकी, स्वदेश्य वस्त्रन्च भाषा च धार्येव।"

गीता एवं रामचरित मानस को हिन्दू धर्म के अतुल्य ग्रन्थ बतलाया है –

"गीताः गोस्वामि–तुलसी–दास–रामायणं तथा,
इत्येद् हिन्दुधर्मस्याऽतुल्यं ग्रन्थद्वयं भुवि।"

गौहत्या को आत्मघाती बताया है –

"गो–तुल्यस्य निरीहस्य ह्युपयोगि–पशोस्तथा,
हत्या, राष्ट्र–कृते नूनमात्म–घात–समा व्यथा।"

गाय की सेवा करना सबसे अच्छा लक्षण बताया गया है। ग्राम वर्णन एवं चरखा का महत्व अवलोकनीय है –

"ग्रामोद्योग ग्रह गणे चक सूर्य इवाऽस्ति,
यस्मिन्नस्तमितेऽपर–ग्रह–चक कमणं नाऽस्ति।"

शिक्षा का उद्देश्य चरित निर्माण होना, चिन्ता को दानव के रूप के प्रकट करना, देशभक्ति प्रधानगुण एवं दैनन्दिनी का महत्व, दीनता, धर्म, स्थान, नम्रता, नियमितता एवं नियन्त्रण की उपयोगिता वर्णित है।

"निखिलनियन्त्रणमूलमिह, हयात्मनियन्त्रणमेव,
येन विना नियमस्थितिः केवलमस्ति वृथैव।"

तत्पश्चात् पंचायत प्रार्थना का महत्व प्रेम एवं ब्रह्मचर्य परिभाषित है ।

"मनसा वचसा कर्मणा चेन्द्रिय–संयम एव,
दृढ़ं ब्रह्मचर्यं मत ह्यमरत्वन्च तदेव।"

तत्पश्चात् सत्य एवं सीमित भाषण की उपयोगिता तथा मद्य निषेध वर्णित है –

"किंचित्कालं भारतेश्वरता यदि में स्यात्तु,
निखिल–मद्य–ग्रह–रोधमहं तर्हि कुर्यान्नु।"

महाभारत एवं राम नाम की महत्ता का वर्णन दृष्टव्य है –

"बिना राम–नामाऽस्ति में किमपि बल भुवि नैव,
आधारश्च तदेव में सर्वत्राऽपि सर्वत्राऽपि सदैव।"

रामराज्य की कल्पना, विश्वास, शाकाहारी भोजन की उपयोगिता एवं शास्त्र अध्ययन की उपयोगिता वर्णित है।

"प्रत्येक छात्रः पठेत् सम्यक् निज–शास्त्राणि,
शिक्षोद्देश्यम् नो भवेद् भौतिक–गति मात्राणि।"

समाजवाद का दर्णन भी अवलोकनीय है।

"समाजवादो भारत–प्राचीनों निधिरस्ति,

स–साम्यवादीऽस्माकमय शुचि–जीवन–विधि रास्ति।"

तत्पश्चात् संगठन सत्य, सत्याग्रह एवं आज के परिप्रेक्ष्य में परिवार नियोजन को बल प्रदान करने वाला निम्न श्लोक अवलोकनीय है –

"निर्विवाद नु सन्तान–नियन्त्रणमिहाऽसत्यहो,
उषायेषु धर घोरो मतभेदः प्रवर्त्तते।
सन्तति–नियमन–हेतो स्वाभाविकोपापस्तु ब्रम्हचर्यम्,
आत्मनियन्त्रणऽमपि वःश्रेष्ठ यन्नैतिक वाऽपि च।।"

तदुपरान्त संस्कृत का महत्व, सर्वोदय एवं स्त्री, स्वदेश अनुराग, स्वराज्य तथा हिन्दी का महत्व महत्व एवं हिन्दुत्व तथा ज्ञान वर्णित है। हिन्दी का महत्व निम्न में द्रष्ट्व्य है –

"राष्ट्र–भाषा भारतस्य हिन्दीभाषैव केवल,
तत्प्रचारः प्रसारश्च सहजस्सरलस्तथा।"

ज्ञान की परिभाषा अच्छे और बुरे के विवेक से है।

साराऽसार–विवेकोऽस्ति ज्ञानस्याऽर्थस्तु वस्तुतः,
साक्षरोऽप्यविवेकी तु पठितो मूर्ख एव वे।

इस प्रकार गान्धी वचन को विश्व शान्ति एवं सुखदायी वर्णित करते हुए, काव्य का समापन हो गया है।

गान्धिवच मुक्तावली, जनजनगले चकास्तु,
मधुकर–शास्त्रि–निगुम्फिता, विश्वशान्ति–सुखदास्तु।

रस निष्पत्ति –

गान्धि चरितात्मक काव्य होने से प्रायः शान्त रस का ही परिपाक हुआ है।

छन्दोयोजना –

प्रायः सम्पूर्ण काव्य अनुष्टुप छन्द में ही वर्णित हैं। गीति (ललित पद – सार) निम्न में उल्लेखनीय है।

जयति, विजयते भारत–माता सकल–लोक–कल्यानी,
जगद्–वन्द्य–यत्नय–गान्धि गाथा गायति युगवाणी।
येन गान्धिना स्वदेशहेतुर्विहितोऽदृभुत उत्सर्गः,
परातन्त्र्य–नरक–स्थल आनीतः स्वातन्त्र्य स्वर्गः।

(गा.गा. 'जीवनदर्शन' पद्य 1, पृ. 1)

गान्धी गाथा के उत्तर भाग गान्धी वाणी में हिन्दी के छन्दों का संस्कृत में प्रयोग कवि द्वारा किया गया है। जैसे – दोहा (गा.गा. 'गान्धी वाणी' पद्य 1, 2, 3, 4, 5, 6, 69, 53, 99) निम्न में दृष्टव्य है।

असीम–शक्तिर्विद्यते सदा प्रार्थनायान्तु,

विना प्रार्थना किमपि नो कुर्वे कार्यमहन्तु।

(गा.वा. 'प्रार्थना' पद्य 40)

आर्य छन्द का प्रयोग भी द्रष्ट्व्य है –

सन्तति–नियमन–हेतो स्वाभाविकोपापस्तु ब्रह्मचर्यम्,
आत्मनियन्त्रणमपि वः श्रेष्ठ यन्नैतिक वाऽपि च।

(गा.वा. पद्य 79, पृ. 84)

अलंकार विधान –

कवि ने अनुप्रास, रूपक, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किंचित मात्र स्थलों पर किया है। यथा – "गौराऽन्याय–निचय–नाशाय" (गा.गाथा 'जीवनदर्शन' पद्य 2) में अनुप्रास दृष्टव्य है। "भारत जनता हृदयमन्दिरे" (गा.गाथा 'जीवनदर्शन' पद्य 7) में रूपक अलंकार है।

पुत्रे माता–पित्रोर्गुण–षणकमण सन्जात,
मणि–कान्चन–योगे सुगन्ध–सम्मिश्रणमिव प्रजातम्।

(गा.गाथा 'जीवनदर्शन' पद्य 15)

पण्डित रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी कृत – 'गान्धिगरिमकाव्यम्'

काव्य परिचय –

गान्धी–गरिम–काव्यम् पण्डित रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी की मौलिक रचना हैं लेखक द्वारा उल्लिखित उपरोक्त शब्द मौलिक रचना काव्य के सन्दर्भ में अतिश्योक्ति नहीं है। (गान्धी गरिम काव्यम्, अस्मिन्, पृ. 1) काव्य की रचना सम्पूर्ण श्रेय लेखकानुसार केन्द्रीय विद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. चतुर्वेदी को प्रदान किया गया है, जो अनवरत सरस्वती साधना में रत रहकर अपने आदर्शो के द्वारा अन्य–अन्यान्य सम्पर्क के व्यक्तियों को प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं एवं लेखक के जीवन के अनेक परिवर्तनों के प्रेरणा स्रोत प्रधानाचार्य डा. चतुर्वेदी ही रहे हैं। गान्धी गरिम काव्यम् की रचना में लेखक के अन्यतम प्रेरणा स्रोत श्री माथुर चतुर्वेद विद्यालय, मथुरा के प्रधानाचार्य संस्कृत साहित्य के सुयोग्य विद्वान् पाठक श्री सबल किशोर जी चतुर्वेदी भी रहे हैं। जिनके द्वारा समयानुसार रचना को सुन–सुनकर लेखक को उपयुक्त परामर्श एवं मार्गदर्शन किया गया है। रचनाकार ने महाकवि कालिदास की निम्नांकित पक्तियों को अपना आदर्श माना है। यथा –

"मन्दः कवि यशः प्रार्थी ममिष्याम्युप हास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः।"

अन्त में, पुस्तक की उपादेयता से मान्य संस्कृतज्ञ जनता एवं संस्कृत के अध्येता बालकों द्वारा गान्धी जीवन दर्शन से पथ प्रदर्शित होने पर अपने को कृतार्थ एवं अपने श्रम को साफल्य वर्णित किया है।

गान्धी जी के जन्म शताब्दी 1969 के पावन पर्व पर रचित इस स्वल्पकाय रचना को अपने परमप्रेमास्पद स्वर्गीय लघुभ्राता हरिहर चतुर्वेदी को आर्द्र हृदय से समर्पित की है। जोकि अपनी 14–15 वर्ष की स्वल्प अवस्था में ही नगर के एक श्रेष्ठ शतरंज खिलाड़ी थे एवं नगर में होने वाली अन्तयाक्षरी प्रतियोगिताओं में अपने प्रिय कण्ठाभरण की भांति कण्ठ में धारण की गयी प्राचीन कवियों की श्रेष्ठतम् कविताओं के पाठ से अपने विद्यालय की टीम को निरन्तर जय लाभ कराया करते थे। एवं अब जिनकी स्मृति मात्र शेष है।

गान्धी–गरिम काव्यम् की कथा वस्तु –

श्री गान्धी गरिमकाव्यम् में राष्ट्रीयता श्री मोहन दास कमरचन्द गान्धी का जीवन वृत्त रचयिता पण्डित रघुनाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी ने 62 शीर्षकों के अन्तर्गत किया है। पुरातन काव्य लेखकों के परम्परानुसार काव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया है। विभिन्न शीर्षकों का विवरण निम्नवत् है ।

मंगलाचरणम् –

इस शीर्षकान्तर्गत एक श्लोक है। कवि ने मंगलाचरण में इस काय की रचना हेतु प्रेरित करने वाली अन्तस्थ शक्ति की वन्दना की है।

काव्यारभ –

इस शीर्षकान्तर्गत 3 श्लोक हैं। यहां उन्होंने गीता की उक्ति 'यदा यदा हि धर्मस्य .....' (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 2) एवं 'यद् यद् विभूतिमत्सत्व ......' (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 4) को वर्णित कर उनकी यथार्थता को प्रमाणित किया है एवं रामकृष्ण तथा बुद्ध के समान महात्मा गान्धी जी को भी भारत भूमि के भार को दूर करने एवं सामान्य जनों के कष्टों का हरण करने हेतु ईश्वरश के रूप में अवतरित होना वर्णित किया है।

जन्मनः कारणम् –

इस शीर्षक के अन्तर्गत 3 श्लोक वर्णित है। प्रारम्भ में अंग्रेजों का भारतवर्ष में व्यापारिक उद्देश्य के आगमन एवं शनैः शनैः अनुकूल परिस्थिति देखकर देश का शासक बन जाना तत्पश्चात् शासनारुढ़ होकर उचित अनुचित रीति से शासन विस्तृत करना तथा उनके अनुचित व्यवहार से नित्य पीड़ित भारतीय प्रजा का दुखों का अनुभव करना वर्णित है। तदुपरान्त अंग्रेज शासकों को दृष्टतापूर्ण शासन से दुखित प्रजा द्वारा भगवान से अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना करना एवं कष्ट निवारक तथा अभीष्ट फलदाता भगवान का स्मरण एवं ध्यान करते हुए उनकी शरण में जाना वर्णित है। यथा –

"त्रायध्वमिति जल्पन्त्यश्चिन्तयन्त्यश्च रक्षकम्।

हरि कष्ट हरं स्वेष्टप्रदं शरणमन्वयात्।।"

जन्म –

'यदा यदाहि धर्मस्य.....' गीता में श्रीकृष्ण जी द्वारा कथित श्लोक के अनुसार भारतीय प्रजाजनों के दुखों को दूर करने हेतु भगवान हरि को महात्मा गान्धी जी के रूप में अवतार लेना बताया गया है। (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 8) तत्पश्चात् उनके माता–पिता कुल आदि के बारे में वर्णन है। (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 9, 10, 11, 12) श्री महात्मा गान्धी के जीवन आदर्शों का प्रेरणा स्रोत सत्य हरिशचन्द्र नाटक वर्णित है एवं श्रवण मातृ पितृ–भक्ति नाटक को देखकर सेवा कार्य की ओर उन्मुख हुए। (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 17, 18)

अध्ययनारम्भ –

इस शीर्षकान्तर्गत वर्णित श्लोक संख्या 19 में उनके पिता द्वारा उन्हें अध्ययन योग्य समझ कर विद्यालय में प्रवेश कराना वर्णित है।

विवाह –

इस शीर्षकान्तर्गत वर्णित श्लोक संख्य 20, 21 में कमशः उनके तेरहवें वर्ष में विवाह होना एवं अध्यापक के इंगित करने पर भी अशुद्ध को शुद्ध न करना, वर्णित है।

उच्चाध्ययनम् –

कानूनी शिक्षा प्राप्त करने हेतु विदेश जाना, माता द्वारा परस्त्री सेवन तथा मांस मदिरा हेतु वर्जित करना एवं गान्धी जी द्वारा स्वीकृति देना वर्णित है।

(श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 22, 23, 24)

विदेशात् परावृत्ति –

सन् 1891 ई. में वकालत की शिक्षा पूरी करके विदेश से भारत लौटना वर्णित है।

वाक्कील कार्यम् –

जीविकोपार्जन हेतु वकालत का कार्य हरिशचन्द्र के सत्य व्यवहार एवं श्रवण कुमार की मातृ पितृ भक्ति को आदर्श मानकर प्रारम्भ किया। (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 26, 27)

वाक्कील कार्यादि विरक्ति –

वाकलत कार्य के असत्य व्यवहार से पीड़ित होकर अहिंसा के उपासक बनकर देश सेवा में संलग्न होकर महापुरूष के पद पर आसीन होना वर्णित है। (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 28, 29, 30)

दक्षिण अफीका यात्रा –

अफ्रीकावासी अब्दुल्ला नामक भारतीय व्यवसायी के द्वारा बुलाने पर वे ट्रान्सवाल प्रदेश के प्रिटोरिया नामक राजधानी गये। (श्रीगान्धिगरिमकाव्यम् – श्लोक 31, 32)

रेलगाड़ी में प्रथम श्रेणी में यात्रा करना एवं एक अंग्रेज यात्री द्वारा उन्हें प्रथम श्रेणी के डिब्बे में देखकर घृणा से परिपूर्ण कहना कि इसके लिए तो तृतीय श्रेणी का डिब्बा उपयुक्त है, यह काले रंग का आदमी प्रथम श्रेणी में कैसे यात्रा कर रहा है, तत्पश्चात् अंग्रेज यात्री द्वारा गान्धी से प्रथम श्रेणी के डिब्बे से तृतीय श्रेणी के डिब्बे में जाने हेतु कहना एवं जाने से मना करने पर स्टेशन मास्टर के पास जाना तथा उसे अपने साथ लाना एवं गान्धी जी द्वारा विनय पूर्वक स्टेशन मास्टर से निवेदन करना कि उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट है। यथा –

"गान्धी विनम्रभावेन स्टेशनस्याधिकारिणम्।
प्रोवाच चिटिका श्रेण्या ह्येषास्ति प्रथमस्यमे।।42।।"

उपयुक्त टिकट होने पर भी स्टेशन मास्टर द्वारा प्रथम श्रेणी में बैठकर यात्रा करने से मना करना एवं न मानने पर स्टेशन मास्टर द्वारा चपरासी से कहकर उनका सामान फिंकवा देना आदि वर्णित है।

चिन्तनम् –

शीर्षान्तर्गत उनका मनुष्यों के प्रति चिन्तन दृष्ट्व्य है। यथा –

"सर्वे ईश्वर पुत्रा ये मानवास्तेन निर्मिताः।
समानतां गतास्तेषुभेदो नास्त्यत्रभूतले।।47।।"

तदपि रंग, जाति विभेद के कारण घृणा क्यों ?

विचार परिवर्तनम् –

शीर्षान्तर्गत उनमें विद्रोह की भावना का उदय होना तदुपरान्त अन्याय के सम्मुख न झुकने का निश्चय करना, एवं अफ्रीका में भारतीयों की दशा तथा कष्ट सहन करते हुए वहां के भारतीय श्रमिकों की मुक्ति हेत निरन्तर संघर्ष करना, अफ्रीका से वापस आना तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा उन्हें महात्मा की उपाधि से अलंकृत करना वर्णित है। यथा –

"वाणचन्द्र ग्रहै काब्द (1915) आवृत्तेभारतोयदा,
रवीन्द्र विश्व कविना 'महात्मा' इति मानितः।।63।।"

कांग्रेसाधिवेशनम् शीर्षकान्तर्गत कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधि ावेशन में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक एवं श्री गोपाल कृष्ण गोखले का समिलित होना श्रेष्ठ वक्ता महाकान्य मदन मोहन मालवीय, मोती लाल नेहरू, लाल लाजपत राय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि आलस्य एवं अकर्मण्यता की गहरी नींद में सोते हुए भारतवासियों को जगाने के लिये सम्मिलित हुए एवं जिनका बंगाल प्रदेश के निवासी डॉ. प्रफुल चन्द्र राय, श्री भूपेन्द्र नाथ बसु एवं घोषाल बाबू प्रभृति देश के नेताओं ने अनेक दिनों तक आदर तथा सत्कार किया। गान्धी जी की सेवा दीक्षा जन्म से होना निम्न श्लोक में वर्णित है। यथा –

समायातो महात्माऽपि गान्ध्यस्मिन्नधिवेशने,
जनतासेवने योऽभूत जन्मना दीक्षितः स्वतः।।69।।

काग्रेंसाधिवेशने गान्धिनः कार्यम् शीर्षन्तर्गत गान्धीजी द्वारा देशवासियों के दुख से दुखी होना एवं उनकी पीड़ा को दूर करने का उपाय सोचना वर्णित है।

अत्रापि देशे गौरांगेः पीडितान् देशवासिनः,
आलक्ष्य पीड़ितः सोऽभूदुपायं चाप्यचिन्तयत्।।72।।

देशभ्रमणम् शीषान्तर्गत गान्धी जी का ग्रामीण जनता द्वारा स्वागत किया जाना वर्णित है।

अनन्तर भ्रमन् देशे प्रतिग्राम यदद गतः,
ग्रामीणजनतयात्यर्थ स्वागतेनाभिनन्दितः।।73।।

भारतीय ग्राम्य दशा शीर्षक के अन्तर्गत ग्रामों के निवासियों को रोगी, अशिक्षित भूख से पीड़ित तथा अधिक दुर्बल शरीर वाला देखकर गान्धी जी को महान् दुख हुआ। पुनः अस्माकम् पूर्वकालिक दशा शीर्षान्तर्गत भारतीयों की पूर्व दशा का वर्णन अवलोकनीय है। यथा –

स्वकर्तव्यरताः नित्यं पर दुखनिवारकाः,
हयासन् ते भारतीता हि कुतोऽन्धतमसान्विताः।।77।।

तदनन्तर भारतीयों के दुख का मूल कारण पराधीनता उनके द्वारा निश्चित किया जाना वर्णित है।

मार्गयन दुखमूलं हि देशीयानां निरन्तरम्,
ह्यस्वातन्त्रयं दुख मूल मिति निश्चित वानयम्।।78।।

तदुपरान्त स्वतन्त्रता प्राप्ति का उपाय गान्धी जी द्वारा देशवासियों को चर्खा चलाना, सूत कातना एवं अशिक्षा को दूर करना बतलाया गया है।

यूयं चालयत चकं सूतं रचयत तथा
शिक्षा विहीनतां त्यक्त्वा शिक्षिताः स्यातमानवाः।

तदुपरान्त उनकी वकतृता से प्रभावित देशवासियों द्वारा उनके अनुपालनार्थ तैयार हो जाना एवं समाज के समस्त वर्गो द्वारा असहयोग में सम्मिलित होना एवं साभ्रमति नदीके तट पर साबरमती आश्रम स्थापित करना वर्णित है।

गान्धी स्व भारत देश भ्रान्त्वावृतो यदा गृहे,
आश्रम स्थापयामास साभ्रमत्यास्तटे शुभे।।88।।

चम्पारन के गोरों द्वारा कृषि मजदूरों का उत्पीड़न एवं गान्धी जी की चम्पारन यात्रा करवृद्धि पर गान्धी जी के प्रतिकार से कमी एवं नील के किसानों द्वारा टैक्स कम होने की बात सुनकर गान्धी जी से प्रभावित होना वर्णित है।

कर्णैः स्वकीयैः सा वार्ता चम्पारननिवासिभिः,
श्रुता वै नीलकृषकैस्तेनासन् ते प्रभाविताः।

प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की पराजय एवं अंग्रेजों की कूटनीति का वर्णन है।

यथा –

कूटनीतौ सुनिष्णातैस्दागौरांगशासकैः,
देश स्वातन्त्रयदानं हि प्रतिज्ञात तदार्थिभिः।

अंग्रेजों के द्वारा महात्मा गान्धी के स्वतन्त्र किये जाने का वचन देकर प्रथम विश्वयुद्ध में सहायता प्राप्त करना एवं गोरों द्वारा गान्धी जी को केसरे हिन्द एवं भारत नक्षत्र आदि उपाधियों से अलंकृत करना, रौलेट एक्ट का प्रारम्भ होना, एवं उसके विरोध में जलियांवाला बाग में हो रही सभा में नरसंहार, बहिष्कार आन्दोलन का प्रारम्भ, असहयोग का श्रीगणेश, गान्धी जी द्वारा हिन्दी में नवजीवन एवं अंग्रेजी में यंग इण्डिया नामक दो पत्रों का प्रकाशन, वारदोली सत्याग्रह, चौरी–चौरा काण्ड, आन्दोलन का स्थगन एवं आन्दोलन का प्रथम तल अहिंसा धारण करने का निश्चय वर्णित है।

"अहिंसया बिना व्यर्थं जनतान्दोलन यतः,
अहिंसा प्रथमः कल्पस्तेन स्वान्दोलेने कृतः।।130।।"

चौरी–चौरा काण्ड की हत्याओं के प्रायश्चित स्वरूप पांच दिन का अनशन व्रत रखना, छः वर्ष का कारावास, हिन्दू मुस्लिम दंगे होने पर, पुनः इक्कीस दिन का अनशन प्रारम्भ करना, जिससे हिन्दू मुस्लिम वैमत्य समाप्त हो गया। तदुपरान्त गान्धी जी का कांग्रेस के सभापति पद पर आसीन होना वर्णित है।

"कांग्रेससाभापत्येऽयमस्मिन्वर्षे निवेशितः,
अपूरयदेकनि कार्यण्यस्मिन् पदे स्थितः।।138।।"

अछूतों की मन्दिर प्रवेश वर्जना से दुखी होकर पुनः इक्कीस दिन का अनशन व्रत रखना फलस्वरूप अछूतों के लिए मन्दिरों के द्वार खुल जाना एवं गान्धी जी द्वारा हिन्दी भाषा का प्रचार, शिक्षा का संस्कार, तथा गायों की रक्षा का प्रयत्न करना वर्णित है।

हिन्दी प्रचार शिक्षायाः संस्कार रक्षणं गवाम्।
कुर्वन हरिजनाना यः संघ स्थापितवाहि।

अर्थात् गान्धी जी ने हरिजन संघ की स्थापना की। अनन्तर वीर भगत सिंह द्वारा अंग्रेज अधिकारी का जिसने लाला लाजपत राय पर वार किया था, का वध करना, नमक कर के विरोध स्वरूप दाण्डी यात्रा सत्याग्रह का प्रारम्भ गोलमेज परिसर में सम्मिलित होना। परिषद् की असफलता होने पर पुनः आन्दोलन का प्रारम्भ करा, फलस्वरूप गान्धी जी का पुनः गिरफ्तार किया जाना, शासकों द्वारा 'फूट डालो एवं शासन करो' नयी नीति का निर्धारण तथा इसके विरोध स्वरूप चौथा उपवास व्रत प्रारम्भ करना, हरिजन सेवा कार्य तथा अपने विचारों के प्रचार का कार्य करना वर्णित है।

श्रीगान्धी वर्षषटकेऽस्मिन् प्रचारकार्यमाचरत्,
येनास्यातिप्रभावोऽभूद् दृढो भारतभूतले।।163।।

प्रथम मन्त्रिमण्डल का निर्माण तथा द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर अंग्रेजों से युद्धनीति स्पष्टीकरण की याचना, मन्त्रिमण्डल का भंग होना एवं गान्धी जी का स्पष्टीकरण तथा संघर्ष हेतु आह्वान वर्णित है।

तदा ते सूचितास्तेन गान्धिना स्पष्टवादिना,
सन्नद्धीभवतांशु प्राक् महत्संघर्षकर्मणे।।178।।

स्टेफर्ड किप्स का सन्धि योजना के साथ भारत आना तथा भारतीय नेताओं के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने पर उस योजना को अस्वीकृत कर देना, अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा देना वर्णित है।

भारतस्यास्य देशस्य स्वामिनो देशावासिनः,
त्यजत भारत देशं गौरांगः शीघ्रमेव हि।।184।।

पुनः कस्तूरबा सहित गान्धी जी को गिरफ्तार करके आगा खां भवन में बन्द कर देना, गान्धी जी का ज्वर से पीड़ित होने पर एकान्तवास तथा सरोजनी देवी द्वारा सुश्रूषा गान्धीजी के दर्शनार्थ एक बालक का आगमन, सरोजनी देवी से उसका संवाद, गान्धी जी द्वारा से प्रवेश की स्वीकृति एवं मानवों के प्रति बालक का चिन्तन, गान्धी जी का साक्षात्कार एवं उनके पास जाकर बालक द्वारा उनके चरणों में फलों की टोकरी का रखना, वर्णित है। बालक का दरिद्रों के प्रति सामाजिक भाव का वर्णन अवलोकनीय है।
किम ये दरिद्रास्ते सर्वे चौरा एव भवन्ति हि,

धनिनस्तस्करा तैव नैव जायन्ते भूतले कचित्।।235।।
मया तु पुस्तकैर्ज्ञातं धनवन्तः सुतस्कराः,
स्वीकुर्वन्ति धनं तेत श्रमिर्मियत् श्रमार्जितम्।।236।।

महात्माजी के द्वारा बालक के प्रश्न करना तथा बालक को प्रसाद स्वरूप एक फल प्रदान करना एवं बालक द्वारा प्रदत्त उपहार को श्रेष्ठ मानना वर्णित है।

श्रमेण संचितैरथेः फलरूपेण यस्त्वया,
उपहारः प्रदत्तो मां श्रेष्ठः सर्वेषु मनमतः।।265।।

बालक को आर्शीवाद प्रदान करना एवं बालक का वापस जाना, पुनः असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ करना एवं अन्तिम क्रान्ति के रूप में उपद्रवी लोगों द्वारा सरकारी सम्पत्ति का नष्ट करना वर्णित है।

दग्धानि धूम्रयानानां स्थितिस्थनान्युपद्रवे,
नावशिष्टं विनाशेशेऽस्मिन् किंचित्कापि विनाशतः।।276।।

तत्पश्चात् वायसराय के साथ पत्र व्यवहार करना, दुराग्रही जिन्ना को गान्धी जी का परामर्श, परामर्श की असफलता पर जिन्ना से वार्तालाप बन्द कर देना, अन्तरिम मन्त्रिमण्डल का गठन होना तथा नोआ–खाली के उपद्रव का वर्णन है।

हिन्दूनाम् रक्तपातस्य बलात्कारस्य वै तथा,
स्त्री बालिकादिहरणस्य मुस्लिमैस्ताण्डवः कृतः।।293।।

परिणामस्वरूप मालवीय जी का निधन, गान्धी जी की पदयात्रा, विभाजन का निश्चय अर्थात् गान्धीजी द्वारा देश का विभाजन रूप विषपान कर लेना। देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति, दिल्ली पंजाब में उपद्रव एवं शान्ति प्रयास, व्रत का प्रारम्भएवं समाप्ति, पुनः अनशन व्रत कर, चमत्कार स्वरूप उपद्रव का बन्द हो जाना, फलस्वरूप व्रत की

समाप्ति एवं गोड़से द्वारा असमय उन्हें मानव जीवन से मुक्त कर दनो, वर्णित है। गान्धीजी के अमर सिद्धान्त का वर्णन है –

अनम्रत्वं मनुष्यत्वंग्रडन्यातिचारयोः,
महात्मगान्धिनश्चैतत् सिद्धान्त जीवनेऽभवत्।।317।।

गान्धी जी द्वारा समय के मूल्य का वर्णन पत्रकार लुई फिशर का गान्धी से वार्तालाप के लिए आना एवं गान्धी जी के आशावादी सिद्धान्त, दृढ़ विश्वास, कार्यों में निरन्तर संलग्न रहना एवं जीवन में आस्था, तथा गान्धी जी के व्यक्तित्व का वर्णन है।

सुमहान् दूरदर्श्यासीद्दिव्यदृष्टियुतो हि सः,
कार्याणां परिणामं यो पूर्वमेवावधारयेत्।।325।।

तत्पश्चात् गान्धी जी की विशिष्टता एवं लेखन समय वर्णित करते हुए काव्य समाप्त हो जाता है।

भाषा शैली –

गान्धी गरिम काव्य में प्रसाद गुण युक्त भाषा का परिपाक हुआ है। भाषा सामान्य जन की बुद्धि के अनुकूल है।

रस निष्पत्ति –

समग्र काव्य में प्रायः शान्त रस ही दृष्टव्य है ।

छन्दोयोजना –

सम्पूर्ण गान्धी चरितात्मक गान्धी गरिमकाव्यम् अनुष्टुप छन्द में वर्णित है। शार्दूल विकीडतम छन्द वैशिष्ट्यम् शीर्षात्मक श्लोक 333 में अवलोक्य है।

य स्त्राणे शरणागतस्य च शिविस्त्यागे दधीचिमुनिः,
सौभात्रे भरतोऽथ वत्सलगुणे रामोऽथ शौर्येऽर्जुनः।
भीष्मों यः प्रणरक्षणे शुचि हरिशचन्द्रोऽथ सत्येऽभवत्,
गान्धी भारत भूषणः स्व यशसा ख्यातोऽभवद्भूतले।

उपेन्द्र वज्रा एवं वंशस्थ छन्द भी देशोन्ननयकाष्टकम् शीर्षन्तर्गत क्रमशः श्लोक 1 व 2 में वर्णित है। उपेन्द्रवज्रा निम्न में दृष्टव्य है।

दिगीश वृन्दांश विभूति भूषितो, महान् स गान्धी भूवि भारतेऽभूत,
चकार यो भारतभूमि भागं स्वतन्त्रमासेतु हिमालय हिः।

वशंस्थ छन्द निम्न में अवलोकनीय है –

स्वसत्यमार्गेण निराकृता यतः, कुशासकाः पश्चिमदेश वासिनः,
दिवाकरेणेव तमंसि वासरे, गतः परित्यजयसुभारतं भुवम्।।

समीक्षा –

गान्धी गरिम काव्य गान्धी जी के चरित का सांगोपांग वर्णन है। कवि ने गान्धी के जीवन दर्शन का ललितमय उल्लेख किया है। यथा – अदम्य, आशावादी, दृढ़ विश्वासी, जीवन में आस्था रखने वाले कार्यों में निरन्तर संलग्न रहने वाले दूरदर्शी, दिव्यदृष्टि सम्पन्न, हास्यप्रिय, रसिक, जीवन में महान् आनन्दी, अन्याय का विरोध करने वाले अन्यायी का नहीं, सभी धर्मों के सुन्दर उपदेशों और शिक्षाओं को मानने वाले, सत्य बोलने एवं मन वाणी कर्म से परिपीड़ा न पहुंचाने वाले दयालु सहनशील, काव्य में दलितों को पीड़ा से मुक्ति दिलाने वाले आदि गुणों से विभूषित बतलाया है। काव्य में महात्मा गान्धी को शरणागत की रक्षा की महाराजा शिवि, शरीर के त्याग में महामुनि दधीचि, भ्रात प्रेम में महाभाग भरत, वात्सल्यता के गुण में दाशरथी राम, पराक्रम में वीर अर्जुन, प्रण की रक्षा में महारथी भीष्म, और सत्य के पालन में पवित्र महाराज हरिशचन्द्र रूप वर्णित किया गया है।

श्री अमीरचन्द्र शास्त्री का जीवन परिचय

पंचांग प्रदेश के झंग मण्डल से अहमदपुर नाम के ग्राम में 1918 शताब्दी में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम दुनीचन्द्र वर्मा एवं माता का नाम श्रीमती हुक्मदेवी था। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे इस उपदेश की मान्यतानुसार आपका उपनयन सस्कार छः वर्ष की अवस्था में श्री देवीदत्त शर्मा नामक ब्राम्हण के द्वारा गायत्री मन्त्र एवं सारस्वत मन्त्र के उपदेश द्वारा किया गया। और 2 वर्ष विप्रवर ने जीवनयापन हुए वेद, व्याकरण, श्रोत आदि पाठों की उपकारिणी शिक्षा प्रदान की आठवें वर्ष में उनके पितजी ने उन्हें हरिद्वार स्थित ऋषिकुल ब्रम्हचर्य आश्रम में अध्ययन करने हेतु भेज दिया। वहां इन्हें हिन्दी और संस्कृत में कवित्व शक्ति के प्रस्फुटन को देखकर प्राचार्य श्री घूटर झा शास्त्री बालकवि ने उपदेश देकर उन्हें विशिष्ट रूप से शिक्षित किया । शास्त्री शिक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त वेणी संहार के रसमय अभिनय में किन्हीं किन्हीं पद्यों के स्थान पर गीतों को निबद्ध किया और सूत्रधारी होकर स्वयं अभिनय करने पर तत्काल प्राचार्य श्री लीलाधर शास्त्री ने उन्हें कवि रत्न की उपाधि से अलंकृत किया।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व –

इन्होंने 1927 से 1940 ई. तक अनेक कविताएं लिखीं आर्यवीर हिन्दी में एवे प्रताप विजय खण्ड काव्य की रचना संस्कृत में की। किसान, लकड़हारा, परलोक,गले का हार आदि कविताएं हिदी में माधुरी, परलोक, आदि पत्रिकायें निर्धन कुटीरम्, श्री राधाजातिस्त्रोतम् आदि संस्कृत कविताओं को संस्कृत रत्नाकर, सूर्योदय आदि पत्रों में प्रकाशित करवाया। ऋषिकुल में ही श्रीगान्धिमाहात्म्य नामक रचित कविता किसी काव्य चोर ने अपहृत कर ली। 1950 ई. में आपने जीविकोपार्जन हेत श्री वन्दावन धाम सिति

श्री रामानुज वेदान्त विद्यालय में प्रधानाध्यापक हुए एवं श्री राधकृष्ण की वन्दना में अपना सौभाग्य समझा, बहुत अधिक प्रावोच किया एवं बहुत अधिक लेखन कार्य किया। वहां वटपत्तन में भारती विद्यालय में अध्यापक नियुक्त होकर सात वर्षो तक संस्कृत विद्वत्सभा के आश्रय में चलचित्र गीतगती आदि गीतों का निर्माण किया। दिल्ली आकर दरियांगज स्थित श्री सनातन धर्म सभा के व्यास रहे और उसके द्वारा संचालित विद्यालय के प्राचार्य पद पर रहकर श्रीमद् भागवत् कथासार, अध्यात्म्य दर्शन, हित कल्पतरू, कोवेदाधिकारी आदि निबन्धों को रचा।

1963 ई. में संस्कृत विद्यापीठ के प्राध्यापक हुए और उन्होंने संस्कृत रत्नाकर के विश्व शताब्दी ग्रन्थ के सहायक सम्पादक होकर विशेष रूप से कवीत्व शक्ति को विकसित किया। यहां गद्य पद्य निर्माण परम्परा में वैदिक साहित्य परिचय एवं अनेक पद्यात्मक निबन्धों का प्राविधान किया। इसी बीच अन्य अन्यान्य रचनाओं में जल कर इनकी अनेक रचनायें नष्ट हो गयीं। शेष साहित्य में दो चार कृतियां ही रहीं, जिनमें से श्रीराधासुधा निधि स्त्रोत की रसकुल्याख्य व्याख्या एवं रसकलश नामक 900 पृष्ठीय हिन्दी भाषानुवाद का प्रकाशन श्री वृन्दावनवासी श्री राधावल्लभी बाबा किशोरी शरण महात्मा ने कराया। ऋग्वेंद, सायणभाष्य का भाषानुवाद ब्राम्हण समाज नामक पत्र में क्रमशः प्रकाशित हुआ है। संस्कृत पद्यों की 18 रचनाओं में 12 गीत कादम्बरी में संकलित हैं। न्याय में कहीं गयी उक्ति यथार्थतः सत्य है –

गुणिनोऽप्यवसीदन्ति गुणग्राही न चेदिह।
सगुणः पूर्णकुम्भोऽपि कूप एवं निमज्जति।।

इस उक्ति की यर्थाथता को सत्य सिद्ध करते हुए विद्यापीठ के निदेशक डॉ. मण्डन मिश्र एवं केन्द्रीय संस्कृत मण्डल के विशेष अधिकारी डाक्टर रामकरण शर्मा ने अपनी सहल गुण ग्राहकता का परिचय देते हुए इसे प्रकाशित करवाया। काव्य के गीति कादम्बरी नामकरण के सम्बन्ध में कविरत्न द्वारा उद्‌भाषित निम्नलिखित है। अपि न दिवगताया मत्युत्र्या गायत्र्वतार भूतायः कादम्बरीनामिकाया बालिकाया भूयसीषु रचनासु कलकण्ठ गाननृत्य प्रयोगयोगस्थ स्मृति रूपेणानु स्युततयाऽपि ग्रन्थोऽय गीति कादम्बरी नाम्ना व्यवजिहिर्षितः। (गीतिकादम्बरी, प्रथम संस्करण, ग्रन्थकारस्य, पृ. 9)

पुराणों में श्रीमद् भागवत से रूद्रगीतम् देवगीतम वेणुगीतम्, युग्मगीतम्, गोपीगीतम्, भ्रमरगीतम्, भिक्षुगीतम, ऐलगीतम्, भूमिगीतम् आदि नवपद्यपुन्जों की गीतों के नाम से व्याख्या की। इस पर भी प्राकृत भाषा में लिखित गाथासप्त शती को संस्कृत भाषा में आर्या सत्यसती के नाम से अनुदित किया एवं हिन्दी भाषा के बिहारी सतसई आदि अनेक सत्पसतियों को गीतिकाव्यों में गया। कविकुल गुरू कालिदास का ऋतुसंहार, मेघूदत, घटकर्पर काव्य, भर्तुहरि मयूराम, रूकारण शतक, चौरपन्चाशिका, पवनदूत आदि अनेक सन्देश काव्यों को गीति काव्यों के अनुगत तत्वों को परिगणित करने में विचक्षण थे। समस्त स्त्रोत परम्परा को अन्य काव्य शास्त्रों में विवेचित किया। जयदेव का गीतगोविन्दम् प्रवोधानन्द का सगीतामाधवम् को आधुनिक कवियों की परिकल्पित काव्यों

के प्रधान गीत काव्यों को उपदेशित किया। इस संकलन के अन्तर्गत संगीत वृन्दावन 30 सर्गात्मक गीत काव्य को प्रतिमात किया। संस्कृत भाषा की महिमा कविरत्न ने निम्न शब्दों में लिखी है।

तव मधुरिम्णा चापि गरिम्णा स्व महिम्ना च परीतैः
अमरचन्द्र कविना रचितेनं कादम्बरी स्वगीतैः।
भवतु बुधानामधुना समन्ते मधुर पयोनिपीततम्,
संस्कृत भाषे तव गुणगीते गीतेऽपि न चेतो ममयातिशमम्।।

(गीतिकादम्बरी, प्रथम संस्कर, ग्रन्थकारस्य निवेदनम्, पृ. 9)

इन उपरोक्त पक्तियों को चरितार्थ करने के अपने प्रयत्न में किन्चित मात्र ही कविरत्न अपने को सफल होना प्रदर्शित करते है।

काव्य मीमासातीर्थ गुरूदेव नित्य प्रति स्मरणीय श्री कृष्णलाल झा महानुभाव ने पुत्र विशेष स्नेहवश कविश्ररत्न का नाम अमर चन्द्र प्रतिष्ठापित किया था। यही नाम इनके द्वारा संग्रहीत गीतों में प्रयुक्त हुआ हैं कविरत्न के शब्दों में ही उनका अभीष्ट एवं उनके प्रयत्नों का मुख्य फल देवताओं की आराधना है। यथा –

संसारेकिलकाम भनुजनित कोधातपोद्दोपिते,
लोभाम्बुप्रसारभ्रमावह महामोहच्छटाच्छादिते।
भ्रामं भ्रममनेकधा हरिणवन्मात्सर्य मूर्च्छान्वितं,
राधावल्लभ पादपल्लवतले चेतोऽद्य विश्राम्यतु।।

अपने खण्ड प्रबन्ध गीति कादम्बरी के नवम् अध्याय चरित कादम्बरी में विभिन्न महापुरूषों का चिरत चित्रण सुन्दरतम् पद्यावलियों में किया है। सिजमें श्री मोहनदास गान्धी का चरित चित्रण श्रीगान्धि गरिमा एवं श्री गान्धिविचार दोहनम् शीर्षकों के अन्तर्गत किया है। श्री गान्धिगरिमा में श्री गान्धी जी के प्रति, भारत के प्रति एवं मानस के प्रति तथा महात्मा जी की हत्या का वर्णन है। श्री गान्धि विचारदोहनम् शीर्षान्तर्गत सत्यम् ब्रम्ह अर्थात् सत्य ही ब्रम्ह है कि अनुसार गान्धी जी के जीवन दर्शन को प्रसतुत किया है।

गीति कादम्बरी –

प्रकीर्ण ग्रन्थ की सम्पूर्ण कथावस्तु 12 शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित है। ये शीर्षक कमशः गीति कादम्बरी, श्रीमद् कथासार, अध्यात्म दर्शनम्, कोवेदाधिकारी, रसकल्पतरूः, हितकल्पतरूः, संगीत वृन्दावनम्, स्तुति कादम्बरी, चरित कादम्बरी, व्याख्यान कादम्बरी, प्रशस्ति कादम्बरी, पूर्ति कादम्बरी।

नवम् शीर्षक चतिर कादम्बरी (पृ. 378 से 483, गीति कादम्बरी, प्रथम संस्करण) तक निम्नांकित चरित संग्रहित है –

क. श्री हरिवंश चरितामृतम् (प्रथमम)
ख. श्री हरिवंश चरिता मृतम् (द्वितीयम्)

ग. मारूति चरितम्

घ. श्रीमद् दीनदयालु शर्मचरितम्

च. श्री गान्धी गरिमा

छ. श्री नेहरू चरित चर्चा

ज. श्री शास्त्रि चरित चर्चा

छन्दोयोजना –

श्री गान्धी गरिमा में शिखरिणी (श्रीगान्धिगरिमा, श्लोक 5, 6, 9), इन्द्रवज्रा, शार्दूल छन्दों का प्रयोग हुआ है। अलंकार भी यत्र तत्र दृष्टव्य है।

प्रो. इन्द्रविद्या वाचस्पति कृत – गान्धी गीता

प्रोफेसर इन्द्र ने गान्धी गीता या अहिंसा योग का प्रणयन 1942 के पश्चात् किया। इस पुस्तक का द्वितीय प्रकाशन राजहंस प्रकाशन दिल्ली से 1949 में हुआ था। इसका प्रथम प्रकाशन लाहौर से अंग्रेजी अनुवाद सहित हुआ था।

1942 में कान्तिकारी घटनाओं ने विशेषतया राष्ट्र नायक गान्धी के अन्तिम भारत छोड़ो आन्दोलन ने लेखक के हृदय में विप्लव सा उत्पन्न कर दिया और उसे, उस महती विभूति के प्रति, इस रचना के रूप में अपनी विनम्र श्रद्धान्जलि उपस्थित करने के लिए प्रेरित किया। प्रकृति स्नेहमयी गोद में इस रचना का अंकुर उत्पन्न हुआ। अहर्निश, वस्तुतः अनवरत तल्लीनता के कुछ अविस्मरणीय मासों के पश्चात् इस रचना की पूर्ति हुयी।

प्रो. इन्द्र कृत गान्धी गीता की कथावस्तु –

इन्द्र की गीता मे गुरूदेव (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) दीनबन्धु (एण्ड्यूज) से पूछते हैं कि भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में किन किन वीरों ने भाग लिया और किस सेनानायक ने विशेष यप से इस महान् युद्ध का संचालन किया दीनबन्धु प्रथम अध्याय में इस स्वतन्त्रता संग्राम की संक्षेप में चर्चा करते हैं और बतलाते हैं कि दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द नाथ बनर्जी, लोकमान्य तिलक, देशबन्धु चितरंजन दास, मोती लाल नेहरू, पंजाब केसरी लाल लाजपत राय, महामना मदन मोहन भालवीय, नेताजी सुभाष चन्द्रबोस, जवाहर लाल नेहरू तथा सर्वोपरि महात्मा गान्धी इस स्वाधनीता युद्ध के महारथी थे। गान्धी जी के सेनापतित्व में पटेल, राजगोपालाचार्य, राजेन्द्र पसाद, सरोजनी नायडू, विजय लक्ष्मी, चन्द्रशेखर आजाद, मुन्शी जमनालाल, खेर, पन्त, शुक्ल आदि अन्य वीरों ने भ इस स्वतन्त्रता संगाम में भाग लिया।

द्वितीय अध्याय में राजेन्द्र (प्रसाद) सेनानायक मोहन (मोहनदास कर्मचन्द गान्धी) के समीप चम्पारण रणस्थल में आकर स्वतन्त्रता के लिए तथा विश्व शान्ति स्थापना के

लिए अहिंसा सिद्धान्त की उपयोगिता पर सन्देह प्रकट करते हैं। उनके इस भ्रम का निवारण करने लिए श्री मोहन गान्धी इस गीता का उपदेश प्रारमी करते हैं एवं अहिंसा के दार्शनिक तथा व्यवहारिक महत्व का प्रतिपादन करते हें। अहिंसा के साथ तत्सम्बन्धी सत्य, उपवास, ईश्वराधन, दीनार्तिनाान आदि सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते हे। अन्तिम 18वें अध्याय में गान्धीजी अपने अहिंसात्मक नवीन समाज अथवा राराज्य के स्वरूप का चित्रण करते है। गान्धी गीता के प्रकरण अध्यायानुसार इस प्रकार हैं –

श्री मोहन प्रादुर्भाव, अहिंसामीमासां, अहिंसाप्रयोग, सत्यमीमांसा, सत्य प्रयोग, उपवास विज्ञान, दीनार्तिनाशन, ईश्वरनिरूपण, अविद्यार्तिनाशन, रोगार्तिनाशन, दारिद्रयार्तिनाशन, अस्पृश्यार्तिनाशन तथा रामराज्य निर्माण। इनमें से कई प्रकरण अनेक अध्यायों में विस्तृत हैं।

भाषा शैली –

गान्धी की शैली की कल्पना उसके रामराज्य वर्णन से करें –

अहिंसा में समाजस्य भवेदाधार उत्तमः।
अन्ताराष्ट्र व्यवस्थायाः राष्ट्रियान्तर्व्यदस्थिते।।

(गान्धिगीता 18/3)

राष्ट्ररक्षाकृते नैवावश्यकं सैनिकं बलम्।
आयुधान्यपि भूयांसि मन्ये व्यर्थानि सर्वथा।।

(गान्धिगीता 18/4)

संग्रामाः प्रशामिष्यन्ति समाजेतु निरायुधे।
निरस्त्रा न निरस्त्रेणु प्रहरन्ति कदाचन्।।

(गान्धिगीता 18/5)

उपर्युक्त श्लोंकों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्द्र की शैली आधुनिक संस्कृत की शैली है। जिस पर प्राचीन संस्कृत शैली की छाप विशेष नहीं है। इनकी रचना में हिन्दी वाक्य विन्यास का प्रतिरूप दृष्टिगोचर होता है।

डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी – व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भारतीय प्राच्य विद्या एवं संस्कृत साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी, डी.लिट्. का जन्म 11 जनवरी, 1942 ई. को कानपुर देहात जनपदान्तर्गत अवस्थित वैना नामक ग्राम में एक प्रतिष्ठित कान्य–कुब्ज ब्राहम्ण परिवार में हुआ। आपके पिता पण्डित सुदर्शन लाल जी एक धर्म परायण, सौम्य एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति थे। आपकी शिक्षा कानपुर महानगर स्थित वी.एस.एस.डी. कॉलेज में हुयी। आपकी वैदुष्यता का प्रमाण यह है कि आपको सन् 1963 ई. में आगरा विश्वविद्यालय की ओर से सर्वश्रेष्ठ स्नातक होने का कुलाधिपति पदक प्रदान कर सम्मानित किया गया। आपके सुविख्यात

ग्रन्थ सप्त सैन्धव प्रदेश (ऋग्वेदिक भूगोल) पर बिहार शासन ने अपने राजभाषा विभाग के माध्यम से श्री काशीप्रसाद जायसवाल अखिल भारतीय नामित पुरस्कार द्वारा पांच सहस्त्र रूपये की धनराशि से सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश संस्कृत एकेडमी लखनऊ की ओर से सन् 1986 में आपको विशिष्ट पुरस्कार से सम्मानित किया गया। डॉ. द्विवेदी ने कानपुर विश्वविद्यालय का अनेक बार प्रतिनिधित्व करते हुए प्राच्य विद्या के राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेकर उच्चस्तरीय शोध पत्र प्रस्तुत कर विश्वविद्यालय को गौरवान्वित किया है। इस वर्ष आपके सुयोग्य निर्देशन में कानपुर विश्वविद्यालय से 10 शोधार्थियों को पीएच.डी. उपाधि स्वीकृत हुयी है। इनके वैशिष्ट्य पूर्ण कृतित्व एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होकर विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम् की केन्द्रीय समिति ने इन्हें प्रादेशिक कार्यकारिणी का पार्षद एवं हावड़ा में होने वाले निखिल भारत महासम्मेलन में राष्ट्रीय कार्यकारिणी का सदस्य एवं प्रादेशिक संयोजक मनोनीत किया। प्रथम जनता महाविद्यालय अजीतमल, इटावा, उत्तर प्रदेश में संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन रहे एवं वर्तमान में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी से सम्बद्ध मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच, जनपद जालौन (ऊरई) में प्राचार्य पद पर कार्यरत हैं।

कृतित्व –

नाट्यामृतम् (नाट्य संकलन 2002), शाकुन्तलीयम् (संस्कृत काव्य), गुरुमहात्म्यशतकम्, काव्यमाला (काव्य संग्रह), कुसुमांजलि (काव्य संकलन), महाकवि कालिदास (ग्रन्थम् कानपुर 1984), कालिदास-परिशीलनं (जयपुर 2003), कालिदास के कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान 1969, (कानपुर से पीएच.डी. शोध ग्रन्थ), ऋग्वेदिक भूगोल (1986 कानपुर), अभिनव चिन्तनम् (लेख संकलन 2002), साहित्य संस्कृति चिन्तन (लेख संकलन, 2003) भारतीय संस्कृत की रूपरेखा–1971 (इटावा), संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास–1975, साहित्य निकेतन (इटावा एवं कानपुर), भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा की भूमिका–1968 (अजीतमल, इटावा), लेखांजलि, संस्कृत लेख संग्रह–1992 (साहित्य रत्नालय, कानपुर) इसके अतिरिक्त सन् 1970 से लेकर अद्यावधि तक अनेक कवितायें, रूपक एवं लेख अन्य–अन्यान्य पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं– दूर्वा, भोपाल से प्रसारित, अजस्रा (त्रैमासिकी लखनऊ), भारती (मासिकी–जयपुर), पारिजातम् (मासिकी, कानपुर), गीर्वाण सुधा (मासिकी–बम्बई), भारतोद्य (मासिकी–हरिद्वार), संस्कृतामृतम् (मासिकी–दिल्ली), स्वरमंगला (त्रैमासिकी–जयपुर, राजस्थान एकेडमी), सागरिका (त्रैमासिकी–सागर), गुन्जारावः (अहमदनगर–महराष्ट्र), शोधप्रभा, संस्कृत विमर्श आदि।

'गुरुमहात्म्यशतकम्' का कथानक एवं गान्धीजी –

काव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण श्लोक से है तत्पश्चात् विषयावतरणम्, विषय प्रतिपादनम्, प्राचीन काले आदर्श गुरूणा निदर्शनम्, आधुनिक काले गुरूणां (शिक्षकानां)

स्थितिः एवं अन्त में उपसंहार है। कवि ने प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि तक के गुरू अर्थात् सामाजिक कान्ति के अग्रणी, लोक सेवकों का वर्णन किया है। यथा गुरू बृहस्पति, गुरू शुकाचार्य, गुय वशिष्ठ, गुरू विश्वामित्र, आदि कवि मुनीश्वर वाल्मीकि पूज्यगुरू, ज्ञानमूर्ति गुरू श्रेष्ठ वेदव्यास, गुरू सान्दीपनि, गुरू द्रोणाचार्य, जितेन्द्रिय शाक्य मुनि गौतम बुद्ध, वर्धमान महावरी, चाणक्य, आचार्य श्रेष्ठ जगद् गुरू शंकराचार्य, परम वैशणव सन्त विशिष्टाद्वैतवादी गुरू रामानुजाचार्य, गुरू रामानन्द, गुरू मत्स्येन्द्र नाथ, गरू गोरखनाथ, ज्ञानी सद्गुरू नानक देव, गुरू अर्जुन देव, चैतन्य महाप्रभु, सन्त कति दादू, सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी, गुरू नरहरि, आचार्य वल्लभ, महात्मा विट्ठलनाथ, महाप्रभु हरिदास, सन्त तुकाराम, सन्त एकनाथ, समर्थ गुरू रामदास, गुरू रामकृष्ण परमहंस, ज्ञानी महर्षि दयानन्द, स्वामी विरजानन्द, राजाराम मोहन राय, कवीन्द्र रवीन्द्र, गुरू गान्धी, गीता रहस्य में पारगत श्री बालगंगाधर तिलक, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, पण्डित मदन मोहन मालवीय एवं ऋषि विनोबा भावे आदि प्रमुख हैं। गान्धी के चरित्र के सन्दर्भ में निम्न पद्य दृष्ट्व्य है। सर्व प्रथम उनके जन्म का उद्देश्य वर्णित है –

"आंग्ल शासननिर्विणां दुर्नीत्या बहु दुःखिताम्।
दृष्ट्वेमां भारतभूमिं गान्धिगुरुजायत्।।"

(गुरुमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 86, पृ. 39)

गान्धी के चरित्र की विशेषतायें निम्न पद्यों में अवलोक्य है।

"पितृभक्तः सदाचारी नम्रोगुणगुणान्वितः।
सार्धं कस्तूरबादेव्या धर्मव्रतंदधौ गुरूः।।"

(गुरुमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 87, पृ. 39)

अंग्रेजों की विभेद नीति को अफ्रीका में डिगाना। (गुरूमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 88, 89, 90, 91 पृ. 40) अहिंसा एवं सत्य रूपी शस्त्र से स्वाराज्य प्राप्ति (गुरूमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 88, 89, 90, 91 पृ. 40), आत्म शक्ति से सेवाग्राम में सेवा (गुरूमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 88, 89, 90, 91 पृ. 40), गोंडसे की गोली से मृत्यु (गुरूमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 88, 89, 90, 91 पृ. 40), एवं महात्मा गान्धी के प्रति कृतज्ञता वर्णित है। यथ –

नमो धीराय वीराय धर्मज्ञगुरवे नमः।
वश्यात्मने कृतार्थाय नमो गान्धिमहात्मने।।

(गुरुमहात्म्यशतकम्, पद्य सं. 93 पृ. 41)

श्री चिन्तामणि देशमुख कृत गान्धी सूक्ति संग्रह –

श्री चिन्तामणि देशमुख संस्कृत के उन प्रेमियो में से हैं जो जीवन भर उच्चतम पदों से सम्बन्धित सरकारी कार्य भर की व्यस्तता के बीच भी सुसंस्कृत रहे हैं। वे बाल्यकाल से ही आनुवंशिक परम्परा में भारतीय संस्कृति और संस्कृत साहित्त में अवगाहन करते रहे हैं। उनकी स्मरण शक्ति अतिशय प्रखर है। सम्भवतः इसी के बल पर उनका आशुकवित्व सुसिद्ध है। वे अवसर के अनुकूल सूक्तियां चाहे प्राचीन कवियों

की हों या निजी हों कहने में विशेष कुशल हैं। इस प्रकार उनकी वक्तृता प्रभावशाली रहती हैं। श्री देशमुख की गान्धी दर्शन सम्बन्धी सूक्तियां सर्वत्र प्रशसित हुयी है, उन्होने गान्धीदर्शन के मर्म को समझकर अपने ढंग से समाज के समक्ष उसे देववाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया है

इसके अतिरिक्त अनेक अर्वाचीन कवियों की गान्धी जी पर आधृत काव्य रचनायें प्राप्त होती हैं। इन कवियों में अमृतलाल गौरी शंकरी जो गान्धी जी की जन्म और कर्म भूमि से सम्बन्धित हैं। ये सम्प्रति वी/47 मृद्वलपार्क चाणक्यपुरी के पीछे घाटा पोडिया अहमदाबाद में निवास करते हैं। इन्होंने 'कर्मयोगीगान्धी' विषयक सुन्दर सरस काव्य की रचना की जिसकी सानुप्रासिक सरल, प्रसादिक भाषा मय पदावली यहां प्रस्तुत है –

गीतागीतो विमलविफलः कर्मयोगोऽतिगूढः,
नाशक्तिस्तत्सुविहितफले कर्मणि स्नेह एव।
कार्येनिष्ठा कमलनयन प्रोक्तवाक्यानुरूपा,
को वा स्यात् को ग्रथितसमयः कर्मयोगि त्वदन्याः।।
श्रद्धादीपो विपदि विमलो निश्चला ज्योतिरस्य,
शस्त्रास्त्रैनौ बहुलवलयुता निर्जिता आङ्ग्लदुष्टाः।
धर्मोऽहिंसा मलिनमनसां दुर्जनानां जयेऽपि,
सिद्ध्या सिद्धः परमगहनः पण्डितो यः कियावान्।।
गीताधीता सरसमनसा बोधप्राप्तिस्तदर्था,
दाचारान्ते जगति जयिना तत्प्रचारः प्रयुक्तः।
प्रज्ञावन्तो मतिविरहिणो दीनदीनाः धनेशाः,
सन्तोऽसन्तो भवभयरताः प्रेरणाप्रेरितास्ते।।

इस छन्द में मंदाक्रान्ता का प्रयोग हुआ है। जिसमें रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों की छटा दर्शनीय है। इस प्रकार अमृतलाल गौरी शंकर जी का काव्य सौष्ठव प्रशसंनीय है।

वियोगिनी वृत्त का भी कवि ने सुन्दर प्रयोग किया है। यहां प्रस्तुत है उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद्य –

प्रिय पंकज पंकर्क्षणा तव,
पंकोद्भव एव मे मतम्।
विहितं वृषकर्म निश्चितं, तुलना,
गान्धिह्वदा यतोऽस्ति ते।।

(उद्धृत स्वातन्त्र्य सौरभम्, सम्. श्री कृष्ण सेमवाल, दिल्ली 2000, पृ. 298)

उड़ीसा राज्य के विख्यात कवि श्री रवीन्द्र नाथ गुरू, पद्मपुरम्, राजबीड़ा साम्बरम् बरगड़ः में निवास करते हुए गान्धी गौरव को निम्न श्लोंको में प्रभावी तथा सरस रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

आग्लानां चैव दासत्वान्मुक्तिदमभयप्रदं।

श्वतन्त्र भारतात्मानं वन्देऽहं विश्ववन्दितम्।।
अहिंसासल्ययोश्चैव यथार्थां समुपासकं।
तं महापुरूषादर्शं वन्दे गान्धिमुदारकम्।।
समयानां महत्वस्य हृदयंगं कारिणम्।
परोपकारनिष्ठं तं वन्देऽहं विश्वभूषणम्।।
जाति भेद प्रभेदानामुपरिसततं स्थितम्।
विशाल दृष्टिमंतं तं महान्तं नौमि सन्ततम्।।
चित्ताकर्षकरूपंच वन्दे हर्षितमानसम्।
शिशुवत्सलमानन्दशीलं साधुशिरोमणिम्।।

(स्वातन्त्र्य सौरभम्, पृ. 419)

भारत राष्ट्र की राजधानी दिल्ली के सुप्रसिद्ध सेण्टस्टीफन्समहाविद्यालयः दिल्ली के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ. चन्द्रभूषण झा ने भी स्वतन्त्रता दिवस पर महात्मा गान्धी के हृदय में कैसे मनोभाव व्यक्त हो सकते हैं। इसका चित्रण 'गान्धिनःकिमियमेव स्वतन्त्रता' ? शीर्षक कविता में इस प्रकार काव्यात्मक रूप में किया है।

राष्ट्रं द्विभाजितम् मनः शोकायितम्।
दृष्टिरस्ति आकुला आशाऽपि किल व्याकुला।।
लोकेष्ववशान्तिर्वधिता किमियमेव स्वतन्त्रता ?
योषिताः पात्यन्ते अर्भका घात्यन्ते।
कलत्राणि मर्दितानि जलकुलानि तर्दितानि।।
सहिष्णुतोपरि गता, किमियमेव स्वतन्त्रता ?
मन्दिरं मन्दुरीभूतम् मस्जिदं कलुषायितम्।
संचाररोधः आततिः सर्वत्र दूषित मतीः।।
धियं दुनोतिसभ्यता, किमियमेव स्वतन्त्रता ?
गेहानि दग्धानि सस्यानि जग्धानि।
हिन्दवौ घातिताः मुस्लिमा मारिताः।।
प्र.वर्धते खल–वृत्तिता, किमियमेव स्वतन्त्रता ?
शोणितं पिवत्तिं जनाः नरं भक्षयन्ति जनाः।
कूप'–खात–सरित्–सरोवरान् मारितमानवैः पूरयन्ति जनाः।।
हा!पशुता, हा! शठता!, किमियमेव स्वतन्त्रता ?

(स्वातन्त्र्य सौरभम्, पृ. 481)

बिहार राज्य के कामेश्वर संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा के सहिष्णु कुमार झा, ने भी गान्धी के महात्म्य को काव्य में सरस तथा प्रासादिक और अत्यन्त अंलकृत रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है। जिसमें महात्मा गान्धी के प्रति जनसामान्य की श्रद्धा स्वभावताः प्रकट होती है। यथा –

स चक्रवर्ती मुकुटा धृतेऽपि, स राजराजो वसुनापि नापि।
सर्वैर्नृपालैर्नृवरैश्च सर्वैरवन्द्यतैतस्य पदारविन्दम्।।

(स्वातन्त्र्य सौरभम्, पृ. 483)

महात्मा गान्धी की ही जन्म भूमि एवं कर्म भूमि से सम्बन्धित सुविख्यात अर्वाचीन कवि डॉ. हर्ष देव माधवः, 306 विसत् एवेन्यू, वस्न बैरेज रोड़ वस्न अहमदाबाद, (कर्णावती) गुजरात में रहते हुए मोहनदास कर्मचन्द गान्धी शीर्षक अपनी सशक्त कविता में अपने काव्यात्मक सशक्त मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करते हैं। यथा –

एक मोहनः अङ्गुल्यग्रेण गोर्वधनम् दधार–इतिश्रुतम्।
किन्त्वपरः यष्ट्यग्रेण देशमधारयत् तद् दृष्टम्।।
उपनेत्रयुक्ते नेत्रे सत्यं पश्यतः।
कृशशरीरं अहिंसा रक्षति।।
एकं वस्त्रं राज्यलज्जां त्रायते।
वेपतौ हस्तौ देशालम्बनं भवतः।।
गान्धिनः सेवा कुटीरमास्ति, किन्तु ऋषेः सत्यं प्रणष्टम्।
कलंकिता साबरमती अधुना कस्य स्पर्शेन पुनर्जीविष्यति ?
कामं यष्ट्यालम्बनविराहितो देशः न पततिः, किन्तु मार्गभ्रष्टो भत्येव।
राजघाटे माननीयानां नेतृणां चरणध्वनिः श्रूयते।
समाधिः शनैः शनैः ब्रवीति, हे राम! हे राम! इति।।
यदा सत्यं चमत्कारी चरखा चक्रवत् प्रवर्तते तदा ।
क्षणभंगुरकार्पासतन्तुसदृशो मानवः अविनाशिनं स्वातन्त्र्य वस्त्रं वयति।।
सुदामा भूत्वा मोहनेन राजद्वाराण्युद्घाटितानि।
तण्डुल शुभ्रा मुक्तिः रिक्त हस्ततलेषु निहिता।।

(स्वातन्त्र्य सौरभम्, पृ. 490)

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में महात्मा गान्धी के महान् व्यक्तित्व और कृतित्व को ध्यान में रखते हुए इससे प्रभावित होकर अनेक अर्वाचीन कवियों ने अनेक विधाओं में उत्कृष्ट काव्य कृतियों की सर्जना की है। जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, मुक्तककाव्य आदि उल्लेखनीय है। इन काव्यों के अन्तर्गत महात्मा गान्धी का सम्पूर्ण जीवन परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रभावी रूप से काव्य शास्त्र के अनेक तत्वों के समाहित कर प्रस्तुत किया गया है। प्रायः सभी काव्यों की भाषा प्रासादिक माधुर्य गुण युक्त, वैदर्भी रीति सहित अलंकृत रूप में प्रयुक्त हुई है। अलंकारों में भी शब्दालंकार तथा अर्थालंकार यथा स्थान स्वायक रूप से समाविष्ट हैं। जिनसे काव्य का उत्कर्ष रस पूर्ण है। ये सभी काव्य कृतियां संस्कृत साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। जिनका आध्योपान्त हमें अनुसंधानात्मक दृष्टि से अनुशीलन मनन अवश्य करना चाहिये।

उपसंहार

शोध निष्कर्षों का निरूपण

उपसंहार
शोध निष्कर्षों का निरूपण

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य चरितात्मक तथा प्रबन्धात्मक काव्य कृतियों से अत्यन्त समृद्ध संलक्षित होता है। इन रचनाओं में प्रायः राष्ट्रवादी पृष्ठभूमि पर हमारे देश के अनेक चरित नायकों का चारु जीवन चरित चित्रित है। इन महापुरुषों में महात्मा गान्धी सुभाषचन्द्र बोस, महामना मदन मोहन मालवीय, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक, इन्दिरा गान्धी, हेमवती नन्दन बहुगुणा, श्री लाल बहादुर शास्त्री आदि उल्लेखनीय है।

महात्मा गान्धी के आदर्श जीवन चरित का प्रभाव लोक जीवन पर प्रभावी रूप से पड़ा। जिससे इस देश के प्रायः सभी प्रदेशों के प्रमुख कवियों ने उनके जीवन चरित को काव्य में निबद्ध करने का यथा सम्भव सुन्दर प्रयास किया है। इन अर्वाचीन श्रेष्ठ कवियों में श्री विजयराघवाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका महात्मा गान्धी के बहुआयामी जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित काव्य रचना का प्रयास अत्यन्त श्लाघनीय है। यह संयोग की बात है कि विजयराघवाचार्य नाम के दो विख्यात संस्कृत कवि गान्धी युग में प्रादुर्भूत हुए है। जिन्होंने अपना विपुल संस्कृत साहित्य सरस और स्तरीय रूप में प्रस्तुत किया। इनका संक्षेप में साहित्यिक परिचय यहां प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रथम श्री विजयराघवाचार्य सुप्रसिद्ध तिरुपति देवस्थान के ताम्रपट शिलालेखाधिकारी के रूप में विख्यात रहे। इनका संस्कृत साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण और विपुल है। इनकी महत्वपूर्ण रचनायें इस प्रकार विद्वानों की दृष्टि में आकर समालोचित हुई हैं। इनका अर्वाचीन संस्कृत साहित्य चरितात्मक तथा प्रबन्धात्मक काव्य कृतियों से अत्यन्त समृद्ध संलक्षित होता है। इन रचनाओं में प्रायः राष्ट्रवादी पृष्ठभूमि पर हमारे देश के अनेक चरित नायकों का चारु जीवन चरित चित्रित है। इन महापुरुषों में महात्मा गान्धी सुभाषचन्द्र बोस, महामना मदन मोहन मालवीय, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक, इन्दिरा गान्धी, हेमवती नन्दन बहुगुणा, श्री लाल बहादुर शास्त्री आदि उल्लेखनीय है।

महात्मा गान्धी के आदर्श जीवन चरित का प्रभाव लोक जीवन पर प्रभावी रूप से पड़ा। जिससे इस देश के प्रायः सभी प्रदेशों के प्रमुख कवियों ने उनके जीवन चरित को काव्य में निबद्ध करने का यथा सम्भव सुन्दर प्रयास किया है। इन अर्वाचीन श्रेष्ठ कवियों में श्री विजयराघवाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका महात्मा गान्धी के बहुआयामी जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित काव्य रचना का प्रयास अत्यन्त श्लाघनीय है। यह संयोग की बात है कि विजयराघवाचार्य नाम के दो विख्यात संस्कृत कवि गान्धी युग में

प्रादुर्भूत हुए है। जिन्होंने अपना विपुल संस्कृत साहित्य सरस और स्तरीय रूप में प्रस्तुत किया। इनका संक्षेप में साहित्यिक परिचय यहां प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रथम – श्री विजयराघवाचार्य सुप्रसिद्ध तिरूपति देवस्थान के ताम्रपट शिलालेखाधिकारी के रूप में विख्यात रहे। इनका संस्कृत साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण और विपुल है। इनकी अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं में गान्धिगौरवम्, साहित्यिकों द्वारा प्रशंसित हुई है।

द्वितीय – विख्यात कवि श्रीविजयराघवाचार्य बीसवी शती के संस्कृत कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका जन्म 1884 ई. में हुआ था। जन्म से ही साहित्यिक प्रतिभा शिक्षा दीक्षा के प्रारम्भ से ही परिलक्षित होने लगी थी। परिणामतः संस्कृत शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त यह संस्कृत कविता की सुन्दर रचना करने लगे थे। इनकी राष्ट्रवादी विचारधारा प्रायः इनकी काव्य कृतियों में सहज रूप से व्यक्त हुई है। इस आधार पर इन्होंने देश की स्वतन्त्रता में योगदान देने वाले विख्यात महापुरुषों के जीवन चरित को अपनी काव्य कृतियों में सरस रूप में चित्रित किया है। इनकी तीन प्रमुख रचनाओं में गान्धिमाहात्म्यम् महत्वपूर्ण मानी गई है।

श्री विजयराघवाचार्य के समृद्ध काव्य सौष्ठव को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि राष्ट्रवादी विचारधारा से अनुप्राणित **'गान्धीमाहात्म्यम्'** एक उत्कृष्ट काव्य कृति है। इसमें राष्ट्र नायक महात्मा गान्धी का महान् जीवन दर्शन सरस रूप में रूपायित हुआ है। जिससे लोक जीवन सर्वथा प्रभावित और अनुप्राणित होता है। इस प्रकार अर्वाचीन गान्धी चरितात्मक काव्यों में गान्धी माहात्म्य एक महत्वपूर्ण और स्तरीय काव्य कृति है। जिसका गान्धी दर्शन के प्रति आस्था रखने वाले राष्ट्र भक्त, काव्य प्रेमी तथा सहृदय साहित्यिकों को इसका आद्योपान्त अनुशीलन अवश्य करना चाहिये।

डॉ. रामजी उपाध्याय, पूर्व संस्कृत प्रोफेसर सागर विश्वविद्यालय तथा प्रधान सम्पादक सागरिका ने श्री विजयराघवाचार्य के समृद्ध साहित्यिक अवदान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा अपने स्तरीय समालोचना ग्रन्थ – "संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" शीर्षक ग्रन्थ में की है। (द्रष्टव्य : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, सम्वत् 2018, पृ. 196) इससे श्री विजयराघवाचार्य तथा उनकी स्तरीय काव्य कृति गान्धी माहात्म्यम् की महत्ता स्वतः सम्वर्धित हो जाती है।

आचार्य ब्रम्हानन्द शुक्ल द्वारा विरचित **'श्रीगान्धिचरितम्'** नाम का काव्य खण्ड काव्य की कोटि में आता है। इस को भी राष्ट्रपिता के अत्यनुपम चरित चित्रण की प्रधानता के कारण एक उत्तम चरित काव्य भी साहित्य समीक्षकों द्वारा स्वीकार किया जाता है। इसमें राष्ट्र नायक महात्मा गान्धी का आदर्श चारूचरित संक्षेप में चित्रित है। कवि श्री शुक्ल ने भी यहां काव्य रचना के प्रयोजन में सहज भाव से यह स्वीकार किया है कि श्रीमान् गान्धी जी के महान् चरित को वर्णन करने से सभी की आत्मा उज्ज्वल होगी, मन सरस होगा एवं आचरण अनुकरणीय होगा। वहां लेखनी के संचालन से स्वयं

आत्मा पवित्र होगी, प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ का यह प्रधान निदान है। "श्री गान्धी जी के स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् रामराज्य की सुन्दर परिकल्पना है कि कोई भी वंचित नहीं होगा, कोई भुखा एवं कमजोर मेरे राष्ट्र में नहीं होग, सभी जगह समानता की देवी विराजमान होगी।"

नैव वन्चकता क्वापि, नापि क्षुत्क्षामकण्ठता।
न चापि दुर्बलाघातो, ममदेशे भवेत्क्वचित्।।
सर्वत्र समता देवी पूज्यमाना भवेदिह।
सर्वदाऽभ्युदयो भूयादित्यास्ता तत्समीहितम्।।

(श्रीगान्धिचरितम् –श्लोक 109–10)

सुकवि श्रेष्ठ पण्डित शिव गोविन्द त्रिपाठी द्वारा आठ सर्गों में विरचित महाकाव्य 'श्रीगान्धिगौरवम्' भावपक्षीय एवं कलापक्षीय समस्त विशेषताओं का मणिकान्चन संयोग है। वर्तमान युग के नवनिर्माण में कोटि–कोटि जनो को जीवन के आदर्श के प्रति अग्रसर करने वाले महात्मा गान्धी अग्रेसरों में अग्रसर हैं। जिन महात्मा गान्धी ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह की त्रिधारा लोक जीवन में प्रवाहित की, जिस पावन त्रिधारा में निमज्जन से जिन महामानव गान्धीजी के मन मानस से, स्वातन्त्र्य, सामाजिक समानता एवं वैचारिक क्रान्ति, भावात्मक एकता और व्यापक राष्ट्रीय चेतना, महारत्न जैसा धर्म, शिक्षा, राजनीति और व्यावहारिक आर्थिक चिन्तन प्रकिया जैसे मौलिक अमूल्य सच्चे मोती उत्पन्न हुये और जिस महात्मा गान्धी ने वर्तमान को अतीत से सम्बद्ध कर भविष्योन्मुख बनाया, उन्हीं पुण्यात्मा गान्धी के जीवन के समस्त कार्यकालापों का चित्रण 'अष्ट सर्गीय' महाकाव्य श्रीगान्धिगौरवम् की प्रसाद माधुर्य गुण पूर्ण, सरल सद्भूषित, संस्कृत भाषा में निबद्ध है।

महाकवि का गान्धी के जीवन तथा व्यक्तित्व के सुमधुर प्रेरणा दायक सन्दर्भो में जीवन सन्देश ढूंढने का प्रयास एवं अपने चरित नायक पर सिद्ध लेखनी उठाने से पूर्व शिक्षयाशास्त्राभ्यास सिद्धान्त को अपने साथ श्रीगान्धिगौरवम् में यह कहकर आत्मसात् किया कि –

"आलोक्यात्मकथा शुभ्रा लिखितागान्धिनस्ततः,
अन्यच्च गान्धिसाहित्यम् लिख्यते गान्धिगौरवम्।"

(श्री गा.गौ.1/3)

काव्य प्रयोजना वर्णना के इसी सुन्दर कम में काव्य की पाठ के लाभ की चर्चा चलाते हुए रस सिद्ध कवि ने आत्मविश्वास पूर्वक यह कहा है कि –

पठन्तो भारतीयास्तु तपस्यन्ते गौरवम् स्वकम्,
महद्भ्यो लभ्यते ज्ञानं श्रेयोऽनुकरणं मतम्।

(श्री गा.गौ. 1/4)

श्री निवासताड़पत्रीकर कृत 24 सर्गों में निबद्ध 'गान्धिगीता' प्रायः विचार प्रधान एवं दर्शन प्रधान प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ है। महात्मा गान्धी के चारूचरित का मूल्यांकन काव्य

की निम्नांकित पंक्तियों से परिलक्षित हो रहा है –

यत्र लोकाग्रणीधीरो लोकोऽपिप त्यागशीलवान्,
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्भवेद्राष्ट्रं समुन्नतम्।

(श्री गा.गौ. 24/20)

गान्धिगीता की रचना पृष्ठभूमि में श्री एस.एन.ताड़पत्रीकर के यह विचार सर्वथा समीचीन प्रतीत होते हैं –

"But before this done, the Author would vrave indulgence of the reader and express a few words about the way in which he came to conceive the idea of the Gandhi Gita, in Sanskrit. The main point at issue was the success of non-violence against violence and old files of Young India would provide numerious instances of discussion of this nature. This led the present Author to think of a new political Gita, on the lines of the Bhagavad Gita, and he set himself to work in the idea. (Pref. Gandhi Gita)

'सत्याग्रहगीता' सुप्रसिद्ध कवयित्री पण्डिता क्षमाराव द्वारा विरचित राष्ट्रीयता की उदात्त भावना से प्रेरित और परिपूर्ण अन्यतम रचनाओं में से एक है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत इनकी अन्य काव्य रचनायें, उत्तरसत्याग्रह गीता एवं स्वराज्य विजयम् है। सत्याग्रहगीता में राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी द्वारा परिवर्तित सत्याग्रह आन्दोलन का सरस चारूचितांकन सजीवता पूर्वक किय गया है। इस काव्य कृति को गीता की संज्ञा श्रीमद्भगवत्गीता की भांति अष्टादश अध्यायों में वर्णित होने के कारण दी गयी है। कवयित्री ने महात्मा गान्धी जी द्वारा निर्धारित भारतभ्युदय, सिद्धार्थ, नवव्रत आदि विभिन्न विषय वर्णित किये हैं। यथा – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, वस्तु का आवश्यकता से अधिक संग्रहीकरण न करना, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति श्रद्धा, निर्भीकता, विषयरुचि में इन्द्रिय संयम एवं हरिजनोद्वार।

डॉ. कपिल देव द्विवेदी के अनुसार पण्डिता क्षमाराव में भाव है, सरस भाषा है, नैसर्गिक अलंकार हैं एवं युवक जनोचित कोमल हृदय का समन्वय है।

सुविख्यात समीक्षक श्री एस.सी.भट्ट की पण्डिता क्षमाराव के उत्कृष्ट काव्योत्कर्ष के सम्बन्ध में यह अवधारणा सर्वथा समीचीन है।

"She was a master of rhetoric and her vocabulary was immense. Her choice of epithet was marvellous and the rhythm of her verses was simply caplivating. She has made a name and fame, her poetic germs will live for ever as shall her great and loving soul." (Pref. Satyagrah Gita)

डॉ. टी.पी. काणे ने इसके साहित्यिक सौष्ठव को इस प्रकार समीक्षित किया है –

"All the works of Pandita Kshama Rao are ditinguished by certain pleasing characteristics viz, and elegant and easy diction, command of a vocabulary, mastery over, metres, numerous of figures of speech, vivid descriptions and general poetic

quality of high order." (Pref. Satyagrah Gita)

पण्डित द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री द्वारा इक्कीस सर्गों में विरचित महाकाव्य 'स्वराज्यविजयम्' कुछ प्राचीन काव्य परम्परा से हटकर प्रणीत किया गया है। परम्परा से विच्छेद न होकर केवल परम्परा में विच्छेद है। कोई पुराण प्रसिद्ध, लोक विश्रुत नायक न होकर लोकतन्त्रात्मक स्वराज्य प्राप्ति के लिये संघर्ष मय प्रयत्नशील निम्न, मध्यम एवं उच्चवर्गीय समस्त संघर्षरत, राष्ट्रीय वीर नागरिकों की गाथा इस उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य में उपनिबद्ध है। कुशल रचनाकार ने सर्ववद्ध इस महाकाव्य की प्रणयन परिधि को अपनाया और अनुकूल छन्दोबद्धता के लिये आद्योपान्त यह प्रवीण कवि प्रतिबद्ध रहा, किन्तु रात्रि वर्णन जैसे विषयों को महाकाव्य में कोई संक्षिप्त स्थान नहीं दिया गया।

एक दृष्टिकोण से विवेच्य महाकाव्य प्राचीन अर्वाचीन का अद्‌भुत गठबन्धन है। अभी पुरातन का मोह छूटा नहीं है, परन्तु नूतन दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। पुरातन कवियों के प्रति विनम्र निवेदन महाकवि के उदातत्व व्यक्तित्व को उजागर कर रहा है। उन सहृदयों की सर्वोत्कृष्टता को सहृदय रचनाकार द्वारा सहर्ष स्वीकार किया गया है।

जिनका चित्र खरा–खोटा परखने में सुन्दर वर्ण वाले काव्य रूप स्वर्ण के लिये कसौटी स्वरूप हैं। बाण की भांति महाकवि द्विजेन्द्रनाथ के मस्तिष्क में अपने काव्य का स्पष्ट स्वरूप था। इनके मनोराज्य की की सच्ची काव्यधारा, श्रंगारादि रसों से उज्ज्वल, भाव, विभाव, अनुभाव संचारी भाव से युक्त रस निष्पत्ति तथा प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों से युक्त पदावली, उपमा आदि अलंकारों से अलंकृत तथा वैदर्भी प्रभृति रीतियों से समन्वित ऊर्जस्विनी, अनिर्वचनीय, उदार सरस काव्यधारा बड़े पुण्यों से रसिकों को प्राप्त होती है।

वस्तुतः कवि का जैसा मनोराज्य है वैसा ही प्रसाद एवं माधुर्य ओज गुण सम्पन्न, अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार और सुललित पदावली का प्रयोग परम्परागत हिन्दी भाषा से अनूदित सूक्तियां महाकाव्य मे पग–पग पर द्रष्टव्य हैं। स्वयं कवि के शब्दों में 'सगुण, सदलंकार, भव्यभाव भूषित, सरल सरल पदों से समलंकृत यह स्वराज्य विजयम् महाकाव्य है। कवि ने काव्य के एक प्रयोजन और कथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा है कि राजनीति की बातों पर सारभूत, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, से विभूषित यह महाकाव्य विद्वत् मिलिन्दों के रसास्वादन के लिये हैं। कवि की यह आकांक्षा है कि स्वराज्य विजयम् महाकाव्य कानन में केलि कौतुक कामुक कवि भ्रमर विहार करके आनन्द अनुभव करें। कवि की यह भी महती अभिलाषा है कि सुधारस की मधुमय माधुरी से परिपूर्ण सुन्दर तथा कोमल काव्य कला से उपलालित इस स्वराज्य विजयम् महाकाव्य को विद्वान् जन कृपापूर्वक कर्णफूल के समान पूर्ण रूप से कर्ण का आभूषण बनायें।

पण्डित सुधाकर शुक्ल ने अपनी अमर काव्य कृति **'गान्धिसौगन्धिकम्'** में महात्मा गान्धी के चारुचरित के साथ ही पौराणिक संकेतों, प्रेम विषयक आख्यानों, देश

की दशा, तत्कालीन परीक्षा प्रणाली, गुरू शिष्य का स्वरूप, समाजवाद आदि विषयों का सजीव वर्णन किया है। नारी की विकृत एवं ह्रासोन्मुख सामाजिक स्थिति पर उन्होंने अत्यन्त तीक्ष्ण प्रहार करते हुए ग्रामीण नर समाज पर भी अपना आक्रोश व्यक्त किया है। इनके धार्मिक विचार इस ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से संलक्षित होते हैं। मानव संस्कृति के प्रति महाकवि ने अपनी मान्यता को स्पष्ट व्यक्त किया है।

इस काव्य रचना का उद्देश्य गान्धी जी महनीय राष्ट्रीय कार्यों से प्रभावित होना है। कवि गान्धिवादी विचार धारा से सर्वथा अनुप्राणित रहा है। यह महाकाव्य महदुद्देश्य से अनुप्रेरित है। लोकजीवन में चारित्रिक उत्थान का आधार कर्मपरायणता तथा धर्मसम्मत् नीति निपुणता है, जिसे हम राष्ट्रपिता गान्धीजी के चरित से ग्रहण कर अपने जीवन को उज्ज्वल बना सकते हैं। यह शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की अतिशय शब्द चमत्कार पूर्ण कोष व्याकरण आदि की परिवर्धित प्रवृत्ति से पूर्णतया दूर है। जिसका कवि ने काव्य के प्रारम्भ में ही इस प्रकार उद्घोष किया है। –

न कौपीनः स कौपीनः यः सरलः सरलैः पदैः।
असमस्तैः समस्तकैः कलमेना लमीयते।।

(गान्धिसौगन्धिकम्)

महत्वपूर्ण एवं कलात्मकता का आधार बनने वाली सुप्रसिद्ध घटनाओं का काव्य में समावेश नहीं है परन्तु लोक परिचित विविध वस्तुओं नगरी, देवार्चन, नीति, पुत्रोत्सव, विवाह के वर्णन आदि विद्यमान हैं। इन्हीं आधार पर कवि की रचना सरल, स्वाभाविक, लोकोन्मुख, धर्मप्रवण एवं कल्याणभिनिवेशी है। यथार्थ होते हुए भी आदर्शोन्मुख होने के कारण यह कृति सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् से समन्वित है। सहृदय पाठक अर्थबोध में नहीं उलझता अपितु त्वरित अर्थावगति हो जाती है। जटिल पदों, क्लिष्ट अलंकारों, गूढ़ार्थों अनेकार्थों से मुक्त होकर रमणीय पदों प्रभावोत्पादक भावों तथा आह्लाद जनक रसों से यह रचना सर्वथा समन्वित है।

विभिन्न प्रकीर्ण काव्यों में प्रथमतः श्रीमद् भगवताचार्य कृत भारत पारिजातम्, पारिजातापाहरम्, पारिजात सौरभम् उल्लेखनीय है। भारत पारिजात के रचयिता भगवदाचार्य प्राचीन और नवीन संस्कृति के परम उपासक हैं। उनके व्यक्तित्व में कर्मयोग का सच्चा परिपाक हुआ है। संन्यासी का जीवन बिताते हुए भी वे अपनी जिज्ञासा की परितृप्ति के लिये और भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार करने के लिए विदेश में भ्रमण कर चुके हैं। उनकी व्यापक दृष्टि में धर्म शब्द का मुख्य अर्थ सत्य और सदाचार्य है। वे सदाचार और सत्य को सम्गति चाहते हैं। इन महाकाव्यों के लिये ऐतिहासिक सामग्री का शोध भगवदाचार्य ने वैज्ञानिक विधि से किया है एवं समस्त ऐतिहासिक तथ्यों को काव्य के ढ़ांचे में ढ़ालने में कवि को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है।

कवि का प्रमुख रचना उद्देश्य यह है कि भारतीय समाज को गान्धी तत्व के अनुपम आदर्शों के प्रति भावुक और उन्मुख बनाना। निसन्देह भारत पारिजात के अनुपम रसोद्रेक में जनमन निर्झर प्रपात प्रवाहित होता है।

महामहोपाध्याय पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित द्वारा प्रणीत 'गान्धिविजयनाटकम्' एवं भारत विजय नाटकम् में भारत की शोचनीय दुर्दशा का चित्रण भावुकता पूर्ण ढंग से किया गया है। इनके गान्धी चरितात्मक नाटकों का विशेष महत्व सामयिकता की दृष्टि से है। भारत राष्ट्र की पराधीनता को सांस्कृतिक पतन का प्रमुख कारण स्वीकार कर इन्होंने समाज को उद्‌बोधित करने का संकल्प नाटकों के द्वारा कार्य रूप में परिणत किया। इनमें प्राकृत के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग एवं वालोचित सरल संस्कृत भाषा का प्रयोग परिलक्षित है। सक्षेप में पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित द्वारा प्रणीत यह नाटक अनेक दृष्टियों से एक नई साहित्यिक नाट्य परम्परा का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

आचार्य मधुकर शास्त्री द्वारा विरचित 'गान्धिगाथा' की प्रमुख साहित्यिक विशेषता यह है कि इन्होंने अपने सरल संस्कृत काव्य में हिन्दी के दोहा छन्द का सुन्दर प्रयोग किया है। उन्हीं के शब्दों में इनके विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

"एतादृशस्य युग–पुरुषस्य जीवनरचितअतिसखितरीत्याऽमर–भारती–माध्यमेन समुपवर्णयितुंकामोऽहं, तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरं, मिति महाकवि–कथनमेवाऽन्तरात्मनि नितरामनुभवामि।"

इन शब्दों से कवि के इस काव्य प्रणयन का उद्‌देश्य प्रकट होता है –

श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी विरचित श्री **'गान्धिगरिमकाव्यम्'** गान्धी चरितात्मक एक अप्रतिम सरस काव्यमय आत्मकथा है। जिसमें महात्मा गान्धी के आदर्श जीवन वृत एवं उनके आदर्श जीवन की प्रमुख घटनाओं का संगोपांग वर्णन किया गया है। सरस संस्कृत भाषा के माध्यम से गान्धिगरिमकाव्यम् एक मौलिक रचना है। सामान्यतः इस कृति में कवि अलंकरण के प्रति उदासीन सा प्रतीत होता है।

श्री अमीरचन्द शास्त्री द्वारा विरचित खण्ड प्रबन्ध 'गीतिकादम्बरी' के नवम अध्याय में श्रीगान्धिगरिमा एवं श्रीगान्धिविचारदोहनम् शीर्षकों के अन्तर्गत गान्धी जी का विषद् वैचारिक चारूचितंन चित्रित किया गया है। कवि रत्न के शब्दों में ही उनका अभीष्ट एवं उनके प्रयत्नों के मुख्य फल महापुरूषों के चरित्र को समाज के सम्मक्ष प्रस्तुत करना रहा है।

प्रो. इन्द्रविद्या वाचस्पति कृत **'गान्धिगीता'** में महान् राष्ट्र नायक महात्मा गान्धी के प्रति इस रचना के रूप में अपनी विनम्र काव्यात्मक श्रद्धांजलि समर्पित की गई है। श्रीमद् भगवत् गीता के अनुसार गान्धिगीता में भी 18 अध्याय हैं। जिनमें अहिंसा के सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा लोकजीवन में व्यावहारिक महत्व का प्रतिपादन किया गया है। अहिंसा के साथ तत्सम्बन्धी, सत्य, अस्तेय, उपवास, ईश्वराराधन, दीनार्तिनाशन आदि सामान्य स्वीकृत सिद्धान्तों का सरस स्पष्टीकरण भी कवि ने किया है। अन्तिम अठाहरवें अध्याय में गान्धीजी द्वारा अहिंसात्मक आन्दोलन के व्यापक प्रभाव से नवीन राष्ट्रीय समाज अथवा आकांक्षित आदर्श रामराज्य के स्वरूप का चारू चित्रण है। इनकी सरस काव्य रचना में हिन्दी वाक्य विन्यास की प्रभावी प्रतिछाया परिलक्षित

होती है।

साहित्यवारिधि डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी प्रणीत **'गुरुमाहात्म्यशतकम्'** में महात्मा गान्धी को आदर्श गुरु के रूप में वर्णित किया गया है। तथा उन्हें महान् कर्मयोगी, अहिंसा सत्य आदि अस्त्रों से सुसज्जित अजेय तपस्वी योद्धा, बतलाया गया है।

अर्वाचीन 'गान्धिचरितात्मक संस्कृत काव्यों की अविच्छिन्न सुन्दर श्रंखला में श्री चिन्तामणि देशमुख कृत **'गान्धिसूक्तसंग्रह'** विजयाराघवाचार्य कृत **'गान्धिमाहात्म्य'** डॉ. रमेश चन्द्र शुक्ल प्रणीत **'गान्धिगौरवम्'** लोकनाथ शास्त्री विरचित **'गान्धिविजयम् महाकाव्यम्'**, विधिनाथ शास्त्री प्रणीत **'गान्धिचरितामृतम्'** जयराम शास्त्री प्रणीत **'गान्धिबान्धवम्'** के.बी.एल. शास्त्री कृत **'गान्धिमाहात्म्यविजयम्'** बी.नारायण कृत **'महात्मनिर्वाणम्'** यज्ञेश्वर शास्त्री कृत **'भारतराष्ट्ररत्नं'** श्री बद्रीनारायण पुरोहित प्रणीत **'गान्धियोगागम्'** राजवैध वीरेन्द्र कृत खण्डकाव्य **'महात्मगान्धिचरितम्'**, वासुदेव शास्त्री वागेवाडीकर विरचित **'गान्धिचरितम्'** एवं डॉ. बौमकण्ठी रामलिंग शास्त्री कृत **'सत्याग्रहोदयः'**, अमृतलाल गौरी शंकर कृत **'कर्मयोगिगान्धि'**, रवीन्द्र नाथ गुरु रचित **'गान्धिगौरवम्'**, चन्द्रभूषण झा प्रणीत **'गान्धिनःकिमियमेव स्वतन्त्रता'**, सहिष्णुकुमार झा रचित **'गान्धिमाहात्म्य'**, डॉ. हर्ष देव रचित **'मोहनदास कर्मचन्द गान्धी'** आदि अनेक गान्धी चरितात्मक सरस रचनाओं में देववाणी के माध्यम से राष्ट्रपिता गान्धी के दिव्य जीवन दर्शन को वर्णित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक जीवन को महात्मा गान्धी के महान् जीवन के आदर्शों से अनुप्राणित करने के लिये अनेक रचनाकारों ने गान्धी चरितात्मक, प्रबन्धात्मक विभिन्न कृतियों की रचना की है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में महात्मा गान्धी के महान् व्यक्तित्व और कृतित्व को ध्यान में रखते हुए इससे प्रभावित होकर अनेक अर्वाचीन कवियों ने अनेक विधाओं में उत्कृष्ट काव्य कृतियों की सर्जना की है। जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, मुक्तककाव्य आदि उल्लेखनीय है। इन काव्यों के अन्तर्गत महात्मा गान्धी का सम्पूर्ण जीवन परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रभावी रूप से काव्य शास्त्र के अनेक तत्वों के समाहित कर प्रस्तुत किया गया है। प्रायः सभी काव्यों की भाषा प्रासादिक माधुर्य गुण युक्त, वैदर्भी रीति सहित अलंकृत रूप में प्रयुक्त हुई है। अलंकारों में भी शब्दालंकार तथा अर्थालंकार यथा स्थान स्वायक रूप से समाविष्ट हैं। जिनसे काव्य का उत्तकर्ष रस पूर्ण है। ये सभी काव्य कृतियां संस्कृत साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। जिनका आध्योपान्त हमें अनुसंधानात्मक दृष्टि से अनुशीलन मनन अवश्य करना चाहिये।

परिशिष्ट

(1) गान्धी काव्यकारों द्वारा वर्णित सूक्तियाँ

(2) सहायक ग्रन्थ सूची

गान्धी काव्यकारों द्वारा वर्णित सूक्तियाँ

पण्डित क्षमाराव द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

1. निर्धनत्वाज्जनुर्भूमेः पाखश्याच्च बान्धवाः।
   तिरस्कृताभवन्तीति प्राज्ञेन किल निश्चितम्।।
   (सत्याग्रह गीता, 1/24)
2. स्वधर्मः परमो धर्मो न त्याज्योऽयं विपद्यपि।। (वही 1/19)
3. स्वातन्त्रादपि भूतानां प्रियमन्यत्र विद्यते।। (वही 1/34)
4. पारतन्त्र्यमुदाराणां मरणादतिरिच्यते।। द्वत्त (वही 1/36)
5. दास्यभावेः स्थितैः कष्टं सोढव्यमतिदुस्सहम्।
   दासोऽश्नाति स्वमप्यत्रं काकशकी पदे पदे।। (वही 1/37)
6. खादिवस्त्रात्परं वासो नैव धार्यकदाचन।
   स्वार्थत्यागागतस्वदेशार्थं नान्यच्छ्रेयो हि विद्यते।। (वही 2/41)
7. करादानस्य दारिद्रयं हेतुरासीत्र चान्यथा।
   राजापि सरसः शुष्कात्पयः पातुं न पारयेत्।। (वही 3/8)
8. शस्त्रास्त्रबलहीनानां बलम् सत्याग्रह परम्।। (वही 3/21)
9. सामाज्यस्योपकारे हि भारतस्य हतं स्थितम्। (वही 4/6)
10. दारुणानामसंख्यानां पापानां दारुणं फलम्।
    परत्र लप्स्यते दुष्ट इति शंकेत को नरः।। (वही, 5/33)
11. अज्ञानाद्भवति द्वेधं द्वैधाद्भवति शत्रुता।
    शत्रुत्वाद्विप्लवो भावी ततो नाशः प्रशसितुः।। (वही, 6/7)
12. पारतन्त्र्याभिभूतस्य देशस्थाभ्युदयः कुतः।
    अतः स्वातन्त्र्यामाप्तव्यमैक्यं स्वातन्त्र्यसाधनम्।। (वही, 7/4)
13. अतः स्वार्थे परित्यज्य सात्त्विकीं बुद्धिमाश्रितः। (वही, 10/7)
14. स्वामिनः परमो धर्मः प्रजानां हितकारिता।। (वही, 10/8)
15. स्वदेशस्य विमोक्षार्थ प्राणेरपि धनैरपि।
    बान्धवा मे करिष्यन्ति प्रयासं प्रबलं ध्रुवम्।। (वही, 10/19)
16. निर्णयश्चक्रगोष्ठयास्तु न प्रमाणं भविष्यति।
    पाशवात्मिक शक्त्योर्हि कुतो वादेन निर्णयः।। (वही, 10/20)
17. दुर्बला ननु गण्यन्ते शान्तिमार्गावलम्बिनः।
    परं सत्याग्रहव्दिद्धि नास्ति तीव्रतरं बलम्।। (वही, 10/25)
18. शान्तिसत्प्रधानोऽपिमार्गोऽयं विषमः परम्।
    न सत्यस्य जयः साध्यो भयाद्घोरतमादृते।। (वही, 10/27)
19. देशभक्तों निजप्रणान् मन्यते यस्तृणोपमान् ।

ताडनात्तस्य किं दुःखं बन्धनात्तस्य किं भयम् ।। (वही, 12/31)

20. रोगिणामनिवार्या हि चिकित्सा न त्वरोणाम् ।। (वही, 13/36)

21. लोभः परधनस्यापि व्याधिरित्येव गण्यते । (वही, 13/37)

22. का प्रतिष्ठा हि धर्मस्य निर्दोषा यदि दूषिताः । (वही, 14/27)

23. धिग् राज्यं यत्र जानीयत् सत्यासत्यविवेचनम् ।
निजोत्कर्षमदोन्मत्तः कुतः कर्मफलं स्मरेत् ।। (वही, 13/35)

24. जलमुत्कथितं चापि पुनर्गच्छति शीतताम् ।
मनस्तु क्षुभितं नृणां न निवर्तेत लक्ष्यतः ।। (वही, 15/16)

25. शक्यो वारयितुं चापि कथंचिद्वडवानलः ।
न तु मोहयितुं शक्यः सकृज्जागरितो जनः ।। (वही, 15/27)

26. मानवीयगुणोपेतैर्वरं संगश्चतुष्पदैः ।
न वणिग्भिस्तु सम्पको नरैरपि पशूपमैः ।। (वही, 16/30)

27. सुगमं यत्तु कार्य स्यात्फलतो लघु दत्भवेत् ।
दुर्गमं चापि सत्कार्य पुष्णाति फलगौरवम् ।। (वही, 16/44)

28. पुनः पुनः कृतो प्रबोधाय जडात्मनाम् ।
न सिध्योद्यदि कर्त्तव्या समाजात्तद्बहिष्कृतिः ।। (वही, 16/51)

29. जातस्य चेदध्रवो मृत्यु देशकार्ये वरं मृतिः । (वही 17/60)

30. दासत्वाग्रस्तदेशस्य क्षमाया नापरा गतिः । (वही 17/70)

31. सत्यं विजयतां लोके मुक्तांभवतु भारतम् ।
नन्दन्तुं सुखिनः सर्वे देशजाश्च विदेशजाः ।। (वही 15/11)

उत्तरसत्याग्रहगीता –

32. वंचयेय स्वदेशां चेच्छिलाधातैर्हतैव माम् ।
न काप्यत्र घृणा कार्या वरं वेरी न वंचकः ।। (वही 2/12)

33. जन्मभूतेः कृते सोढं शुभोदर्क भविष्यति ।
मातुरर्थे सुपुत्रस्य कः क्लेशो दुःसहो भवेत् ।। (वही 2/15)

34. न हि सन्तः प्रतार्यन्ते बाह्योपाधिविलोकनैः ।। (वही 2/33)

35. परायत्त प्रतिष्ठानां परसेवा परा गतिः । (वही 3/11)

36. सेव्यते जन्मभूखे नष्टलब्धा प्रसूरिव ।। (वही 3/27)

37. महतां हि चरित्राणि हरन्ति सुमनोमनः । (वही 3/48)

38. स्वयमेय स्व देशस्य मा भूत क्षति हेतवः । (वही 6/6)

39. स्वराज्यादपि मे प्रेयो ह्यन्त्यजानां विमोचनम् । (वही, 7/23)

40. न कोऽप्यस्पृश्यताख्यात्या लाछंनीयः स्वदेशजः ।
चातुर्वर्ण्यव्यवस्थायमापि नेदं हि दृश्यते । (वही, 7/43)

41. तं विना शरणं नान्यस्तदिच्छां को निवारयेत् । (वही. 5/42)

42. अमृतासार सिक्तापि किं शिलामृदुलायते । (वही, 5/44)

43. युष्माभिः कार्यसिद्धिश्चेत निश्चितं प्राप्तुमिष्यते ।
सद्‌गुणो न पुनः संख्या पुरूषाणामपेक्ष्यते ।। (वही, 20/13)

44. धिग्बलं भौतिकं पुंसा सत्याग्रहबलं बलम् ।। (वही, 13/36)

45. हिन्दी भाषा गिरः सर्वाः समुत्कर्ष हिनेष्यति ।। (वही, 15/17)

46. विप्रचाण्डालयोयविभवेदलेदधीर्जन्मकारणात् ।
तावद्भारतभूर्न स्यादारोग्यशमसौख्यभाक् ।। (वही, 20/65)

47. भारत शाक्यसिंहस्य जन्मभूमिः प्रियं हि नः । (वही, 20/205)

48. निष्कारणं जायेत प्रमादोऽल्परतोऽपि सन् ।
कायेन मनसा वाचा गीतार्थ परिशीलिनः ।। (वही, 12/17)

49. मानरक्षा मनुष्यस्य न शक्येव बलं बिना ।। (वही, 22/41)

50. शौचसौभाग्यसम्मानरक्षा नार्थमपैक्षते ।
ग्राम्यत्वसमतां याति विभवाडम्बरः पुनः ।। (वही, 23/36)

51. शनैः पन्थाः शनैः कन्थाः शनैः पर्वतलंघनम्।
इत्यसौ शुष्कलोकोक्तिं सोपहासमुदाहरत्।। (वही, 25/63)

52. याज्ञिको भवितुं नार्ह पुरोधा मन्त्रवर्जितः। (वही, 31/16)

53. कार्ये देवप्रसादेन स्वयं शक्तिरुदेष्यति।। (वही, 31/34)

54. नाल्पीयसः समाजस्य भवदीयस्य केवलम्।
अपि त्वखिलराष्ट्रस्य श्रेयस्तावद्विचिन्त्यताम्।। (वही, 31/57)

55. राष्ट्रध्वजगता वर्णाः सूचयन्त्येक भावनम्। (वही, 32/7)

46. यावच्च ध्रियते राष्ट्रं भारतीयं क्षमातले।
तावद्भीतिः पताका च प्रोच्चेरुल्लसतोध्रुवम्।। (वही, 32/31)

57. नास्ति कोऽपि जगत्यस्मित् भवदन्यो नरोत्तमः।
यो निवारयितुं शक्तः समरं विश्वघस्मरम्।। (वही, 33/19)

58. बलिकोष्ठऽपि नृपो लोकत्रेवं तर्जितुमर्हति।
कुर्वत्रहितमेतेषां करोत्यहितमात्मनः।। (वही, 34/38)

59. निरंकुश प्रभुत्वस्य गतः कालो महीतलात्।
प्रजारञ्जनतो राजा जीवेदद्य न पीडनात्।। (वही, 34/40)

60. जन्मभूरस्मदीया हि प्रशान्तेर्धाम् वर्तते। (वही, 35/22)

61. स्वतन्त्र्यमपरिच्छेद्यां विश्वभोज्यम् हि वर्तते। (वही, 36/29)

62. राष्ट्रस्य सार्वभौमत्वं जनतामवलम्बते।
संस्थाने राजसत्ता च जनतावशवर्तिनी।। (वही, 38/12)

63. नूनं देवविलासेन सान्त्वनं लभर्ते नरः।
प्रातिकूल्यं च भूतानां कल्पते हि सुखाय नः।। (वही, 40/8)

64. भारतेऽत्र निरातंका स्वातन्त्र्य श्रीविराजताम्।। (वही, 47/ [illegible])

द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री द्वारा वर्णित सूक्तियाँ

65. प्राणेभ्योऽपि हि मे प्रेयान् मातृभूमेः सुखोदयः।
(स्वराज्य विजयम्, वही, 2/15)

66. भारतादधिकः कोऽपि न देशः शान्ति वत्सलः।। (वही, 2/15)

67. अस्ति मुख्याधिकारो नः स्वराज्याप्तिः स्वजन्मतः। (वही, 3/16)

68. उत्सेकं भजध्वं भोः सास्त्ररक्षक निर्जयात्।

69. पूर्णस्वाराज्यसंप्राप्तिर्देशस्य परमा गतिः। (वही, 7/3)

70. न्याय दृष्टवा समाः सर्वाः प्रजाः सन्तीह भारते। (वही, 11/7)

71. भारतस्य प्रतिष्ठाहि स्थापिताऽस्ति जगत्तले।। (वही, 11/34)

72. वपुर्नृपणां हि सेवार्थं न तु सौख्योपभुक्तये।। (वही, 12/17)

73. हृदन्तसुखमुद्भूतं त्यागात् पुष्णाति जीवितम्। (वही, 12/17)

74. कुर्वत्रेवह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (वही, 19/29)

75. दीर्घायुष्यमिदं त्यागाद्विना नेवोपलभ्यते। (वही, 19/33)

76. यदि जातु फलासकतो नरो जीवेदियच्चिरम्।
उज्जीवितशवप्रख्यः सर्वेषां भार एवं सः।। (वही, 19/34)

77. येषां भगवति श्रद्धा तेषां त्रासो न युज्यते। (वही, 22/20)

78. ईश्वरं हि बिना नान्यो रक्षकः पृथिवीतले। (वही, 25/7)

79. न कोऽपि धार्मिक ग्रन्थों ह्यनुशास्ति मिथःकलिम्। (वही, 27/42)

80. नापमानः स्पृशेद्वीरं न च धीरमनादरः।
दुर्जनस्य स्वभावोऽयमपकारे प्रतिक्रिया।। (वही, 31/7)

81. वित्त गान्धि विना कोऽपि हन्तुं गान्धिं न पारयेत्।
अविनश्रमातमानं को वा नाशयितुं प्रभुः।। (वही, 31/10)

82. ————————क्षमा हि परमो गुणः। (वही, 31/13)

83. पशवोऽपि वितन्वन्ति मैत्रीं मित्रीमवत्सु हि।
किं ब्रूमहे मनुष्याणां चरित्रं देवरुपिणाम्।। (वही, 34/45)

84. कुरुते केवलं यत्नान् सप्रयासं नरोभुवि।
कार्य सिद्धि परं तस्य परमात्मनिबन्धिनी।। (वही, 35/27)

85. दासश्च पशुभिस्तुल्यः पशुत्वान्मरणं वरम्।। (वही, 39/27)

86. भारतं न किलात्मानं कलकंयितुमर्हति। (वही, 49/26)

87. न शक्यः करतालः स्यादेकैनेव हि पाणिना।। (वही, 49/26)

88. उद्योगिनमुपैति श्रीरुद्योगः शान्तिदायकः।। (वही, 50/7)

श्री ताड़पत्रीकर द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

89. उर्ध्वबाहुविरौम्येष तच्छुणुध्वमन्द्रिताः।
एक्यादबन्धस्य निर्युक्तिस्तदैक्यं किं न सेव्यते।। (गान्धिगीता, पृ. 12)

90. वन्दे मातरमित्येव राष्ट्रमन्त्रः सनातनः। (वही, पृ. 12)
91. गतानुगतिको लोको न लोक परामार्थिकः। (वही, 1/14)
92. कार्याकार्य विचारेषु रमन्ते न जनाःक्वचित्। (वही, 1/20)
93. विस्तीर्ण भारतं वर्षनानाजनपदैर्युतम्। (वही, 1/22)
94. कार्यं सिद्धयति यत्नेन दैववादः सुदुर्बलः।। (वही, 1/32)
95. शासनं विहितं राष्ट्रे यलपरैस्तन्न सॉख्यदम्।। (वही, 1/39)
96. युद्ध तुल्यबलैर्युक्तं विषमैर्न सुखावहम्।। (वही, 1/56)
97. पारतन्त्र्यनिविष्टानां दीनानां दास्यपीडया।
संशयं यास्यमानानां को लाभो जीवितेन वै।। (वही, 2/7)
98. पारतन्त्र्ये ह्यनर्थानां जायते हि परम्परा। (वही, 2/20)
99. यत्र जन्मास्य भवति यत्र संवर्धनं तथा।
स्वकीया यत्र चैवास्य तस्य तद्राष्ट्रमुच्यते।। (वही, 3/11)
100. यात्रास्य पितरवास्तां यत्रासंश्य पितमहाः।
स्वीया परम्परा यत्र तस्य तद्वाष्ट्मुच्यते।। (वही, 3/12)
101. न राष्ट्रं केवला भूर्मिन लोकोऽप्यथ वा क्वचित्।
उभयोश्चिरसम्बन्धे राष्ट्रमित्यभिधीयते।। (वही, 3/14)
102. यथा माता तथा राष्ट्रं यथा सर्वेश्वरोऽपि वा।
प्रेमणादरेण सेव्याश्च धर्म एष सनातनः।। (वही, 3/15)
103. राष्ट्रोद्धारे यत्नपरा राष्ट्रीयाः सर्व एवं ते। (वही, 3/16)
104. कलहं वे स्वकीयेषु नेव कुर्यात्कदाचन।
कलहो राष्ट्रनाशाय भवतीति सुनिश्चितम्।। (वही, 3/19)
105. राष्ट्रच्छिद्रं हि कलहो मू तं प्रशमं नयेत्। (वही, 3/19)
106. वैरिणोऽपि गुणा ग्राह्या इति प्रोक्तं सतां मतम्। (वही, 3/47)
107. एक धर्मेण सम्बद्धा जन्मभूमयां विहारिणः।
सर्वे वयं हिन्दपुत्राः संभूयैव यतामहे।। (वही, 3/55)
108. मृतस्यापि पुनर्जन्म सृष्टिचक्रे नियोजितम्।
तस्मान्मृत्युभयं त्यक्तवा स्वकर्तव्ये मतिं कुरु।। (वही, 5/3)
109. किन्तु संधे समुद्भूता सत्तवशक्तिर्बलीयसी।। (वही, 5/7)
110. आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मेव रिपुरात्मनः।। (वही, 5/15)
111. एकीभूतं यदा राष्ट्रं स्वां वृत्तिमनुतिष्ठति।
परकीया अपि तदा मानयिष्यन्ति तत्कृतिम्।। (वही, 5/20)
112. राष्ट्रकार्यार्थमैक्यं हि सर्वेषां सुखदायकम्। (वही, 8/49)
113. तावत्सेवा प्रकर्तव्या यावद्राष्ट्रविरोधिनी। (वही, 9/24)
114. व्यक्ति धर्माज्जाति धर्मो राष्ट्रधर्मस्ततो महान्। (वही, 10/4)

115. सेवमानैर्विधर्म्यानां स्पर्शमाहारमेव च।
स्वकीया अपसार्यन्ते धिगेषा भारते स्थितिः।। (वही, 10/28)

116. राष्ट्रधर्मे तु भेदानामवकाशो न विद्यते। (वही, 10/29)

117. समाना बन्धवः सर्वे जन्मभूमि निवासिनः।
सामान्यधर्मो यस्तेषां स राष्ट्रे प्रथमः स्मृतः।। (वही, 10/30)

118. उपेक्षा नैव कर्तव्या राष्ट्रेशत्रोरणोरपि। (वही, 10/34)

119. ममत्वं यस्य वै राष्ट्रे स सर्वेरपि पूज्यते। (वही, 10/38)

120. संघशक्तिर्हितकरी राष्ट्र सैव सदैष्यते। (वही, 10/41)

121. आचारे च विचारे च स्वकीयानां हितं सदा।
यः साधयेद् यथाशक्तया स राष्ट्रीय इति स्मृतः।। (वही, 10/43)

122. राष्ट्रधर्मस्य महात्यं स्त्रियः संवर्धन्ति हि। (वही, 0/53)

123. स्वदेसो सौख्यमतुलं परराष्ट्रेषु मान्यत।
स्वराज्यफलमेतच्च अमृतं स्वादु खादत।। (वही, 11/98)

124. राष्ट्रधर्मविरोधेन स्वधर्मस्यानुपालनम्। (वही, 12/18)

125. स्वधर्माचरणेनापि राष्ट्रकार्य न दुष्करम्।
परधर्मासहिष्णुत्वं तत्त्याज्यं सर्वथा जनैः।। (वही, 12/22)

126. लोकसंग्रहमुद्दिश्य राष्ट्रकल्याणमीप्सुना।
वर्तितव्यं सदा राष्ट्रे विचार्यैव यथार्थतः।। (वही, 13/1)

127. कलहेनैव राष्ट्रस्य हानिः सर्वत्र दृश्यते।
अनायासेनेरतेषां लाभस्तत्रैव सिध्यति।। (वही, 13/1)

128. नेता एव सदा स्वार्थबुद्धिर्भीत्येव वर्तते।
तदा लोका भवन्तीह स्वकर्तव्यपरांगमुखाः।। (वही, 13/20)

129. प्रारब्धं कार्यमेवेह नान्तं किंचित्समात्नुते।
अपूर्ण त्यजते लोकेर्विमूढैर्विघ्नसंशयात्।। (वही, 15/4)

130. लोभातीतो भयातीतः स्वीकृते कृतनिश्चयः।
कार्यसिद्धिं समुद्दिश्य यतते पुरुषोत्तमः।। (वही, 15/6)

131. राष्ट्रकार्यपरा बुद्धिः कर्तव्या त्यागशालिनी।
कार्यसिद्धिश्च महती तामेव स्यात्समाश्रिताः।। (वही, 18/43)

132. ऐक्ये सिद्धे हि राष्ट्रस्य कोऽन्यस्तदहर्षयिष्यति। (वही, 18/66)

133. बलं बलवतां चापि वर्धते सुतरां दृढम्।। (वही, 20/6)

134. लोका अप्यनुशोचन्ति दृष्ट्वावस्यां दुरावहाम्।। (वही, 20/51)

135. अखण्डं भारतं वर्ष तिष्ठत्विति मनीषया।। (वही, 21/42)

136. प्रतीकारो न हिंसाय हिंसाय युज्यते त्विह। (वही, 23/20)

137. अक्रोधेन जयेत्क्रोधमिति धर्मानुशासनम्।। (वही, 23/21)

भगवदाचार्य द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

138. यदा–यदा हि धर्मधियः पराहताः सदा सदा तत्र परात्परः प्रभुः।
अवतारद्धर्मपथव्यवस्थितं विनिर्ममे नन्ततनुः पुनः पुनः।।
(श्रीमहात्मागान्धिचरितम्, वही, 1/7)

139. भविष्ये प्रभविष्णूनां परिपाट्या गुणागमः। (वही, 3/23)

140. शीघ्रता नैव कुत्रापि शोभाया आस्पदं भवेत्।। (वही, 3/42)

141. नाशयन्ति जनाः नूनं विषं पीत्वा विषाशरम्। (वही, 3/46)

142. भव केन पराजितः। (वही, 3/47)

143. देशरक्षां पुरस्कृत्यं जगद्रक्षां च यो विभुः।
ईश्वरोऽत्र समायातः सः कथं निष्फलों व्रजेत्।। (वही, 3/59)

144. मांसाहारेण नश्यन्ति शीघ्रमेव व्रणादयः। (वही, 3/63)

145. बलं प्राप्य विदेशीय विजिगीषेव कारणम्। (वही, 3/67)

146. परन्तु देवेन विचारितं यत्कथं च तन्निष्फलतां समेत। (वही, 4/15)

147. यो मानभंग सहते मनुष्यो वृथा प्रथिव्यामिहि तस्य सत्ता। (वही, 4/25)

148. सहस्त्राधाऽप्यापचरितैः प्रयत्नैर्वार्या न रेखा परमत्र देवा।। (वही, 4/32)

149. तदाज्ञयैवैष उपक्रमो यत्। (वही, 4/44)

150. प्राणास्त्यजेयुर्न हि मानमीश्वराः। (वही, 5/7)

151. शौर्य तदैवातिमहत्प्रशस्यतां धत्ते यदल्पे न दधाति मूर्छनाम्।
दुष्टा न चेत्स्युर्ननु साधुपुरषव्यक्तिः कथं स्यादथ मर्स्यभूतले।।
(वही, 5/1)

152. अस्यां जगत्यां बलराजमाश्रिता दीनान्सदैव व्यथयन्ति दुर्जनाः।
तस्मात्समुद्धारयितुं च निर्बलानीशात्परः को दधते मनस्विताम्।।
(वही, 5/31)

153. चिन्ताकुले चेतसि धीरता भृशं संजायते सत्पुरुषस्य सर्वदा।
(वही, 5/36)

154. स्वार्थस्य राज्ये प्रसृते विचिन्तनं हानेः परार्थस्य न कुर्वते जनाः।
(वही, 5/44)

155. सत्यस्य हेतोर्वचनं गुरुणामपि प्रहेयं भविता सदेति। (वही, 6/3)

156. न प्राणिहिंसा च कदापि कार्या द्वेषां न कार्यः प्रतिपक्षभाग्म्यः।
प्रेम्णेव जेया निजवैरिणोऽपि सदा तदावासिभिरर्चनीयैः।।
(वही, 6/4)

157. हस्तेन वीतानि विनीतभावैः ग्राह्याणि वासांस्यखिलैः सदेति।
(वही, 6/11)

158. न जातिभेदाः परमत्र मान्या निरर्थका हानिकराश्च सिद्धाः।।
(वही, 6/16)

159. देवेन संवर्धितगौरवस्य तदेव रक्षां सततं करोति। (वही, 6/34)

160. पतनोन्सुखतां गमिष्यतो मतिख्याकुलतां भजेत नो।। (वही, 7/12)

161. जगदीशसमीहितं नरः परमार्ष्टु न हि कोऽपि शक्तिमान्। (वही, 7/44)

162. हरिरेव रिरषाक्षिधदि स्वजनंकंचनबाहुर्भिर्निजैः।
परिपीडयितुं न सत्पथप्रतिपत्रं क्षमते परः क्वचित।। (वही, 7/50)

163. समयं मतिमानुपस्थितं ह्युपययुंके न च कः समृद्धये।। (वही, 7/55)

164. या या प्रजा जगति वृद्धिपथं प्रपत्रा।
सोढ्वैव दुःखनिचयं बहुशोऽपि साऽपि।। (वही, 8/17)

165. ये सत्यजन्ति समयाः स्वकृतां प्रतिज्ञां।
हेया भवन्ति ननु देशनृपेश्वरेस्ते।। (वही, 8/19)

166. ऊरीकृतस्य समयस्य निपालनार्थं।
प्राणार्पणादिमिरपीह भवेत सज्जाः।। (वही, 8/23)

167. यः स्वात्मशक्तिमनुसृत्य युधं विघत्ते।
स्यादेव तस्य नितरां विजयो महीयान्।। (वही, 8/34)

168. यो नो बिभेति मरणाद्विदितास्मतत्त्वः
स क्षत्रियः स्वजनिभुमिसुतः स एव। (वही, 8/35)

169. दुःखेर्विना ल लभते मनुजोऽत्रकोऽपि
लोकोत्तरं सुखमिति प्रथमं विचार्य। (वही, 8/40)

170. सत्यात्परो न परमोऽस्ति विशुद्धधर्मो
रक्ष्योऽत्र धर्मभगवानखिलैर्मनुष्यैः।। (वही, 8/42)

171. ये धर्मरक्षणपरा न पराजयोऽस्ति
तेषां क्वचित्र च विपत्ति समागमोऽपि।। (वही, 8/43)

172. कस्मै स्वकल्याणवचो विशुद्धमनः समेताय हि रोचते नो। (वही, 9/30)

173. साम्राज्यदोषानपनेतुकामेरस्माभिराशक्ति महाप्रयत्नः
सम्पाद्य एवेति समागतोऽसौ कालोऽथ यूयं भवताधि सज्जाः।
(वही, 11/9)

174. अहिंसया साधयितुं च शक्यं तद्यत्र साध्यं जनहिंसयाऽद्य। (वही, 11/49)

175. ज्ञात्रैव यद्दुःखमुपार्जितं स्यात्कथं च दुःखाय भवेत्तदद्धा।
समीहिंत काष्ठविकर्तनं चेद् दुःखाय न स्यात्तपीति सत्यम्।।
(वही, 12/11)

176. स्वार्थान्धवृत्तिप्रचयार्चितानां प्राणार्पणेनापि विपत्पदेऽति।
महोकारोऽपि कृतश्च कैश्चिन्मनः प्रसादाय न बोभवीति।। (वही, 12/14)

177. यथाकथंचिज्जनिजभूमि रक्षा कार्येति युष्माकमभीप्सितं स्यात्।।
(वही, 12/25)

178. भंगोऽत्र शान्तेर्न कदापि कार्यः सत्यम् सदा प्राणपणेन रक्ष्यम्।(वही, 12/27)

179. श्रेयः समाराधयितुं स्वजन्मभूमेरनेकं कुशलाः मिलेयुः। (वही, 12/30)
180. प्राणाधिकं गौरवमैव हृद्यम्। (वही, 12/39)
181. ये स्वार्थमेय परिपालयितुं विदन्ति
नो वा परार्थमिह ते परमा जघन्याः।। (वही, 16/5)
182. यः सत्करोति वचसा प्यधमान्मनुष्या –
न्योऽपि व्रजत्यधमतामिति निर्विवादम्।। (वही, 16/16)
183. नोदेति शक्तिरखिलेषु जनेषुताव
त्संवर्तितुं ह्यवसरेऽस्ति च सत्यमेतत्।। (वही, 16/24)
184. कर्मकिञ्चत्र प्ररोचते नैव कार्यमिह कैश्चिदैव तत्।
कैश्चिदप्यथ भयैः क्रियते तत्कारकाश्च दुरतिं समाश्रयेत्।। (वही, 17/15)
185. कुतो बुद्धिरस्तु जडतापताडिये।। (वही, 17/22)
186. नैव पामरजनो विचारयेत्स्वार्थहानिमपरस्य चोत्रतिम्।। (वही, 17/42)
187. विभेंदभेद प्रवृत्तिरेवास्तु महाजनानाम्। (वही, 18/11)
188. यत्ष्ठीवितं ज्ञानपुरस्सरं तद्ग्राह्यं पुनर्नेव कदापि विज्ञैः। (वही, 18/34)
189. यशोधनैः सन्ततसावधानै रक्ष्या स्वकीर्तिः सकलैरुपायैः। (वही, 18/54)
190. जिह्वावतां तु सर्वेषामुपदेशो न दुर्लभः।
दुखापोपदेष्टुं सा योग्यता किन्तु केवलम्।। (वही, 20/19)
191. कार्य तदेव कर्त्तव्यं सर्वेषां यत्सुखप्रदम्। (वही, 20/44)
192. क्षुधितस्तृषितो वापि ग्रामाद्ग्रामं वनाद्वनम्।
अटन्स्वराज्य कामोऽहं मृत्युमालिंगतास्म्यलम्।। (वही, 20/62)
193. सिसन्देहं समायाता यूयं प्रेम पुरस्सराः।
परंतु परमैः स्वेष्टं विना दुःखेर्न चाप्यते।। (वही, 20/97)
194. अधमजनविशोभिस्वेच्छयष्टि प्रहारे–
रपि भवति निरुद्धं चेतदास्कन्दनं नः।। (वही, 21/57)
195. ध्वजो भवतु रक्षितोऽयमखिलैः स्वदेशहितकामुकेर्नश्वरैः। (वही, 22/47)
196. मृत्योः पूर्वं न कोऽप्यत्र सुखसाम्राज्यभोगिताम्।। (वही, 24/59)
197. अस्पृश्त्वविनाशेन निष्कलंकं जगद्भवेत्। (वही, 24/76)
198. चरित हि शुद्ध मनसा तपः क्व नो
फलमादधाति सुपथि प्रधावताम्।। (वही, 25/25)
199. परं हितं न पश्यन्ति नं श्रृण्वन्ति गतायुषः।
साध्वाचारं प्रपद्यन्ते नेव कालवंश गताः।।
(पारिजातापहार, 1/22)
200. सन्तो हि विषहन्ते नो कचितपापकदर्थितम्। (वही, 1/75)
201. केनापि सार्ध सहयोगभंगो धर्मोऽस्ति सत्याग्रहिणामयं हि।। (वही, 2/30)
202. स्पृश्यो भवेदेष न चैष एषा दुर्भावना सर्वजनैपौहया।

दुरोग ऐषोऽस्ति समाजहानि प्रदो नृवंशस्य महत्तवधाती।। (वही, 2/41)

203. यदेयमस्माकमुरुक्रमा भवेद्धरा स्वतन्त्रता भगवत्कृपा बलात्।
यतेत विश्वस्य सुखाय शान्तेय निजार्थस्तुष्यति नो महाजनः।। (वही, 3/13)

204. क्षणे क्षणेदः परिवर्तते जगत्र जातु किंचित्सततं स्थिरं भवेत्।। (वही, 3/19)

205. गुरौ कदापि आक्रमणं न हि युज्यते। (वही, 3/21)

206. चिरं न तिष्ठेदसतामसद्वचो खावुदीते न कुहा श्रयेस्थितं।। (वही, 3/29)

207. समे मनुष्याः समवेत्य भारतः सहैव सत्स्यन्ति यथा सहोदराः। (वही, 3/31)

208. क्षतेः क्षतिः स्यादिति लोकगीतिका।। (वही, 3/33)

209. हिंसेतरे रम्येतरे च शासने सर्वप्रजानां वचनं भवेच्छ्रुतुम्।। (वही, 4/4)

210. पीडा परं सा क्षममेव तिष्ठतिच्छाद्यो हि वहिनवसनेन नो चिरम्।। (वही, 4/5)

211. पीरं न चार्हेत्कथमप्युपेक्षम्। (वही, 4/6)

212. गलद्धियो श्रेयो न पश्यन्ति निजं कथंचन। (वही, 4/22)

213. नोदेति दीनेषु दया कृतांहसाम्। (वही, 4/24)

214. द्रव्यं पुरस्कृत्य भयं प्रदर्श्य वा को नाम विदेत न सिद्धिमात्मवान्।। (वही, 4/39)

215. सत्यं न कालतिगमं सहेव वे।। (वही, 4/43)

216. श्रद्धाधनं सर्वधनं प्रधानं।। (वही, 5/7)

217. नास्ति क्षमः कोऽपि विधिं निषेद्धुम् ।। (वही, 5/8)

218. दीने दधात्येव दयां महेशः।। (वही, 5/14)

219. पापेषु नोदेति सती मतिर्हि ।। (वही, 5/30)

220. मोदयेत्कं गुणिनां गुणावलिः।। (वही, 6/7)

221. बन्धवों न शोभते वीरपराक्रमोबलेः।। (वही, 6/17)

222. समेन शत्रुत्वमतीव शोभते।। (वही, 6/19)

223. गर्हिताः पथश्च्युतानामनिवारिता विपत्।। (वही, 6/44)

224. महाकुलीन इह कोपि न कस्यचित्स्यात्।
स्वातन्त्र्यमीषदपि हर्तुमलं सुशक्तः।। (वही, 7/16)

225. एतु स्वाधीनता देवी शक्तिः प्राप्नोतु न परा।। (वही, 8/80)

226. मानवीयः स्वाभावोऽयं शोधितर्णऽधमर्णके।
कृतज्ञत्वप्रकाशार्थमुत्तमर्णोऽपि सोद्यमः।। (वही, 8/87)

227. अन्याय्यकृत प्रवणेषु राजतां तथाविद्यं कृत्यमिदं कथं पुनः।
विपरीतेष्वहितेष्ववनुपुग्रहः प्रदर्शनीयो महतां पथि स्थितैः।। (वही, 8/2)

228. विवार्य चार्वाचरिते कुतो भवेनमनो मनागप्यनुतापसंहितम्।। (वही, 8/11)

229. विवेकदृष्टिर्मदिनां न संभवेत्।।

230. न क्रीतदासैः विजयो भविष्यति।। (वही, 8/28)

231. न बार्धके तिष्ठति मन्त्र औषधे ज्वलेच्छिखावान्त्यवसाय संचयैः।।
(वही, 8/34)

232. देशं कालं विचार्यैव कर्तव्य व्यवहृतिः सदा।। (वही, 11/30)

233. स सुरो नरोपि नहि कुर्तुमीदृशं हृदयर्तिकृतप्रधनमेतदाससुरम्।।
(वही, 12/7)

234. न हि मानभंगगणना विचार्यते।। (वही, 12/13)

235. गतिलाधिनेतिकवला वनेचरा अनुयान्तिमार्गसमतां निषेवितम्।।
(वही, 12/14)

236. अथ सैनिका अपि नोखिलाः पशुधर्म सेवनपरा गतत्रताः।
पवनाशना विषधरा न वा समा विषिणोपि दंशकुशला न चाखिला।।
(वही, 12/25)

237. कठिने ह्यनेहसि यदा हितैषिणः कथमप्यलं न परिरक्षणे तदा।
परमेश एवं कुरुते सहायतां निखिलं प्रविश्य जगदेक रक्षकः।।
(वही, 12/28)

238. यश्च स्वात्मबलं तथा प्रभुबलं स्वीकृत्य संजीवति,
श्रेयः सर्वमुपाश्नुते स नितरां सीदत्यथानीश्वरः।। (वही, 12/46)

239. शासनं परदेशानामत्यनिष्टं स्वरूपतः।
प्रजाक्षयकरं चापि यद्यपि स्यात्सुशोभनम्।। (वही, 13/6)

240. पारतंत्र्यं गतोऽस्माकं देशः स्वस्याद्य रक्षणम्।
संविधायतुं न शक्नोति मानरक्षण पूर्वकम्।। (वही, 23/7)

241. स्वातन्त्र्यं भारतस्याद्य सर्वथाऽपेक्ष्यते शुभम्। (वही, 13/11)

242. पारतन्त्र्य महासर्पमहाविषविमूर्च्छिता।
भारतीभूमिरचामेत्स्वातन्त्र्यामृतयम्।। (वही, 13/12)

243. यावद्विदेशि राज्यं स्यादत्र तावत्र तत्सृतिः।
विभज्यैव प्रजा राज्यं कर्तुमस्यास्ति पद्धतिः।। (वही, 13/34)

244. देशाधिकारः श्रमिकाणां कृषकाणां भवेदिति। (वही, 13/40)

245. स्वातन्त्र्यप्राप्ति मार्गेषु प्रसूनानि भवन्ति नो।
कण्टकेस्तीव्रशूकाग्रेर्त्यापृताः सन्ति ते पुनः।। (वही, 13/46)

246. यावच्छक्यं प्रजाभिः स्यान्मृग्यः पन्थाः शमस्य हि। (वही, 13/75)

247. पराभवो निजारीणां धर्म एव नृणां मतः। (वही, 14/12)

248. येन हेतुना पतन्ति संकटानि मावे,
नास्ति तैव तस्य तानि दूरतः क्षिपत्यलम्।। (वही, 16/6)

249. अप्रतीत एवं सर्वथैष रोग आस्थितः।
स प्रतीयमानतो भयंकरो महान् खलु।। (वही, 16/17)

250. ह्यामिषांशसक्तया पतत्रिणां रामागतिः। (वही, 16/19)

251. असत्यं वस्तु सदिति धारयतु बलादिव।
प्रयत्नः शोभते नैव सखित्वस्य कथंचन।। (वही, 17/64)

252. असिर्येषां बलं तेषां................................। (वही, 17/96)

253. शैध्र्यं नैव विधातव्यं केषुचित्कर्मसु क्वचित्। (वही, 17/142)

254. मनसाखण्डश्छित्रे तस्मनपाशे तु कर्मणा।
भूमिसात्कर्तुमुद्युंक्ते, स्वातन्त्र्यं यति स ध्रुवम्।। (वही, 17/162)

255. अतः पंरचदासोऽस्मि तवेति प्रकटाक्षरम्।
स्वामिनं वक्ष्यतीदंयः सोभयो निर्गतव्यथः।। (वही, 17/163)

256. स्वातन्त्र्यं जीवनं प्रोक्तं पारतन्त्र्यं मृतिस्तथा।
कदाचित्रैव जीवन्ति भीतिरीति पराहताः।। (वही, 17/171)

257. मृत्युमालिंगितुं शक्तः समवाप्तुं कलां पराम्।
जीवितस्य विजानाति व्यपेताद्यलवय हि।। (वही, 17/172)

258. युद्धेस्मिनास्ति कर्तव्यं प्रगुप्तं कर्म किंज्चन।
गोपयित्वा कृतं कर्म पापायात्र भवेदलम्।। (वही, 17/161)

259. स्वतन्त्र्ये सज्जनैः कैश्चित्कर्म गुप्तं न किन्चन।
क्रियेताय क्रियेतापि पश्चात्तापेन दहयते।। (वही, 17/263)

260. यावच्छक्यं निजां शक्तिमवियनब्रुह्मचारिषु।
लभते नियतं सोऽत्र पवित्रं परमं पदम्।। (वही, 17/273)

261. स्यादिदं लाधवायेव मित्त्राणं परिवर्जनम्।
न न्यक्कुर्तुं समर्थोऽस्मि स्वन्तरात्मध्वनि परम्।। (वही, 19/53)

262. काले विसंकटापत्रे मनुष्य प्रकृतौ स्थितौ।
सत्यं निरीक्षतुं शक्ता भद्रता भवति ध्रुवम्।। (वही, 19/71)

263. धिक्पराधीनवृत्तिम्।। (वही, 20/4)

264. ओषधं भवति न भ्रमाय हि।। (वही, 22/19)

265. स्वार्थसाधननिरन्तराररताः सर्वमेव वदितुं क्षमाः सदा। (वही, 22/41)

266. हन्तभाग्यविपरीततां दधत्कः शिवाय कुरुतेत्र सत्क्रियाम्।। (वही, 22/53)

267. कथमंगीकृतं त्याज्यं सतां विशदबुद्धिना।। (वही, 23/21)

268. सत्याग्रहं विजानाति न कदाचित्पराजयम्। (वही, 23/49)

269. सर्व एव भरस्तिष्ठेदुपकमविधातृषु।
परिणामस्तु सकलेरुपक्रान्तस्य भुज्यते।। (वही, 23/90)

270. तत्रिर्णयेनापि न संसदोस्या नीतौ कदाचित्परिवर्त एति।
हिंसा मता तद्दृशि दोषराशेः सदैव पोषाय शिवाय नासौ।। (वही, 25/20)

271. तन्निर्णयेनापि न संसादोस्या नीतौ कदाचित्परिवर्त एति।
हिंसा मता तद्दृशि दोषराशेः सदैव कोपीह न नीतिमान्भवेत्।।
(पारिजात–सौरभम्, 1/67)

272. अनवरतं य इहात्मलाभलोभा–
च्चरति किमप्यथवा ब्रवीति सर्वम्।
भवति तक्ष्त्र नोविषादहेतुः
प्रभवति तस्य सुखाय शान्तये नो।। (वही, 1/73)

273. न दुःखिनो ज्ञानपरम्परा भुजः।। (वही, 2/1)

274. सर्वकंषं हि दैवस्य को बाधते समीहितम्।। (वही, 3/11)

275. मनो हि यस्यास्ति नियन्त्रितं परं रुजा विहीनं च कदाप्यससौ न हि।
निरामयत्वाच्च्युतिमेत्य संपतेद्भवाधिकारे सहसा महाबलः।।
(वही, 4/16)

276. परं वियोगानल इष्टबान्धवान्दहत्यजस्त्रं नियतेति पद्धतिः। (वही, 4/27)

277. पवित्र भावेण समर्चितो महाजनः फलं यच्छति देवतापिवा।। (वही, 4/35)

278. हृदयतो यसता हि शिवं यदि न लभ्यत ईहितमात्मनः।
किमपि तत्र न लोक्यत ऊर्चितं परिशुचं कटु बीजमतो ह्रियः।।
(वही, 5/4)

279. सफलतापि च निष्फलतापि चप्रभवतो मितये न कदाचन।
प्रयत्नस्य जनस्य हि कस्याचित्रिखधिह्यथ सास्तु सहावधिः।।
(वही, 5/5)

280. परमनिष्ठुर मानस मानवा अचिरतो न भवन्ति दयालवः।
परमयत्नभरः समपेक्षितः फलनिन्द्यमभीप्सितमालप्स्यते।। (वही, 5/7)

281. नास्ति कोऽपि समयो विसंकटस्तस्य यो न विजिहिंसते परान्।
(वही, 6/16)

282. ते भवन्तु पुरुषा अथ स्थियो मार्गयन्तु भगत्सहायताम्।
एक एव जगदीश्वरो महान्सर्वजीसुहृदस्ति निर्मलः।। (वही, 6/17)

283. जाड़यतो भवति चेत्समागमः स्वीय बन्धुषु विपत्पयोनिधेः।
रोधंनीय इह लोखिलैर्जनैरेष एवं महतां महान्गुणः।। (वही, 6/57)

284. येषां तदन्तःकरणम् पवित्र त एव संशोधयितुं परेषाम्।
मनोति सूक्ष्मं दुरधं क्षमन्ते नान्यः स्वयं सन्तमसावलीढः।। (वही, 8/7)

285. सर्वान्तरात्मा परमात्मदेवः शक्नोति बोद्धुं जनमानसानि।। (वही, 8/18)

286. नो गौरवं चिरतरार्जितमेतु नाशं,
न ख्यातकीर्तिकलिका मलिनास्तु सद्यः।
देशस्य तद्धि सकलैः सुविचार्य कार्य
पन्था अयं सुकृतिनां च यशोधनानाम्।। (वही, 10/30)

287. हत्वा द्विषद्भणमिहास्ति जिजीविषाचे,
च्छक्नोति जीवितुंसुमपापमयं न कोपि।
मृत्वा प्रसत्रमनासारिहितानुबन्धी,
लोकं समर्जयति पुण्यतमं नितान्तम्।। (वही, 10/31)

288. आर्यत्वमेवेदमुदारभावैर्मिस्त्रायितं चेद्द्विषतां कुलेषु।
दुष्टेषु दुष्ट त्वमुदाहरद्भिमहिर्षमार्गादपहीयते हि।। (वही, 11/7)

289. अन्याय्यमायेन कदापि कर्तु शक्यं विरोधने हि पूर्वजानाम्।
स्वार्थस्य सिद्धि रघुनन्दनीयपादाब्जयुग्मं सततं स्मरद्भिः।। (वही, 11/8)

280. शत्रुष्वपि प्राणपरायणेषु कार्या दयेत्येव मनुष्यधर्मः। (वही, 11/18)

291. धर्माय धर्मोऽत्र निषेवणीयो नान्येन केनापि न कारणेन। (वही, 11/20)

292. नासावुपायः कलिरोधनार्थ हिंसा कलेवृद्धिकरी मतास्ति।
दोषेण दोषो न भरेदुदस्य पंकेन पंक व्यपनीयते नो।। (वही, 11/27)

293. क्षान्ति विभूषा बलिनामपूर्वा निर्बलानां शरणं कदाचित्। (वही, 11/38)

294. राज्यं विदेशीयमसहयमेव। (वही, 11/53)

295. अस्थीनि देहस्य ममेह युष्द्भुमो पतेययुर्यदि वान्यतोपि।
चिन्ता न मे चुम्बति चित्तवृतिः सर्वत्र मे भारतमृत्तिकैव।। (वही, 11/76)

296. भवे भवेदेकजनोपि सत्यभाग्यभवेद्भवे तावदजस्त्ररक्षणम्। (वही, 12/14)

297. अनुकार्या हि सर्वेषाम् सद्गुणाः सम्ननीषिभिः।
दोषाः सर्वे परित्याज्या मनोमालिन्यहेतवः।। (वही, 14/34)

298. मृत्युरवान्तियं मित्त्रं मृत्युदुःखविनाशकः।
सत्कार्यश्च ततो मृत्युर्व्यर्थमेव ततो भयम्।। (वही, 14/149)

299. जन्मनो मरणाच्चापि यावज्जन्तुर्न मुच्यते।
जीवत्रिव मृतोपि स्यात्कार्य सिद्धया असंशयम्।। (वही, 14/156)

300. मरणं न मामस्ति दुःखदं शरणं तत्परमं विवेकिनाम्।
मम जीवितहेतवे मनागपि चिन्ता न निषेव्यतां बुधैः।। (वही, 15/15)

301. न दया भवतामपेक्षिता परमेशोस्ति सहायको मम।
सकलाः सुहदो भवन्तु चेदबलाः केवलमेष रक्षकः।। (वही, 15/21)

302. गुणवद्धृदये गुणाः पदं निद्धीरत्रितरां न किंच्जन।
इह चित्रमिति प्रसन्वतां गुणसंग्राहकता हि बन्धवः।। (वही, 15/40)

303. नियतौ विधिना विलेखतं निपुणोपि प्रतिवर्तयेत कः। (वही, 17/18)

304. विधुरिच्छति कर्हि चित्र हि द्युमणेः कापि वियोगः।। (वही, 8/7)

305. सर्वान्तरात्मा परमात्मदेवः शक्रोति बोद्धुं जनमानसानि।। (वही, 8/18)

306. श्रुति सिद्धान्तवतां न भिन्नता ।। (वही, 15/18)

307. महतां मृत्युरपीह सत्क्रियः ।। (वही, 17/53)

308. अजरस्य यतो विनश्वरं न हि संतिष्ठत आशु नश्यति । (वही, 17/63)

309. चलितान्सुपथो निरीक्ष्य को निजशिष्यात्र हि खद्यते गुरूः ।।(वही, 18/81)

310. का भीतिः सहृदो भवेत् ।। (वही, 18/37)

साधुशरण मिश्र द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

311. स्वधर्मपालनं कार्य प्रार्णैः कण्ठगतैरपि ।
कल्याणं जगतान्चेति विद्धि मानवताफलम् ।।
(श्रीगान्धिचरितम्, वही, 1/32)

312. रत्नैः रत्नाकरः प्रीत्याऽपूजयत् पुलिनार्पितैः ।। (वही, 1/49)

313. भेषजं शमयेद् रों न च मृत्युमुपस्थितम् ।। (वही, 1/103)

314. कण्टकं कण्टकेनैव जनेयद् रोगं न च मृत्युमुपस्थितम् ।
विषचांपि विषेणाशु शाम्यतीति विभाव्यताम् ।। (वही, 1/124)

315. जलधरे बहुवर्षति दुर्दिने भवति यस्य गर्तिनहि विध्निता ।।
(वही, 4/6)

316. शरीरमेतत् खलु सर्वसाधनम् ।। (वही, 5/5)

317. ततो गुणानामशितानुलक्षणः समुद्भवः सा प्रकृतिर्बलीयसी ।
(वही, 5/22)

318. अतोहि रत्नेन च रत्न संगमः प्रमोदय शरीरिणां मतः ।। (वही, 5/53)

319. स्वातंन्त्र्य सदृशं नास्ति सुां किमपि भूतले ।। (वही, 6/30)

320. महात्मनां संगतिरेव लोके, सर्वाधिकाभीष्टप्रदात्री।
यत्सेविनः सन्तमसं निरास्य, प्रदीपवद् ज्ञानमुदेति जन्तोः।। (वही, 7/18)

321. सहस्त्राशुं विना लोके दिनकृत को हि कथ्यते। (वही, 8/44)

322. लोकोपकारव्रतमेव धीमान् श्रेष्ठः सतां पुण्यतमोहि धर्मः।। (वही, 8/195)

323. करैरिवार्कस्य तमः प्रकाण्डं किं स्यादकार्य तितव्तानाम्।। (वही, 9/6)

324. परार्थः वृत्तिः परमं सुखं सेत्येवं सतां गूढ़रहस्यमस्ति।। (वही, 9/7)

325. शत्रौ च मित्रे च समा प्रवृत्तिर्दयालुता चापि न पक्षपातः।
शरण्यतापत्रजनेष्वतीदं महात्मनां सौम्यनिसर्गसिद्धम्।। (वही, 9/8)

326. पूर्व नरत्वमिह दुर्लभेव लोकाः
वह्वीषु योनिषु सतीषु पुरार्जितेन।
तत्प्राप्यें'पुण्यनिवहेन विवेकमूलं,
धर्मेण साधु सफलं सकलं नराणाम्।। (वही, 10/13)

327. न सत्याग्रहसम्मुखतस्ता शक्ति र्हि काचिज्जगतीतलेस्यात्।। (वही, 12/49)

328. ....मक्त्येकवश्याः हि भवन्ति सन्तः।। (वही, 14/2)

329. सुदुर्बलात्रो बलिनो हि लोकाः प्रपीडयेयुर्मनसापि केचित्।
परस्त्रियो मातृवदेव पूज्या ततोऽन्यथा दण्डविधिर्नराणाम्।। (वही, 14/27)

330. धर्मेण जीवनं लोकाः सार्थकं देहिनां मतम्।

ततो विहीनवृत्तीनां प्राणिनां पशुता ध्रुवम्।। (वही, 15/15)

331. लोककोपानलश्चण्डो न प्रशाम्येत् कदाचन्।। (वही, 15/112)

332. पारतन्त्र्यं न सोढारो निजगौरवमानिनः।। (वही, 15/139)

333. स्वराज्यदानमैवैभ्यः शुभोदक विभाति नः।। (वही, 15/143)

334. कार्य शुभं विघनशतैवश्यं विहन्यमानं भवतीति दृष्टम्।। (वही, 16/14)

335. रत्नं यथा दुर्लभेव पूर्व प्राप्तस्य रक्षा कठिना ततोऽपि।
तथा स्वराज्यं दुखापमेतत् रक्षास्य गुर्वीति विभावनीयम्।। (वही, 16/52)

336. विनेश्वरं कः प्रभवेत् विधातुं सृष्टिं मनसोप्यगम्यताम्। (वही, 16/57)

337. सुजन्मनां स्यात् परमार्थ सिद्धिश्चान्ते च मोक्षस्त्वपुनर्भवाय। (वही, 16/63)

338. सत्यं त्वहिंसा परमोस्ति धर्मः स्वयं न हिंस्यात् प्रतिहिंसको वा।
सत्त्वांस्तु हिंसाभिरुचीन् जिघांसून् दीक्ष्यात्मरक्षां क्षमया विदध्यात्।।
(वही, 17/55)

339. पुंसां क्षमा नाम महास्त्रमु क्तम् शान्तात्मनां शेवधिरक्षयिष्णुः।
तपः पवित्रं च तपस्विनां सा मोक्षार्थिनां मोक्षपथं सुदिव्यम्।। (वही, 17/56)

340. धर्मः साक्षाद् हरेमूर्तिः सर्वव्यापी सनातनः।
केवलेन तु शब्देन भिदा न क्रियमानयोः।। (वही, 18/45)

341. अवश्यंभाविभावस्तु परिहर्तुं न शक्यते। (वही, 18/48)

342. ततो जन्मततां मृत्युर्मृतानां जन्म जायते।
जन्ममृत्यु हि लोकानां भवतः सुव्यवस्थितौ।। (वही, 18/49)

343. मरणं ननु जन्मिनां ध्रुवं जनुरप्यस्ति मृतात्मनां पुनः। (वही, 19/39)

344. भवतीह नृणां यदा–यदा परमार्तिस्तु विभुस्तदा स्वयम्।
धृतमूर्तिरसौ कृपानिधि र्जगदेतत् परिपापि सर्वदा।। (वही, 19/43)

345. न हि शोधयितुं महार्णवं किमु शख्तो वनपर्णपावकः। (वही, 19/49)

श्री शिवगोविन्द त्रिपाठी द्वारा वर्णित सूक्तियाँ

346. मेधाविभिर्विश्वमिदं न रिच्यते।।
(गान्धीगौरवम्, 1/11)

347. ग्राह्या सुविधा लद्युतोऽपि नीतिः। (वही, 1/25)

348. रोगी यदिच्छेदि्हतकारिथ्यिं, तदेव दघात् सतु वैद्यराजः। (वही, 1/26)

349. भविष्णु वृक्षस्य तु पर्णपुंजः सुचिक्कणः स्यात्रहि काऽपि शंका।
(वही, 1/27)

350. परं शुभे कर्मणि विघ्नरेखा आयान्त्यवश्यम् प्रकृतिः पुराणी। (वही, 1/28)

351. बीयसी केवलं ईश्वरेच्छा, (वही, 2/38)

352. सत्यवादी सदा सुखी, (वही, 2/66)

353. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनाप्यगम्यः। (वही, 2/70)

354. "क्षमा धनुः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति"। (वही, 3/14)

355. "अस्मिन् विधौ तेपशवो हि दक्षाः।
रतावतृप्ता भवताद् गरिष्ठः।

356. "यो ब्रह्मचारी मुनिवृत्ति लीन
स पुष्टदेहो भवताद् गरिष्ठः।" (वही, 3/24)

357. यो भाविव्रतं हृदये दधाति तं वेत्तु नारायणमेव नान्यम्। (वही, 3/28)

358. "अहो सत्यमेतत्र ते वाव्रजन्ति
सुमार्गे च तस्मिन् गतो योह्यपूतैः" (वही, 3/53)

359. "सुसोपान संघे गिरन्तो जना ये
कथंकारमेते सुरक्षां लभन्ते। (वही, 3/70)

360. "कृत्यं शोध्यं कारकं नैव शोध्यो।" (वही, 4/18)

361. सत्यं सुतास्तेऽनुसरनित ये गुरुम्। (वही, 4/46)

362. न ह्येकटेकेति रैः प्रतिज्ञा
त्याज्या भवेज्जीवनमेव मोच्यम्। (वही, 5/37)

363. शान्तेरनादर परो मनुजो कदापि
सत्याग्रहस्त करणे सफलो न भूयात्। (वही, 5/43)

364. "जयो ह्यस्मदीयः सदा शान्तिमध्ये।" (वही, 5/88)

365. शिक्षा तु येभ्यो ह्यभिरोचते सदा
तेभ्यः प्रदेयानहि वानरादिषु। (वही, 5/101)

366. "मनस्येव रुग्णे शरीरन्तु रुग्णं
मनो यस्य तुष्टः स तुष्ट सदैव"। (वही, 5/138)

367. दिव्यं चक्षुर्भारते वेदरीतिः। (वही, 7/53)

368. पतिव्रतानां पतिसेविकानां
पत्युः समक्षं मरणं प्रशस्तम्। (वही, 7/55)

369. अत्रापि हिंसा यदि जागृतास्ति
कुत्रापि तिष्ठेत्किमु शान्तिरार्या। (वही, 8/30)

ब्रह्मानन्द शुक्ल द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

370. श्री शारदागीतयशः प्रशस्तिर्देशश्चिरं भातु स भारताख्यः।। (गान्धीचरितम्, पृ.सं. 1)

371. वेद–प्रभा–भासुर–भुसुरालिर्देशः स नो मंगलमातनोतु।। (पृ.सं. 2)

372. "अहिंसया सत्य बलेन चैव
कार्याण्य साध्यन्यपि यान्ति सिद्धिम्।।" (पृ.सं. 3)

373. "सर्वोपसंस्कार संयुक्ता भूमिर्दिव्यफल प्रदा।" (पृ.सं. 15)

374. स्वल्पेन किं नहि धनेन भवन्ति तृप्ताः

सन्तो विधर्मरहितेन सुवन्दितेन? (पृ.सं. 22)

375. आचारहीन–जन–जीवन–पावनाय,
वेदोऽपि नार्हतितमामिति वत्सः विद्धि। (पृ.सं. 23)

376. जानातीको वा जनकर्मबन्धे
को वा विजानाति विधोविलासम्। (पृ.सं. 49)

377. बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा, (पृ.सं. 51)

378. का गौरकृष्णत्वकृतेह भतिः?
सर्वेषु चात्मा रियतः स एकः। (पृ.सं. 61)

379. "पादाहतं मूर्धनि याति धूलेजलिम"। (पृ.सं. 69)

380. "सोत्साहताऽऽस्ते विजयैकसेतुः" (पृ.सं. 76)

381. "सिंहो यदिस्याच्चिरनिद्रिती न,
को नाम तस्याभिमुखं प्रयाति?।।" (पृ.सं. 79)

382. सत्यं श्रमभ्यां सकलार्थ सिद्धिं
दिशन्ति धीरा ननु वीर धुर्याः।। (पृ.सं. 80)

383. भवतु–भवतु भूयो भारतो रामराज्यम्। (पृ.सं. 111)

पण्डित यज्ञेश्वर शास्त्री द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

384. "नोचीच्चभावैकदृशो हि सन्तः"। (राष्ट्ररत्नम्, पृ.सं. 3)

385. लोकेषणातो विरतो महात्मा, राष्ट्रैषणा–पूरतामनसोऽभूत।। (पृ.सं. 18)

386. स्वतन्त्रता सर्वसुखस्य मूलं पराश्रयो दुःखकरः सदैव। (पृ.सं. 25)

रमेश चन्द्र शुक्ल द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

387. यावत् प्रवृत्तिरिह हा विषयेषु लोके
तावद् भवेज्जगती नो जनता सपर्या। (गान्धिगौरवम्, पृ.सं. 5)

388. हास्यमि नो भारतधर्ममार्ग कृत्वा निवासं परकीय देशे। (पृ.सं. 12)

389. चारित्र्यवन्तो हि न कुत्र दृष्टाः
सम्प्राप्तलक्ष्याः पुरुषा धारित्र्याम्।। (पृ.सं. 13)

390. मातेव देशक्षितिरस्ति पूज्या छेद्या तदीया परतन्त्रतान्दु।। (पृ.सं. 43)

391. प्रेमैक्य–बन्धुत्व–गुणान् भजन्तः
सत्साहसं शौर्य शुभं प्रयन्त।
उत्साहं शुभां च धृतिं व्रजन्तः
जन्ये भवन्तोऽवतरन्तु सन्तः।। (पृ.सं. 44)

392. अस्पृश्यताया यादिनो विनाशो
नृभिः कृतः क्षिप्रतयेव राष्ट्रे।
तदा न पश्येत् स्वहितं कदापि

वसुन्धरेयं मम भारतीया।। (पृ.सं. 65)

393. न स्वच्छताकृन्मनुजोऽस्ति पापी
कार्या घृणाघेषु च नो श्वपाके।। (पृ.सं. 70)

394. मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते
चेतो विनोदयति चन्द्रमुखी प्रियेव।
निःसंशयं मित्रसमास्त्यहिंसा
कस्मात् भजन्ति न जननीमहिंसाम्। (पृ.सं. 74)

395. हिंसास्ति घोरं दुरितं धरायां
किंचास्त्यहिंसा सरसं हि पुण्यम्।
धर्मोऽस्त्यहिंसा परमो धरित्र्यां................ (पृ.सं. 75)

396. एतद्धि सत्यं विना विकासं नारीजनानां भरतावनीयम्। (पृ.सं. 81)

397. राष्ट्रस्य हत्येव विभावनीया श्वेतांगभाषा व्यवहार एषः। (पृ.सं. 83)

398. कर्तु न पारयति यत्र धनं हि कार्य
तत्र क्षमो भवति सद्गुण एवं शीघ्रम्।

399. आलस्यमस्ति बहुदोषकरं – (पृ.सं. 88)

400. गच्छेच्छरीरं निवसेद् वरं वा
मया तु धर्मो भुवि सेवनीयः। (पृ.सं. 114)

401. जयतु–जयतु गान्धी विश्वन्धो महात्मा। (पृ.सं. 125)

402. श्रयतु–श्रयतु चित्ते लोकस्तत्पथं सत्यनिष्ठम्। (पृ.सं. 125)

403. वसतु–वसतु चित्ते राष्ट्रभक्तिर्नराणाम्। (पृ.सं. 125)

404. वहतु–वहतु शश्वद् विश्वबन्धुत्व गंगा। (पृ.सं. 125)

आचार्य मधुकर शास्त्री द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

405. सुजन–कुजन संगात को न नाम संयुक्तः। (गान्धीगाथा, पू.भा., पृ.सं. 37)

406. स्वस्ति सकल मनुजेभ्यः उदग्रं सवार्थ विषं परिणाश्यतु,
जनो–जनो भ्रातृत्व–भावना भृतं सुखं परिपश्यतु।
उच्च–नीचता–मित्तिस्त्रुटयतु नीतिः सुपथं नयत् च
गान्धि–समीहित–रामराज्य–मय भारत राष्ट्रं जयतु च।। (वही, पृ.सं. 245)

407. गान्धि–वचन मुक्तावली,
जन–जन गले चकास्तु।
मधुकर शास्त्रि निगुम्फिता,
विश्वशान्ति सुखदास्तु।। (उत्तरभाग, पृ.सं. 109)

डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

408. निरुद्यमं निरुत्साहं समाजं निष्परिश्रमम्।

नेवोद्धारयितुं शक्तं साक्षाद् ब्रह्माण्ड नायकः।। (श्रमगीता, श्लोक सं. 24)

409. आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।
भगवानपि लोकेऽस्मिन् बन्धुरात्मावलम्बिनाम्।। (श्लोक सं. 25)

410. आलस्याभिभवाद् यानि न भजन्ते परिश्रमम्।
तानि शीघ्र विनश्यन्ति राष्ट्राणि सुमहान्त्यपि।। (श्लोक सं. 27)

411. श्रम एव मनुष्याणं कारणं हित सौख्ययोः। (श्लोक सं. 48)

412. जयन्ति ते कलावन्तः सन्ततं श्रम नैष्ठिकाः।
येषां अद्भुत्तनिर्माणैर जगदेतत् अलंकृतम।। (श्लोक सं. 69)

413. साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः। (श्लोक सं. 84)

414. स्वर्गता अपि जीवन्ति कीर्तिरुपेण ते भुवि।
चमत्कृता हि येर्लोका अविश्रान्त परिश्रमैः।। (श्लोक सं. 90)

415. न क्रमागत वित्तेन न जात्या सुप्रतिष्ठया।
पुरुषः श्लाध्यतां याति स श्लाध्यो यः परिश्रमी।। (श्लोक सं. 91)

416. क्षमो हि परमो धर्मः शाश्वतः सार्वलौकिकः ।। (श्लोक सं. 95)

श्री किशोर नाथ झा द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

417. "सत्यं स्वतः सामर्थ्यशालि भवति कदापि नात्र प्रमदितव्यम्"।
(बापू, पृ.सं. 8)

418. सत्यं प्रति निष्ठावतां कृते मौनं शक्तिशालि शस्त्रं भवति। (वही, पृ.सं. 11)

419. सवैरेक्यं विधेयम्। (वही, पृ.सं. 25)

420. सत्याग्रहः आत्मशुद्धिं विधेयम्। (वही, पृ.सं. 25)

421. सत्याग्रहः आत्मशुद्धिमपेक्षते। (वही, पृ.सं. 31)

422. वैधेरुपायैः स्वराज्यसिद्धे परिकल्पनायां शान्तिमार्गोऽपि निवेशितः।
(वही, पृ.सं. 32)

423. शिक्षायामधिकं महत्वमावश्यकत्वं च हस्तशिल्पस्य वर्तते। (वही, पृ.सं. 54)

424. अहमस्मत्त्रुद्योगे भ्वतां नेतृत्वभारं वहामि। किन्तु भवतां
विनितसेवकैयैवेतस्त्वीकरोमि, न सु सेनापत्येन शासकतया वा।
(वही, पृ.सं. 60)

425. विरोधिनां तुष्टये देशस्य विभजनमभवत्। (वही, पृ.सं. 70)

426. प्राचीनकालादेव समागतां सनातनीं नित्य नूतनां चास्माकं
मातृभूमिं भारतवर्पाख्यां प्रति सादरं श्रद्धांजलि समर्पयामः। (वही, पृ.सं. 72)

427. धर्मान्धता जातीय विद्वेषश्च जनेषून्मादं प्रत्यर्पयत्।। (वही, पृ.सं. 76)

श्री द्वारिका प्रसाद त्रिपाठी द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

428. अहं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। (गा.गु., पृ.सं. 11)

429. "भद्रं पश्येमाक्षभिः"। (वही, पृ.सं. 31)

430. ब्रूते प्रियं योत्र विमूढधीर्नतद्वचः स्याद्विषमेव तद्वचः। (वही, पृ.सं. 34)

431. नासदसीत्रो सदासीत्तदानीम्। (वही, पृ.सं. 35)

432. सुलभाः पुरुषा राजन् सततंप्रियदर्शिनः।
अप्रियस्य न पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। (वही, पृ.सं. 35)

433. बालाः राष्ट्रनिधयो भवन्ति। (वही, पृ.सं. 41)

434. ऋषि देशोऽस्ति भारतवर्षः। (वही, पृ.सं. 52)

435. भारतवर्ष लघुदेशो नास्ति। (वही, पृ.सं. 58)

श्री रमेशचन्द्र शुक्ल द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

436. चित्ते वाचि कियायां च साधूनामेकरुमता।
उदारचरिता नान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। (चा.च., पृ.सं. 133)

437. न्यायात् पथः प्रक्विलन्ति पदंन धीराः। (वही, पृ.सं. 135)

438. ते साध्वो भुवन मण्डल मौलिभूता ये साधुना निरुपकारिषु दर्शयन्ति।
आत्मप्रयोजनवशीकृत खित्रदेहः पूर्वोपकारिषुं खलोऽपि हिसानुकम्पा।।
(वही, पृ.सं. 135)

डॉ. बोम्मकण्ठी रामलिंग शास्त्री द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

439. अहिंसैव परो धर्मो हिंसा गर्हणमर्हति। (सत्याग्रहोदयः, 2, पृ.सं. 3)

440. आत्मवत् सर्वभूतेषु वतैतेति वचो हितम्।
अहिंसामत् एवाह गान्धि धर्मपरायणम्।। (वही, पृ.सं. 5)

441. पर्वतेन समास्कंदत्रुरम्रो नाशमृच्छति।
विरुध्यमाो बलिना दुर्बलो हन्त हन्यते।। (वही, पृ.सं. 5)

442. पिव, विहर, रमस्व.....................। (दृश्य, पृ.सं. 9)

443. सत्यमेव परो धर्मः सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः। (वही, पृ.सं. 9)

444. "सर्वे धर्माः राज्यधर्म प्रतिष्ठा"। (वही, पृ.सं. 14)

445. प्राणैरपि सदा रक्षेत् स्वातन्त्र्यं भारतवनेः
मृत्युरेव पारतन्त्र्यं स्वातन्त्र्यं ममृतं खलु। (वही, पृ.सं. 15)

446. यदा तु भारतभूमिरन्याकान्ता विषीदति।
तस्याः पुत्रान् विदेशेषु कः संमानेन पश्यति ? (वही, पृ.सं. 17)

447. साहसं परमं श्रेयः संचारः परमंफलम्। (वही, पृ.सं. 17)

448. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।
(दृश्य 7, पृ.सं. 29)

449. यदि मानवः पुण्यः कर्तुमेव न पारयति तस्य सद्गतिरेवनभवेत्। (वही, पृ.सं. 33)

450. "सत्यत्रास्ति परोधर्मः सत्यमेव जयते।" (वही, पृ.सं. 36)

451. ....संघे शक्ति कलै युगे। (दृश्य 8, पृ.सं. 41)

452. प्रांशुस्वांता महावीराः क्षमता तेषां विभूषणम्। (वही, पृ.सं. 42)

453. भार्या रिक्तागृहं शून्यमात्मा तुच्छो व्यये व्यथा।
व्याधिकरणं या त्वा को सुखनाममेधते।। (वही, पृ.सं. 43)

454. "अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च"। (दृश्य 10, पृ.सं. 61)

455. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमायोः। (वही, पृ.सं. 61)

456. "बिलानामायुधं सत्याग्रह"। (दृश्य 12, पृ.सं. 75)

457. गंडस्योपरि स्फोट इव। (दृश्य 13, पृ.सं. 81)

458. "यस्य दंडस्तस्य महिषी"।

459. यावद्भूमिरियम् तिष्ठैद् यावद्भानुर्विराजते।
यावद् सत्यमिदं भाति तावद् गान्धिर्महीयते।। (दृश्य 14, पृ.सं. 87)

श्री मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा वर्णित सूक्तियाँ –

460. यश्चपेटां प्रहरतातं दण्डैस्तस्य प्रतिक्रिया।
(गा.वि.ना., प्रथमोऽकंः, श्लोक सं. 4)

461. चारैः पश्यन्ति राजानः चक्षुर्भ्यामितरे जनाः। (वही, पृ.सं. 3)

462. कूप वा गिरितो विषे ण दहने नो दर्शयिप्ये मुखम्। (वही, श्लोक सं. 5)

463. "सत्यमेव जयते नानृतम्"। (वही, श्लोक सं. 6)

464. अनिर्वचनीय हि सत्यप्रभावः। (वही, पृ.सं. 7)

465. अनुताप एवं परमं प्रायश्चित्तम्। (वही, पृ.सं. 7)

466. मिथ्यात्मनिन्दा धिक्कार देशदौरात्म्यस दुर्गतिम्।
श्रुत्वा नौद्विजते कस्य चेतः, शोध चिकीर्षया।। (वही, श्लोक 7)

467. निरस्त्रेष्वथ शान्तेषु प्रहारः सर्वतोमुखात्।
व्यधामि यत्र तच्छौर्य कोर्यमेवोच्यते बुधैः।। (वही, पृ.सं. 5)

468. सत्योक्तिं को नाम न प्रमास्याति। (द्वितीयोऽकं, पृ.सं. 16)

469. सर्वदा सत्यस्येव जयः। (वही, पृ.सं. 18)

470. "शठेशाठयं समाचरेत्"। (वही, पृ.सं. 1)

471. नहि मूषिकास्त्रेणापि मार्जारो बध्यते। (वही, पृ.सं. 21)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार आलोच्य ग्रन्थ –

(1) बापू, एफ.सी. फिटास, डॉ. किशोरनाथ झा, गंगानाथ झा, केन्द्रय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहबाद, सं. प्रथम, 1976

(2) पारिजातापहार, श्रीमद् भगवादावार्य, श्रीमान् रावजी भाई, मेघजी भाई एवं श्रीमान कानजी भाई, मोम्बासा (केन्या ईस्ट अफ्रिका) सं. प्रथम 1951

(3) पारिजात सौरभम्, श्रीमद् भगवादाचार्य, श्रीमान् रावजी भाई, मेघजी भाई एवं श्रीमान् कानजी भाई, मोम्बासा (केन्या ईस्ट अफ्रिका) सं. प्रथम 1951

(4) चारुचरित चर्चा, रमेश चन्द्रशुक्ल, सुधाकमजल ग्रन्थालय, 264 उत्तरी गान्धी कॉलोनी, मुजफ्फरनगर–251001, 1970 ई0।

(5) गान्धि–गीता, श्रीनिवास जाडपत्रीकर, ओरिएण्टल बुक एजेन्सी, 15 शुक्रवार, पूना 2 सं. प्रथम 1949।

(6) गान्धी विजय नाटकम्, श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित।

(7) गान्धिनस्त्रयो गुरवः शिष्याश्च, द्वारका प्रसाद त्रिपाठी, प्रेमी प्रकाशन, शाहरोला राजयबरेली, सं0. प्रथम, 1976 ई.।

(8) गान्धिगौरवम्, रमेशचन्द्र शुक्ल, संस्कृत परिषद् अलीगढ़, प्रथम सं. 1969।

(9) गान्धि–गाथा, आचार्य मधुकर शास्त्री, राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर, सं. प्रथम 1976 ई.।

(10) उत्तर सत्याग्रहगीता, पण्डिता क्षमाराव, हिन्द किताब लिमिटेड 261, 263 हार्न बाय रोड़, बम्बई सं. प्रथम, 1947 ई.।

(11) श्रीगान्धिचरिम्, श्रीसाधुशरण मिश्र, श्री राधाबल्लभ मिश्र, श्री जानकी संस्कृत विद्यालय, नरकटिया गंज, चम्पारण, सं. प्रथम, संवत् 2019।

(12) सत्याग्रहगीता, पण्डिता क्षमाराव, न्यू पनि लाइन्स, मु.वा.पुरी–9।

(13) सत्याग्रहोदयः, डॉ. बोम्मकण्ठी रामलिंगशास्त्री, अमरभारती प्रकाशन, हैदराबाद–20 (आ.प्र.) सं. प्रथम, 1969 ई.।

(14) स्वराज्य विजयः, पण्डिता क्षमारावन, न्यू मरिन लाइन्स, मु.वा. पुरी–9, सं.प्रथम, 1962 ई.।

(15) श्रीगान्धिचरितम्, ब्रह्मानन्द शुक्ल, शारदा सदनम्, 37, राधाकृष्ण खुरजा, उत्तरप्रदेश, सं. द्वितीय, 1964 ई.।

(16) श्रीगान्धिगौरवम्, श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी, मातृशरणम्, ए 65 जनता कॉलोनी, जयपुर 302004, सं. द्वितीय, 1974 ई.।

(17) श्रमगीता, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, शारदा गौरव ग्रन्थमाला, सदाशिव पेठ पूना, 1977 ई.।

(18) भारत राष्ट्ररत्नम्, यज्ञेश्वर शर्मा शास्त्री, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ, सं. प्रथम 1973 ई.।

(19) भारत पारिजातम्, श्री भगवदाचार्य, श्रीमान् रावजी भाई, मेघजी भाई एवं श्रीमान् कानजी भाई, मोम्बासा (केन्या ईस्ट अफ्रीका) सं. प्रथम 1951 ।

(20) गान्धिसौगन्धिकम् (अप्रकाशित), पण्डित सुधाकर शुक्ल, दतिया मध्य प्रदेश।

(21) गान्धिस्तवर्न, डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, अजीतमल औरय्या, उत्तर प्रदेश।

(22) स्वराज्य वियजम्, श्री दिजेन्द्रनाथ शास्त्री।

(23) श्रीमद् भगवतगीता, वेद व्यास कृत।

(24) गीति–कादम्बरी, श्री अमीर चन्द शास्त्री।

(25) श्री गान्धी गरिम काव्यम्, पण्डित रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी।

(26) गान्धी गीता, प्रो. इन्द्र विद्या वाचस्पति।

(27) गान्धी सूक्ति संग्रह, श्री चिन्तामणि देशमुख।

(28) गान्धी महात्म्य, विजयराघवाचार्य।

(29) भारत विजयनाटकम्, महामहोपध्याय पण्डित मथुरा प्रसाद दिक्षित।

(30) गान्धी विजयम्, लोकनाथ शास्त्री।

(31) गान्धि चिरतामृतम्, विद्यानिधि शास्त्री।

(32) गान्धीबान्धवम्, जयराम शास्त्री।

(33) माहत्मा विजयम्, के.बी.एल. शास्त्री।

(34) गान्धी सूक्तिमुक्तावली, संस्कृत काव्यमालिका।

(35) सप्तर्षि कॉँग्रेस, रेवा प्रसाद द्विवेदी।

(36) गान्धिचरितम्, (गद्य), चारू देव शास्त्री।

(37) गान्धिचरितम्, वासुदेव शास्त्री, वागेवाडीकम्।

(38) महात्मा गान्धिचरितम्, राजवैद्यवीरेन्द्र।

(39) गान्धियुवागम्, श्री बद्री नारायण पुरोहित।

(40) महात्म निर्वाणम्, बी.नारायण नायर।

सन्दर्भ ग्रन्थ (हिन्दी) –

(1) महाभारत – वेद व्यास कृत

(1) अग्निपुराण – महर्षि व्यास, आनन्द आश्रम ग्रन्थावली, 1957

(2) अरस्तु का काव्यशास्त्र– नगेन्द्र, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 2014 वि.सं.

(3) अभिनव नाट्यशास्त्र – सीताराम चतुर्वेदी, किताब महल प्रा. लि., 1964

(4) अभिज्ञानशाकुन्तलम् – कालिदास, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1962

(5) असामान्य मनोविज्ञान – लाभसिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1972

(6) काव्यप्रकाशः – मम्मटचार्य, डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

(6)	मानव, मूल्य संस्कृति और साहित्य	–	डॉ. नत्थूलाल गुप्ता, मोहित पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1995
(6)	काव्यालंकारसूत्राणि	–	आचार्य वामन, डॉ. बेचन झा
(6)	अलंकार शास्त्र का इतिहास	–	डॉ. कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ – 2, द्वितीय संस्करण, 1982–83
(6)	काव्यादर्श:	–	आचार्य दण्डी
(6)	संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना	–	डॉ. हरिनारायण दीक्षित, देववाणी परिषद्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1983
(6)	आधुनिक राजनीतिक विचारधाराऐं	–	डॉ. जी.डी. तिवारी
(6)	आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन	–	बी.एल.ग्रोवर तथा यशपाल, एस.चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली।
(6)	आधुनिक भारत	–	सुमित सरकार, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, आठवां संस्करण, 2001
(6)	हमारे महापुरूष	–	डॉ. शिव कुमार, डायनामिक पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
(6)	श्री स्वामि विवेकानन्द चरितम्	–	त्र्यम्बक शर्मा भण्डारकर, चोखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बाराणसी, प्रथम संस्करण, 1973
(6)	आधुनिक संस्कृत नाटक, भाग 1–2	–	रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद् सागर विश्वविद्यालय, सागर, प्रथम संस्करण
	अर्वाचीन संस्कृत साहित्य	–	डॉ. श्री भा. वर्णेकर, पुणे।
(7)	आधुनिक संस्कृत साहित्य	–	हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
(8)	आनन्दलतिका	–	संस्कृत साहित्य परिषद्, पत्रिका, कलकत्ता, मई 1940, जून 1942
(9)	उज्ज्वलनीलमणि:	–	रूप गोस्वामी चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1972
(10)	संस्कृत कवियित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	–	डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, लखनऊ, 1994
	उपरूपकों का उद्भव एवं विकास	–	इन्द्रा चक्रवाल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, 1936
(11)	ऋग्वेद	–	संपा. मैक्समूलर, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, 167 वाराणसी, 1964
(12)	कठोपनिषद्	–	वाणी पुस्तक माला, संख्या 7, 1979 वि.सं.

(13)	कथापंचकम्	–	पं. क्षमाराव, कर्नाटक हाउस, चित्रा बाजार, बम्बई 1963
(14)	कथासरित्सागरः	–	सोमदेवः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1973
(15)	क्रमिक पुस्तक मालिका	–	पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1970
(16)	काव्यानुशासनम्	–	हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1974
(17)	काव्यप्रकाशः	–	मम्मट आचार्य शिवराज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1970
(18)	काव्यमीमांसा	–	राजशेखर, सा.सी.डी. दत्त दलाल व अन्य, बड़ौदा, 1934
(19)	कुमारसम्भवम्	–	कालिदास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1974
(20)	कौमुदीमहोत्सवम्	–	विजय भट्टारिका, भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग, 2007 वि.सं.
(21)	क्षेमेन्द्र लघु काव्य संग्रह	–	संपा. आयेन्द्र शर्मा, उस्मानियाबाद विश्वविद्यालय, संस्कृत परिषद्, हैदराबाद, 1961
(22)	ग्रामज्योतिः	–	पं. क्षमाराव, 7 भूपेन्द्र वसु एवेन्यू, कलकत्ता, 1954
(23)	गीतगोविन्दम्	–	जयदेव, वी.रमा स्वामी शस्त्रालु एण्ड सन्स, मद्रास, 1956
(24)	गीति नाट्यः शिल्प और विवेचन	–	शिवशंकर कटारे, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1979
(25)	दशरूपकम्	–	धन जय, संपा. रामजी उपाध्याय, भारतीय संस्कृत संस्थान, इलाहाबाद, 2026 वि.सं.
(26)	ध्वन्यालोकः	–	आनन्दवर्धन, व्या. विश्वेश्वर, वाराणसी, 2027 वि.सं.
(27)	नाटकलक्षणरत्नकोशः	–	सागरनन्दी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972
(28)	नाट्यकला	–	रघुवंश, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1961
(29)	नाट्यकला मीमांसा	–	गोविन्ददास, शा. सा.पा. मध्यप्रदेश, 1960
(30)	नाट्यदर्पणः	–	रामचन्द्र गुणचन्द्र, संपा. नगेन्द्र, प्रकाशन हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1961
(31)	नाट्यदर्शन	–	शान्ति गोपाल पुरोहित, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1970
(32)	नाट्य प्रस्तुतिः एक परिचय	–	रमेश राजहंस, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1979
	कालिदास एवं भवभूति के नारी पात्र	–	डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, कानपुर, 1994

संस्कृत पत्र–पत्रिकाएं –

(1) अर्वाचीन संस्कृतम् (त्रैमासिकम्)– देववाणी परिषद्, दिल्ली।

(2) दिव्य ज्योतिः (मासिक) — संस्कृत शोध संस्थान, भारती विहार, मशोबरा, शिमला (हि.प्र.)

(3) पाटलश्रीः (त्रैमासिक) — संस्कृत नाट्य परिषद्, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन, कदम कुआ, पटना–3 (बिहार)

(4) पारिजातम् (मासिक) — प्रेम नगर, कानपुर (उ.प्र.)

(5) भारतोदयः (मासिक) — ज्वालापुरी गुरूकुल महाविद्यालय, हरिद्वार, (उप्र)

(6) मंजूषा पत्रिका (मासिक) — भूपेन्द्र वसु, एवेन्यू कलकत्ता, (प. बंगाल)

(7) लोक संस्कृतम् (मासिक) — संस्कृत कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी

(8) विश्वभाषा (त्रैमासिक) — विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी (उ.प्र.)

(9) विश्वसंस्कृतम् (मासिक) — विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियापुर (पंजाब)

(10) साकेत (पाक्षिक) — अखिल भारतीय विद्वत्समिति, अयोध्या (उ.प्र.)

(11) सागरिका (त्रैमासिक) — सागरिका समिति, महामनापुरी, वाराणसी (उप्र)

(12) संविद् (त्रैमासिक) — भारतीय विद्या भवन, बम्बई–7

(13) संस्कृत प्रतिभा (अर्द्धवार्षिक) — साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली

(14) संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका (मासिक) — राजा दीनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता (प. बंगाल)

(15) दूर्बा, मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, भोपाल।

(16) अजस्रा, त्रैमासिकी, लखनऊ

(17) भारती, मासिकी, जयपुर।

(18) स्वरमंगला, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर।

(19) संस्कृतामृतम्, मासिक, दिल्ली।

(20) गुन्जारवः, अहमदनगर, महाराष्ट्र।

(21) शोध प्रभा, लाल बहादुर शास्त्री, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

(22) संस्कृत विमर्श, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली।

(23) वैदिक मनोहरा, कांजीवरम्।

(24) सुरभारती, सुवैया संस्कृत संस्थान, बम्बई।

(25) आर्य प्रभा, कलकत्ता।

(26) श्री शारदा, मैसूर।

(27) मधुरवाणी, कर्नाटक।

(28) भारती, पूना।

(29) विद्वत्कला, गुरूकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर।

(30) अमर भारती, बनारस।

(31) बल्लरी, बनारस।

(32) उच्छृङ्खलम्, बनारस, साप्ताहिक पत्र।

(33) संस्कृत मंजूषा, कलकत्ता।

(34) सर्वगन्धा, लखनऊ।

(35) गाण्डीवम्, वाराणसी।

(36) सारस्वती सुषमा, त्रैमासिकी, संस्कृत विश्वविद्याल, वाराणसी।

(37) भवितव्यम्, नागपुर।

(38) अमृतवाणी, वार्षिक, बैंगलौर।

(39) मालव मयुर, मासिक, मंदसौर, मध्यप्रदेश।

(40) सुधर्मा, दैनिक, मैसूर।

(41) पण्डित पत्रिका, काशी।

(42) भाषा, गुन्टूर

(43) संस्कृतम्, अयोध्या।

(44) संस्कृत संजीवनम्, पटना।

(45) गुरूकुल पत्रिका, मासिक, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

(46) संस्कृत प्रभा, मेरठ।

(47) आर्य विद्या सुधाकर, काशी।

(48) ज्योतिषमती, काशी।

(49) बाल संस्कृतम्, बम्बई, सम्पादक वैद्य रामस्वरूप शास्त्री।

(50) परिशीलनम्, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

संदर्भ ग्रन्थ (अंग्रेजी)

(1) To the Hindu and Muslim, Gandhi, Anand T. Hingorani, Karachi, First Edition, 1942

(2) The Sanskrit Drama, A.B. Keith. Offord University press, Fifth Edition, 1970

(3) Sanskrit Drama's of Twentieth Century. Usha Satyavrat, Meharohand, Lachmandas.

(4) History of classical Sanskrit Literature, M.Krishna Maeharior. Motilal Banarsi Das, Benglow Road, Jawahr Nagar Delhi. First Edition, 1970

(5) Gandhi Greatest Man of the World.

(6) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-One

(7) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-Two

(8) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-Third

(9) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-Fourth

(10) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-fifth

(11) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-Six

(12) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-Seven. 1945-47

(13) Mahatma Life of Mohandas Karam Chand Gandhi, D.G. Tendulkar, Vithal Bhai K. Jhaveri, Volume-Eight. 1947-48

(14) Agarwal, S.N. : Gandhian Constitution for Free India, Allahabad, 1946.

(15) Agarwal, S.N. : The Gandhian Plan, Bombay, 1944.

(16) Desai, Mahadev, With Gandhiji in Ceylon, Madras, 1928

(17) Dhawan, G.N., The Political Philosophy of Mahatma Gandhi, Bombay, 1946

(18) Fischer, Louis, Gandhi and Stalin, Two Signs at the Cross Roads, Delhi, 1947

(19) Fischer, Louis, A week with Gandhi, 1943

(20) Fullop Miller, Rene, Gandhi the Holy Man, London, 1931

(21) Fullop Miller, Rene, Lenin and Gandhi, London, 1927

(22) Gregg, Rechard, B., Gandhiji's Satyagraha or Nonivolent Resistcnce, Madras, 1930

(23) Gregg, Richard B., The power of Nonviolence, Ahmedabad, 1949

(24) Heath, Karl, Gandhi, London, 1944

(25) Holmes, J.H. and others, Mahatma Gandhi, the World significance, Calcutta, New Edition.

(26) Kripalani, J.B. The Gandhian Way, Bombay, 1938

(27) Kripalani, J.B. Presidential Address at the 52nd Session of the I.N. Congress, Nov. 1946, Delhi Printing Works.

(28) Krishnamurti, Y.G., Gandhian Era in World Politics, Bombay, 1943

(29) Krishnamurti, Y.G., Reflections on the Gandhian Revolution, Bombay, 1944

(30) Lester, Muriel, Gandhi, World Citizen, Allahabad, 1945

(31) Mashruwala, K.G., Practical Nonviolence, Ahmedabad, 1941

(32) Mehta, Asoka, Socialism and Gandhism, Bombay, 1935

(33) Munshi, K.M., Gandhi the Master, Bombay, 1944

(34) Munshi, K.M., I follow the Mahatma, Bombay, 1940

(35) Nehru, Jawaharlal, Nehru on Gandhi, New York, 1941

(36) Sitaramayya, Pattabhi, Gandhi and Gandhism, 2 Vols., Allahabad, 1942

(37) Aurobindo Ghose, Essay on Gita, Madras, 1922

(38) Cassier, Earnest, Essay on Man.

(39) Chase, Stuart, Men and Machine, New York, 1929

व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ –

(1) India Who's who-1989-90, INPA Publication New Delhi, 20th Edition.

(2) संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी, दिल्ली, पटना, वाराणसी।

(3) Encyclopaedia of Britanica, Encyclopaedia of Britanica Ltd. London, 1964.

(4) संस्कृत बांङ्मय कोश, भाग–1, भाग–2, सम्पादक, डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता।